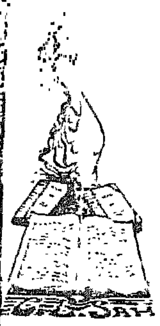


उग्र-लिखित

'मनुष्यानन्द' (बुधुआ की बेटी) उपन्यास आज से २५ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था। आज तो इस मसले पर सभी बोलते हैं; पर, २५ वर्ष पूर्व अछूत-समस्या पर रचा गया यह अद्भुत उपन्यास आज भी ज्यों-का-त्यों ताज़ा और चित्ताकर्षक है। यह उपन्यास 'उग्र' जी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना जाता है।

म नु ष्या न न्द

नये-नये

उपन्यास उग्र-लिखित

(प्रेस में)

- कलकत्ता-रहस्य (१)

(चार भागों में)

- महन्त मूंजीराम महाराज

(हास्योपन्यास)

- जुहू

मनुष्यानन्द

उपन्यासकार
पाण्डेय बेचन शर्मा, 'उग्र'

उ ग्र - प्र का श न
गऊघाट, मिर्ज़ापुर (यू० पी०)

प्रकाशक
पाण्डेय बेचन शर्मा, 'उग्र'
गऊघाट, मिर्ज़ापुर, (यू० पी०)

द्वितीय संस्करण, १९५५ ई०
मूल्य चार रुपया
४)

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस,
क्वीन्स रोड, दिल्ली।

भूमिका

मेरी अनेक पुस्तकें—अनेक वर्षों से बाज़ार में न होने से—साहित्य के पाठकों, अध्यापकों तथा विद्यार्थियों की आँखों से ओझल हो रही हैं। अतः अपने यश की रक्षा के लिए, मैं उन्हें पुनः प्रकाशित करने जा रहा हूँ।

'मनुष्यानन्द'—आज से २५ वर्ष पूर्व 'बुधुआ की बेटी' नाम से प्रकाशित हुआ था। अलाउद्दीन के चिराग़ की तरह हाथ लगी प्रतिभा की जवानी में 'चिढ़ों' को चिढ़ाने के लिए मैंने अनेक निर्दोष पुस्तकों के नाम ज़रा बीहड़—'चुम्बन', 'घंटा', 'बलात्कार'—रख दिये थे। चिढ़ने-चिढ़ाने वाले दिन डूब गये; अतः, अब मैं कुछ पुस्तकों के नाम बदल देना चाहता हूँ।

खेतों पर अधिकार उसका—जो जोते-बोये; घरों पर उसका—जो उसमें रहे; ऐसे ही, युग के प्रकाश की देन में पुस्तकों पर अन्तिम अधिकार मैं उसका मानता हूँ जिसने रचना की है।

जय माया की!

२६–१–५५
गणतन्त्र दिवस।

—पाण्डेय बेचन शर्मा, 'उग्र'

: १ :

रधिया कौन है ?

"ओ हो हो हो ! तुम रधिया को नहीं जानते ?" गुलाबचन्द ने चेहरे से घोर आश्चर्य बरसाते हुए कहा—"तब तुमने ज़माने को ख़ाक जाना। अजी वह जान है जान, इस मुहल्ले की। न जानें परमात्मा ने कहाँ का रूप का समुद्र उसके ऊपर उँडेल दिया है। भंगिन की बेटी; गन्दे टुकड़ों पर जीने वालों की सन्तान और ख़ूबसूरती ऐसी कि शाहज़ादियाँ, राजकुमारियाँ;—मैं कहता हूँ परियाँ—उसके आगे पानी भरें।"

"चुप भी रहो; चुप भी रहो !" गुलाब के मुँह पर अपना हाथ रखते हुए घनश्यामजी ने कहा—"तुम भी अजीब गन्दे आदमी हो। जब सोचोगे गन्दी ही बात सोचोगे। यार मेरे ! दुनिया पड़ी है। जब पास में पैसे हों, तब थर्ड क्लास की बुत-परस्ती के मैं ख़िलाफ़ हूँ; क़तई ख़िलाफ़। छोड़ो रधिया भंगिन को। किसी अच्छी चीज़ की चर्चा चलाओ !"

"अच्छी चीज़ !" गुलाबचन्द ने कहा—"अजी रधिया अच्छी चीज़ तो ऐसी है कि अगर सूरज अपने हाथ में चिराग़ लेकर अपनी ज़िन्दगी भर तमाम दुनिया में ढूँढ़ा करे, तब भी उसे ऐसी अच्छी चीज़ कहीं नसीब न हो। तुमने उसे देखा ही नहीं। मैं शर्त लगाकर कह सकता हूँ कि तुम्हारे ऐसा चटोर—

ओ—माफ़ करना—बुत-परस्त अगर एक बार उसे देख ले, तो, फिर नोन-सत्तू बाँध कर उसके पीछे पड़ जाय। देख लोगे तो यह हेंकड़ी कि—'गन्दी है, भंगिन है'—तुम्हारे दिमाग़ से हवा हो जायगी। मैं कहता हूँ, मेरे कहने से एकबार उसे देखो और ज़रूर देखो। अभी बिलकुल उठती हुई जवानी है। शुद्ध चंपई रंग, इकहरा बदन, नीली आँखें, बीस जगह से बल खाये हुए चमकते, काले बाल, उपमाओं की पहुँच के बाहर सुन्दर ओष्ठाधर—क्या बतलाऊँ भाई साहब! न जानें कहाँ से वह बुधुआ के घर में पैदा हो गयी। राजा-रईस, ब्राह्मण-क्षत्री, ईसाई-मुसलमान कोई भी रधिया-सी सुन्दरी लड़की अपने घर में देखकर मारे गर्व और प्रसन्नता के फूल उठता।"

"अच्छा एक बात बताओ। तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि इस शहर में कहीं रधिया भङ्गिन भी रहती है?" घनश्यामजी ने रधिया-विवाद में अधिक अनुराग दिखाते हुए गुलाबचन्द से दरियाफ़्त किया—"अभी कल तक संभवतः तुम्हारी नज़रों में वह नहीं गड़ी थी। कल तक तुम किसी-न-किसी 'दालमण्डी' वाली की तारीफ़ किया करते थे। आज यह नयी रागिनी तुम्हें कहाँ और किसने सिखायी?"

"मेरे भाग्य ने मुझे रधिया का परिचय दिया। मैं तो इसे अपना भाग्य ही मानूंगा। बिना क़िस्मत के ऐसी नायाब चीज किसी की आँखों के आगे नहीं आती।"

ज्यादा बनो न, साफ़-साफ़ बताओ; कल तक तो तुम्हारा भाग्य इतना बढ़िया नहीं था; फिर, आज यह बात कहाँ से पैदा हो गयी?"

"मेरे मुहल्ले में वह कमाने जाती है।"

"शिवाले में! किसके यहाँ?"

"बरकतुल्ला के...।"

"अरे ! बरकत के यहाँ वह जाती है ? उसने तो मुझसे कभी उसके बारे में कुछ नहीं कहा !"

"वह खुद उस पर मरता है। असल में उसके घर कमाने वाली भंगिन कोई दूसरी ही है। रधिया को तो उसने इधर एक महीने से अपने यहाँ रखा है। सो भी, केवल आँगन और कमरे साफ़ करने के लिए। साफ़ करना-कराना तो एक बहाना भर है, वह धीरे-धीरे उसे अपने चंग पर चढ़ाना चाहता है। केवल झाड़ू लिये देने के उसने उसे पाँच रुपए महीने देने को कहा है।"

"वह बराबर बरकत के घर पर जाती है ?"

"हाँ जी—जायगी क्यों नहीं ?"

"कुछ रुख़-उख़ देती है ? बरकत ने उसे छेड़ा तो ज़रूर होगा। मैं उसको ख़ूब जानता हूँ, सिर से पैर तक पाजी है।"

"मगर बरकत मुझ से कहता था कि रधिया मामूली चिड़िया नहीं है कि फ़ौरन जाल में आ फँसेगी। एक दिन उसने उसे ज़रा-सा छेड़ा और बस ! सँभाल कर झाड़ू खड़ी हो गयी। कहने लगी—'मैं तुम्हारे यहाँ झाड़ू देने के लिये नौकर हूँ, इज़्ज़त देने के लिये नहीं। ख़बरदार जो कभी फिर इस तरह की इशारेबाजी की। मैं चारों ओर हो-हल्ला मचाकर दम लूँगी।' ऐसी है रधिया।"

"मगर इतने पर भी वह बरकत के यहाँ जाती है। जाती है न ?"

"हाँ जाती तो है। अभी कल ही गयी थी। कल ही बरकत ने उसे मुझ को दिखाया भी था।"

"तब पाजी है—बदमाश है। कोई शरीफ़ औरत किसी आदमी को बदमाश जानकर उससे कोई रिश्ता नहीं रख सकती। ज़रूर पाजी है।"

"अरे सुनो भी" गुलाबचन्द ने कहा—"बस अपनी ही खिचड़ी पकाते चले जा रहे हो। जिस दिन बरकत ने रधिया को छेड़ा था उसके बाद दो-दिनों तक वह उसके घर नहीं आयी। दो दिनों तक मियाँ बरकतुल्ला, कलेजे पर हाथ रखे, रधिया पर अशआर के पुल बाँधते रहे। जब तीसरे दिन भी उसके आने का वक़्त टल गया तब उससे न रहा गया और वह ख़ुद ही चपकन-पाजामे से लैस होकर रधिया के घर पर जा धमका। उसे अलग बुलाकर हाथ जोड़े, मिन्नतें कीं, कहा—'ख़ता हो गयी, माफ़ करो; मगर, आना-जाना न रोको—ख़ुदा की क़सम, अब कभी तुम्हें नाराज़ न करूँगा।' समझे, इतनी लीलाएँ होने के बाद रधिया पुनः बरकत के यहाँ जाने लगी। वह पाजी नहीं है। चेहरे से भी नहीं मालूम पड़ती। मगर यार, आफ़त है, सितम है, क़हर है, क़यामत है।"

"सच !" गुलाबचन्द के किंचित सन्निकट हो घनश्याम जी ने पूछा।

"सच भाई साहब ! तुम्हारी क़सम, अपनी क़सम। चलो न आज शाम को तुम्हें उसे दिखा ही दूँ। हो सकेगा तो उसी वक़्त उसके बाबा बुधुआ से मिलकर उसे तुम्हारे घर झाड़ू देने के लिए ठीक भी करा दूँगा।"

"ना, ना !" सिर हिलाते हुए घनश्याम ने कहा—"मेरे घर नहीं, अपने घर। रधिया ऐसी भंगिन को नौकर रखने पर बाबू जी मुझे जीने न देंगे। तुम जानते ही हो वह मेरे मौजी-मिज़ाज के कितने खिलाफ़ हैं। रोज़ ही घण्टा-दो-घण्टा लेक्चर झाड़ते हैं।"

"अजी बाबू जी के लेक्चरों को कहाँ तक झँखोगे। बड़े-बूढ़ों के हज़ार रोगों में एक रोग अपने से छोटों के आगे लेक्चर झाड़ना भी है।"

"यह रोग नहीं, रोगों का बाप है। आजकल के बड़े-बूढ़े इस बात को भूल ही जाते हैं कि कभी वे भी जवान थे। कभी उनके दिमागों में भी उबाल आते थे। कभी उन्होंने भी उन हरकतों को गले लगाया था जिन्हें हमारे आगे वे 'बदमाशियाँ' कहकर,पुकारते हैं। मेरे ही घर की बात लो। भला इस शहर में कौन नहीं जानता कि मेरे दादा मरते-मरते तक किसी-न-किसी खूब-रू पर मरते रहे। उनके मुँह कोई नहीं आता था, उन्हें कोई नहीं उपदेश देता था कि ऐसी हरकतों को हम 'बदमाशियाँ' कहकर पुकारते हैं, लोगों को उनसे दूर रहने का उपदेश देते हैं। उनके आगे सभी दुम हिलाते थे। झूठ नहीं कहता, अच्छे-अच्छे ज़िम्मेदार लोग भी, उन्हें अच्छी तरह से जानकर भी, उनके आगे चुप ही रहे। अपने भावों को ढोंग के परदे में छिपाते ही रहे ? क्यों ? जानते हो ? इसलिए कि उनकी गद्दी के नीचे पच्चीसों लाख रुपये थे—इसलिए कि उनके बाल पके हुये थे—इसलिये कि उनकी इच्छा के विरुद्ध लेक्चर देने से लेक्चर-बाज़ों की स्वार्थ-साधना में बाधा पड़ती !"

"अजी मारो गोली ! अपना तो सिद्धान्त है कि अपनी मौजों के सामने दुनिया के खूखे लेक्चर-बाज़ों को तृण भी न समझना। भूकना इनका पेशा है, ये भूका करें। अपने रास्ते मचलते हुये चलते जाना अपना काम है। हम किसी के लेक्चर की क्यों परवा करें। खैर ; तो शाम को चलोगे रधिया के घर ?"

"तुम क्या कहते हो, चलूँ ?"

"हाँ जी, इस में पूछने की गुञ्जायश ही नहीं है, ज़रूर चलो।"

"कितने बजे ?"

"साढ़े छः—"

"तुम यहाँ आओगे ?"

"हाँ—मगर, पैदल आऊँगा।"

"मैं अपनी गाड़ी जुतवा रखूँगा।"

"अह—भंगी के घर और सो भी भदैनी से दुर्गाकुण्ड, गाड़ी पर क्या चलोगे। टहलते चला जायगा। जिसमें कोई कुछ भाँप भी न सके। अच्छा तो साढ़े छः बजे—तैयार रहना, भला! मैं चला। जै रामजी की!"

: २ :

बेचारा बुधुआ

चालीस वर्ष की अवस्था में भी बुधुआ पूरा जवान मालूम पड़ता था। वह नाटे क़द का, ख़ूब गठीला और मज़बूत आदमी था। उन दिनों वह बनारस के विक्टोरिया पार्क के एक कोने पर, कूड़ाख़ाने और जनसाधारण के लिए बने हुए म्युनिसिपैलटी के पाख़ाने के पास अपने दूसरे साथी मेहतरों के साथ रहा करता था। उसकी एक छोटी-सी ताड़ के पत्तों, फूसों और कहीं-कहीं पुराने खपड़ों से छाई-बनाई झोपड़ी थी।

उस झोपड़ी का निर्माण स्वयं बुधुआ ने किया था और तब किया था जब उसकी पहली स्त्री उसे मिल गयी। मिल गयी इस लिये कहते हैं कि ग़रीब और महा-पतित बधुआ के जगत में उस तरह ब्याह नहीं होते जैसे उसकी रोज़ी-दाताओं के घरों में। उसकी बे-पर्द दुनिया में तो भंगी-कुमार और भंगी-कुमारियें आपस में एक-दूसरे को पसन्द कर लेते थे या उनके जननी-जनक उनके लिए किसी वर-कन्या को चुन देते थे। शहर के किसी 'छूना-मत' पण्डित से ब्याह-योग्य दिन पूछा जाता था जिसे पण्डित महाराज गंगाजल से धुले हुए कुछ पैसे लेकर और दस-पाँच बार 'दूर रह! दूर रह!!' कह कर बता देते थे। निश्चित दिन पर लड़की

वाला भंगी लड़के वाले भंगी के लिए और उसके दो-चार चुनिन्दे दोस्तों के लिये कलिया और दारू का इन्तज़ाम करता था। कलिया दो पैसे के कड़वे तेल में उबाली हुई और दारू वही मामूली ठर्रा अथवा कई दिनों की सड़ी ताड़ी। बीच में ज़मीन लीप दी जाती थी और उसकी चारों ओर बन्धु-बान्धव के सहित वर और कन्या पक्ष के भंगी बैठ जाते थे। कन्या अपने पक्ष के बीच में बैठती थी—कोरे और मोटे मारकीन की हल्दी से रंगी हुई धोती पहन कर, और सर में ज़रूरत से कहीं ज़यादा तेल चुपड़ कर। वर भी अपने दल के मध्य में बैठता था अपनी अच्छी-से-अच्छी पोशाक पहन कर। वह पोशाक किसी साहब की उतारी हुई कमीज़ या कोट अथवा सात जोड़ों का कोई कुरता होता था। कोई बूढ़ी भंगिन आगे बढ़ती थी। वह अनेक भूतों, प्रेतों और शैतानों का नाम ले-लेकर वर-कन्या में प्रेम बने रहने के लिए प्रार्थना करती थी। एक टुकड़ा गोश्त और कुछ बूँदें शराब लिपी ज़मीन पर शैतानों के लिये गिरा दी जाती थी। फिर वर कन्या के माथे में सिन्दूर देता था और उसे अपनी बग़ल में बैठाकर अपने हाथ से शराब पिलाता था। इसके बाद सभी उसी दारू कलिया-पूजन में सहयोग करने लगते थे। धीरे-धीरे नशे का उन्मादकारी हाथ दोनों दलों के सिर पर पड़ता था। मस्तियों और बहकी बातों और गालियों की धारा बहने लगती थी। कोई क़ै करने लगता था, कोई ज़मीन सूँघने और कोई लत्तम-जुत्तम करने! बस, यही बुधुआ की जातिका सर्वश्रेष्ठ विवाह-संस्कार था!

मगर, उसके भाग्य में तो इतना भी नहीं लिखा था। उसकी सास बहुत बूढ़ी और जुलजुल थी, जिसका सर्वस्व उसकी लड़की मात्र थी। मरने से पहले उसने बुधुआ को बुलाकर बड़ी आजिज़ी से कहा—"देख बुधुआ, यह अपनी बेटी मैं तेरे सुपुर्द किये जाती हूँ। तू ही इसके लिए बहुत अच्छा खसम है, यह मैंने बहुत दिनों

से सोच रखा है। देख बेटा, तुझे पीपल के पीर और बरगद के वीर की दोहाई, इसे मारना मत; घर से निकालना भी मत। पकड़ इसके हाथ को—पकड़ न—हाँ। अब जिन्दगी भर निवाह देना भैया, ग़ाज़ी मियाँ और शहीद बाबा और ताड़ का जिन्द तेरा भला करेंगे।" इस तरह, बिना किसी साज-सामान और सायत-पूजा के बुधुआ की पहली शादी हुई। अपनी उसी स्त्री के लिए उसने बड़े परिश्रम से वह झोपड़ी तैयार की थी।

मगर उसकी वह स्त्री अधिक दिनों तक उस झोपड़ी का सुख न भोग सकी। सम्बन्ध होने के तीसरे साल ही उसने उसे वीरान कर दिया। एक दिन काम-धन्धे से लौटने पर बुधुआ ने देखा उसकी स्त्री क़ै और मल में लिपटी बेहोश पड़ी थी। पूछने पर पड़ोसी भंगियों ने बताया कि घंटों से वह हैज़े का शिकार है। उन्होंने यह भी कहा कि बुधुआ जल्द ही कुछ दवा-दारू का इन्तज़ाम करे, नहीं तो, उसकी जोरू का बचना कठिन है।

उन दिनों बुधुआ परिश्रमी से ज़्यादा ख़र्चीला था। अपनी और अपनी स्त्री की सारी कमायी दारू और क़लिया, गाँजा और सिगरेट-बीड़ी में उड़ा देता था। उसे म्युनिसिपैलिटी या गृहस्थों के घर से जो-कुछ तनख़ाह मिलती उससे उसका काम कभी नहीं चलता था। वह हमेशा ख़ाली ही रहा करता था। दवा-दरपन की तलाश में जब वह शहर के वैद्य डाक्टरों के दरवाज़ों पर पहुँचा तब उसे मालूम हुआ कि अगर आज कुछ पैसे बचे रहते तो ये ऊँच जाति के फ़रिश्ते जल्द उसकी बातें सुनते। वैद्यों ने तो उसे अपनी ड्योढ़ी पर चढ़ने ही नहीं दिया। किसी ने साफ़ दुतकार दिया और किसी ने किसी घास-पात का नाम बताकर कहा कि वह उसे ख़रीद कर अपनी लुगाई को खिलाये—ईश्वर चाहेगा तो—अच्छी हो जायगी। मगर बुधुआ को वैद्यों की बातों से सन्तोष नहीं हुआ। क्योंकि वह जानता था कि उसकी स्त्री की हालत

बहुत ख़राब है। रोग भी साधारण नहीं था। वह चाहता था कि कोई उसके यहाँ चलकर उसकी औरत को देख आवे। मगर, सनातन-धर्म के स्तम्भ वैद्यों से ऐसी आशा करना, पत्थर से तेल निकालना था।

डाक्टरों के यहाँ भी बुधुआ को कोई ऐसा भला आदमी नहीं मिला जो सहानुभूति से उसकी कहानी सुनता और उसे सहायता देता। भला भंगी की औरत का इलाज कौन भला डाक्टर कर सकता है। वह नीच और दरिद्र, डाक्टरों की जेब के चाँदी के टुकड़ों की तादाद कहाँ से बढ़ाता। किसी डाक्टर ने कहा—फ़ुरसत नहीं—भाग—किसी ने कहा—अबे साले पागल, सरकारी अस्पताल में क्यों नहीं ले जाता? बुधुआ बोला—सरकार उसकी हालत ऐसी नहीं कि वह उठ कर अस्पताल तक जा सके। डाक्टर बोले—तो मरने दे, तू भी मर जा; मैं क्या करूँ? मैंने कुछ दुनियाभर के नीचों की जान का ठेका नहीं ले रखा है। एक डाक्टर कुछ अधिक भले-आदमी थे। उन्होंने कहा—मैं जा तो नहीं सकता, हाँ, अगर तू दो रुपए ले आ, तो, में दवा बनाकर दे सकता हूँ। मगर, बुधुआ के पास रुपए कहाँ थे! लाचार, अभागा अपनी क़िस्मत को कोसता हुआ उलटे पाँव घर लौटा। यहाँ आने पर देखो, अब उसकी औरत की हालत बहुत ख़राब हो गयी थी। शाम होते-होते उसने दम तोड़ दिया।

बुधुआ की झोपड़ी उजड़ गयी! गृहस्थी—अगर उसकी उसी गृहस्थी को हम उक्त नाम से पुकार सकें तो—चौपट हो गयी!

इस घटना से बुधुआ के जीवन में एक विचित्र परिवर्त्तन हो गया।

: ३ :

पिता, पुत्र

"कहाँ जा रहे हो ?"

"घूमने ।"

"किधर ?"

"बहस क्यों करते हैं ?—चौक की ओर ।"

"इसीलिए बहस कर रहा था कि तुम झूठ बोलो । अच्छा इस तरह झूठ बोलकर अपने सगे बाप को भी ठगने की चेष्टा करने से क्या फ़ायदा घनश्याम ? अब तुम बच्चे नहीं ।"

"हाँ मैं बच्चा नहीं, इसीलिए आपको बात-बात में मुझसे—कहाँ जा रहे हो ? क्या कर रहे हो ? क्यों कर रहे हो ? आदि—नहीं पूछना चाहिए । शाम हो गयी है, घूमने का वक़्त है, जहाँ जी में आयेगा जाऊँगा । इस बीच में आप क्यों आते हैं ?"

"अच्छा भैया, ग़लती हुई, माफ़ करो ! कहो तो चरण छू कर क्षमा प्रार्थना करूँ । तुमसे, अपने हृदय से, अपनी आत्मा की सृष्टि से—पुत्र से—मुझे इतना भी पूछने का अधिकार नहीं है कि तुम कहाँ जा रहे हो ? अब कभी न पूछूँगा । मगर एक बात तो बताओ ! तुम झूठ क्यों बोलते हो ?"

"कौन झूठ बोलता है ? आप झूठ बोलते होंगे, मैं झूठ नहीं बोलता ।"

"तुम चौक की ओर जा रहे हो ?"

"हाँ—हाँ—हाँ ! चौक जा रहा हूँ ।"

"झूठ ! तुम झूठ बोलते हो और अपने बाप से झूठ बोलते हो । ऐसे बाप से जिसने छोटेपन से लेकर इस उम्र तक तुमको फूल की छड़ी से भी नहीं छुआ । कभी आँखें लाल-लाल कर डाँटा भी नहीं । सदा तुम्हारी इच्छाओं की—और भली-बुरी सभी

इच्छाओं की—पूर्ति करता रहा। तुम संसार के अपने उस मित्र के सामने झूठ बोल रहे हो जिससे बड़ा तुम्हारा हित-चिन्तक कोई हो ही नहीं सकता। जरा आईने में अपना जा कर देखो! तुम्हारी आँखों में लिखा है, तुम्हारे मुँह पर छपा है—तुम झूठ बोलते हो। चौक नहीं तुम दुर्गाकुण्ड जा रहे हो। पवित्र वायु-सेवन करने नहीं; किसी ग़रीब की लड़की की इज्जत पर अपनी बेशर्मी की परछाईं डालने जा रहे हो क्यों? आँखें न झुकाइये बाबू साहब! डाँटकर अपने बाप से कहिये—तू झूठ बोलता है।"

सचमुच घनश्याम जी का चेहरा उतर गया। सर झुक गया। मगर, यह सब हुआ केवल क्षण-भर के लिए। तुरन्त ही मानों उसने अपने को पिता के विरुद्ध सँभाला। कुछ खीझा भी—

"अब आप ऐसा भी करने लगे? हमारे पीछे छिप कर चोरी से हमारी बातें सुनते हैं? ख़ैर, मुझे इसकी परवा नहीं। हाँ, मैं झूठ बोलता था—स्वीकार करता हूँ—चौक नहीं, मैं दुर्गाकुण्ड रहा हूँ—और जा रहा हूँ रधिया भंगिन को देखने। फिर? मेरी इच्छा, मैं ख़राब ही सही, मैं पातकी ही सही, आप तो पुण्यात्मा हैं—बने रहिये।"

"मैं इन बातों को नापसन्द करता हूँ।"

"पर मैं तो पसन्द करता हूँ।"

"यह भले आदमीयत के बाहर है। तुम्हारा व्याह हो गया है। तुम्हारी स्त्री घर में है। व्याह का उत्तरदायित्व होता है। ऐसे ही काम करने थे तो व्याह ही क्यों किया?"

"दुनिया में बहुत से लोग ऐसा ही करते आये हैं और करते जा रहे हैं। आप-से साधु-महात्मा बहुत नहीं होते। आप इस बारे में मुझ से कुछ न कहें। मैं कुछ न सुनूँगा। मैं बच्चा नहीं। जो मुनासिब समझता हूँ करता हूँ। मुझे अपने उत्तरदायित्व का ख़ूब ख़याल है।"

२१२९

थोड़ा रुक कर घनश्याम जी टहलने लगे। भवें तानकर, नाक फुला कर। थोड़ी देर तक कमरे में सन्नाटा रहा।

"देखिये" वह फिर बोले—"मैं आखिरी बार कहता हूँ, अब आप मुझ से बहस न किया करें।"

"मैं विवश होकर बोलता हूँ। जब नहीं रहा जाता तब मुँह खोलता हूँ। अपने मन से तुम चाहे बड़े बन जाओ, चाहे 'समझदार'। मगर, तुम क्या हो यह मैं खूब जानता हूँ। मैं यह बर्दाश्त कर सकता हूँ कि तुम एक की जगह चार स्त्रियों को व्याह कर अपने घर में रखो। मगर मैं यह नहीं बर्दाश्त कर सकता कि तुम कुत्तों की तरह गली-गली औरतों की जवानी सूँघते फिरो। यह आदमीयत नहीं, कोरा जानवरपन है। यह मौज नहीं, नरक का नाच है। यह समझदारी नहीं, घोर मूर्खता है। रधिया बड़ी अच्छी है, तो उसकी अच्छाई पर कुत्तों की नज़र न डालो। जाओ उसे व्याह लाओ। किसी के दरवाज़े पर, किसी की लड़की घूरने के लिए जाना शोहदई है। तुम्हें—कम-से-कम—शोहदों के रास्ते पर चलते शर्मिन्दा होना चाहिये।"

घनश्याम ने कहा—"आप नहीं मानेंगे। अब मैं इस देश ही को छोड़ दूंगा। आप मुझे और मेरी स्त्री को अलग क्यों नहीं कर देते? मैं कोई रोजगार करूँगा और जैसे भला लगेगा रहूँगा। न आपके आगे रहूंगा और न आपको कष्ट दूँगा।"

"अच्छी बात है। मैं भी आजिज़ आ गया हूँ। किसी दिन यही होकर रहेगा। यही होगा—अच्छी बात है।"

इसी समय नीचे से गुलाबचन्द की आवाज़ सुनायी पड़ी।

"जाइये" घनश्याम के पिता ने उससे कहा—"आपके परम श्रद्धेय और महान-हित-चिन्तक मित्र आ गये हैं। गाड़ी बुलवा दूं? अरे! अरे!! कौन है पहरेपर? साईस से कहो जोड़ी तैयार कर दे। बाबू बलराम जी के सुपुत्र साहब रधिया भङ्गिन के रूप

और यौवन में सुख या मौज खोजने जायेंगे। जाइये। क्षमा कीजियेगा, आपका बहुत समय इस बेवकूफ़ ने (अपनी ओर इशारा कर) नष्ट किया।"

घनश्याम जी को कमरे में खिझलाया, शरमाया, उबलता और जलता छोड़, उसके पिता तेज़ी से घर में घुस गये।

: ४ :

परिवर्तन

इस तरह बिना दवा-दारू के स्त्री के मरजाने के बाद बुधुआ पहले से कहीं अधिक रूखा, कठोर, परिश्रमी और क्रोधी हो गया। उसका परिश्रम करना देखकर तो उसके साथी भंगी दंग रह गये। कोई कहता—'बुधुआ के ऊपर ताड़वाला जिन्द आता है। उसी के ज़ोर से वह इतनी मिहनत करता है। नहीं तो, आदमी के किये ऐसी सख्त मशक़्क़त हो ही नहीं सकती।' किसी का अनुमान था कि वह सौ घरों में कमाता है और किसी का अन्दाज़ था कि इससे भी अधिक। मगर, भारी ताज्जुब की बात जो थी वह यह थी कि अब उसने गाँजा और चरस, शराब और ताड़ी सभी का त्याग कर दिया था। वह खाली मिहनत करता, एक वक़्त सेर-सवासेर आटे की मोटी-मोटी तीन-चार लिट्टियाँ और गुड़ या नमक खाता और पैसे जोड़ता था। अगर कभी दिल्लगी में उसका कोई मित्र भंगी उससे पूछ बैठता कि—बुधुआ, तुझे क्या हो गया है भाई! आजकल इतने पैसे पैदा करने पर भी तू कभी मौज-मजा नहीं करता। न गाँजा, न भाँग, न दारू और न 'ताड़ तले बाजे सितार मेरी जान! ताड़ी ने मुझको दिवाना किया।' तेरे न बच्चे हैं और न बीबी। फिर ये पैसे इकट्ठा कर क्या करेगा रे? वह ऐसी बातें सुनने पर पहले एक लम्बी साँस

लेता, हाय छोड़कर अपनी मृत-स्त्री का नाम लेकर कहता—हायरे मेरी औरत ! तू पैसे न होने ही से मर गयी ! पैसे होते तो ये पैसे के कीड़े हकीम, डाक्टर जरूर तुझे बचा लेते। इसके बाद वह मौन और गम्भीर हो जाता—'पैसे इकट्ठा करता हूँ पैसे वाला—बनने के लिए। यह जमाना पैसे का है। जिसके पास पैसे नहीं, वह भगवान की तरह सुन्दर, पवित्र और गुनी होने पर भी फ़िजूल आदमी है। दुनिया उसका निरादर ही करेगी। और पैसे होने पर भंगी भी भगवान से बड़ा समझा जाता है। हाँ भैया ! अच्छर-अच्छर ठीक कहता हूँ। खूब जांची और तौली हुई बात कहता हूँ। आज की दुनिया कोरे पैसे की दुनिया है।'

बुधुआ को वैद्यों, हकीमों और डाक्टरों पर बड़ा क्रोध था। उसने अपने उन सब मालिकों का घर छोड़ दिया था जो वैद्य या उनके हमपेशा थे। वह कहता—'मैं कुत्ते का पाखाना साफ़ करूँगा मगर किसी डाक्टर या वैद्य का नहीं। इन्हींकी पत्थर-दिली से मेरी औरत बे-मौत ही मर गयी। मैं मर जाऊँगा—मगर, किसी डाक्टर या वैद्य के दरवाजे पर न जाऊँगा।' वह अपनी प्रतिज्ञा पर हमेशा दृढ़ रहा। लाख लालच और जरूरत होने पर भी किसी डाक्टर या वैद्य के यहाँ कमाने नहीं गया।

पहली स्त्री के देहान्त के समय बुधुआ तीस वर्ष का पट्ठा था। इसके बाद ग्यारह वर्षों तक वह स्त्री-हीन जीवन व्यतीत करता रहा। इसी बीच में घोर परिश्रम कर उसने अपनी झोपड़ी के एक कोने में गड़ी मिट्टी की हाँड़ी में पाँच सौ से ऊपर रुपये एकत्र किये। अब वह मन-ही-मन सोचने लगा कि कहीं कोई अच्छी भंगिन मिल जाती तो वह एक बार फिर औरत के साथ जिन्दगी के खेल खेलता। अभी औरत के लिए—नीरस और कठोर होने पर भी—उसके हृदय में स्थान बाक़ी था। वह अकसर कल्पना करता कि इस बार अगर कोई औरत मिली, तो उसे बहुत आराम

से रखूँगा, उससे कम काम लूँगा, उसके सुखों का अधिक ख्याल रखूँगा और इस तरह पहली स्त्री के साथ की हुई असावधानी का प्रायश्चित करूँगा। हो सका तो कुछ और पैसे एकत्र कर इस देश—याने शहर या प्रदेश—का त्याग कर कहीं और जा बसूँगा। खेती या कोई दूसरा रोजगार करूँगा। बुधुआ को यह बात कभी भूलती ही नहीं थी कि उसके अछूत और अन-धन होने के कारण ही, समाज के ऊँची जाति के ग़ुलाम, वैद्य और डाक्टरों ने उसकी स्त्री को मृत्यु की राह पर बिना रोके-थामे जाने दिया था।

उसे दूसरी औरत मिली और मिली विचित्र ढंग से। एक दिन दोपहर को काम निपटा कर अपने घर लौटने पर उसने देखा उसके मुहल्ले या उस भंगी टोले में एक औरत को लेकर बड़ा हो-हल्ला मचा था। तमाम भंगिनें, उनके बच्चे और खसम उस औरत को घेरे खड़े थे और उससे अनेक सवाल पूछ रहे थे। वह औरत अपने को भंगिन और गोरखपुर शहर से आयी हुई बताती थी। उसका कहना था कि, उसका 'आदमी' बड़ा पियक्कड़ और क्रूर है। रोज़ ही नशा करता और उन्मत्त होता और उसे विविध प्रकार से सताता था। मारता तो इतना कि उसे उसकी छठी का दूध भी याद पड़ जाता था। उस औरत ने सब भंगियों को रो-रो कर अपने शरीर पर के डण्डों और नाखून की खरोचों के दाग़ दिखाये और कहा कि उसकी इसी आदत से घबरा कर मैं यहाँ भाग आयी हूँ।

उस की भयानक कथा सुनकर एक मर्दानी-भंगिन ने कहा—

"ओ रे, बड़ा हरामज़ादा था तेरा मर्दुआ! बहिन तूने उसे छोड़ कर कोई दूसरा मर्द क्यों नहीं कर लिया?"

"अरे मेरी बहन!" आंखों में आंसू भरकर वह बोली—"वह बड़ा बदमाश आदमी है। गोरखपुर-भर के भंगियों को उस ने बता दिया था कि अगर कोई मेरी लुगाई को अपने यहां रहने

देगा या फुसलायेगा तो ठीक न होगा। छुरे चल जायँगे। खून हो जायगा। बला से, चाहे फिर मुझे फाँसी पर ही क्यों न चढ़ना पड़े। बस। उसकी इसी बात के डर से किसी भी मर्दुवे की इतनी हिम्मत नहीं हुई कि मुझे अपने साथ रख लेता। इसी से लाचार होकर मैं यहाँ भाग आयी हूँ।"

"तो अब यहाँ दूसरा खसम करके रहेगी?" किसी मनचले भंगी ने पूछा।

"रहेगी क्यों नहीं? दूसरा खसम खोज के रहना न होता तो पहले के मुँह में आग लगा कर यह यहाँ से वहाँ भाग ही क्यों आती?" एक भंगिन ने उस भंगी को जवाब दिया।

उसी समय बुधुआ वहां आता दिखाई पड़ा। एकाएक सबके मन में एक ही बात उठी कि बुधुआ ही इसे अपने साथ रखे। एक बूढ़ी भंगिन उसके पास आ, उस गोरखपुर वाली की कहानी सुनाती हुई कहने लगी—

"रख ले—रख ले बेटा! बहुत दिनों से अकेले दुख उठा रहा है। यह तेरी पहली औरत से ज्यादा गोरी और चमकीली भी है।"

बुधुआ ने उस आगता भंगिन से पूछा—

"बोल, मेरे साथ रहेगी?"

उसने सिरसे पैर तक बुधुआ को देख, आँखें नीची कर लीं। याने—हाँ, रहूँगी क्यों नहीं।

एक भंगी ने कहा—"बड़ा अच्छा है। तू इसी की लुगाई बनकर रह। यह तुझे बड़े आराम से रखेगा। मारे-पीटेगा भी नहीं। लेजा—ले जा रे बुधुआ!—इसे अपनी झोपड़ी में। ले साले, तेरी क़िस्मत बड़ी ज़बरदस्त है। बैठे-बैठाये ऐसी बढ़िया औरत मिल गयी। अब आज शाम को दारू जरूर पिलाना। सुनता है?"

मन-ही-मन प्रसन्न होकर उस गोरखपुर वाली का हाथ पकड़ उसे अपनी झोपड़ी की ओर बढ़ाते हुए बुधुआ ने पूछा—

"तेरा नाम क्या है?"

भंगिन ने आँखें नचाकर, ओठों में मुस्कराकर, उछलते कलेजे से अपने नये खसम को जवाब दिया—

"सुकली...।"

उस दिन शामको सुकली-प्राप्ति के उपलक्ष में बुधुआ ने अपने महल्लेभर के भंगियों का, कोई तीस रुपये खर्च कर, भात, कलिया और दारू से स्वागत किया। जिन्न और शैतान पूजे गये। एक भंगिन ने बहुत देर तक 'हनुआ' कर बुधुआ और सुकली को अनेक आशीर्वाद भी दिये।

रात साढ़े-बारह बजे तक भंगियों का दल उन्मत्त होकर नाचता और खँजड़ी बजाकर गाता रहा—

बुधुआ तोरी लुगैया
    गोरी-गोरी भोरी ना।
पीपरे क' भूतवा
औ' तड़वा क' जीनवां
    सहाय भइलें ना;—
मदमाती बलखाती
जोबना पै अठिलाती
    ऐसी बांकी गोरी धनियाँ
    पठाय देहलें ना।
बुधुआ तोरी लुगैया...

: ५ :

औघड़

उस दिन काशी के मुहल्ला शिवाला के पास सड़क की दाहिनी पटरी पर कुछ दूरस्थित बाबा कीनाराम के अखाड़े पर बड़ी भीड़ थी। सड़क पर एक-दो मोटरें भी खड़ी थीं, अनेक रईसी बग्गियाँ और एक्के भी। उत्सुक जनता की टोली-की-टोली अखाड़े के भवन की ओर लपकी जा रही थी।

अखाड़े के फाटक के बाहर चार-पाँच आदमी खड़े आपस में बातें कर रहे थे।

"बड़ी भीड़ है! मालूम पड़ता है हम लोग उन तक पहुँच ही न सकेंगे। अभी तो उजली पोशाक और सोने की सिकड़ी वालों ही ने और उनको घरवालियों ही ने नाकों दम कर रखा है।"

"सुना है, अघोड़ी बाबा जब-जब यहां आते हैं, तब-तब पाँच दिनों से अधिक नहीं ठहरते। आज उनके आगमन का तीसरा दिन है। तीन दिनों से, सुबह सात बजे से लेकर रात बारह बजे तक, ऐसी भीड़ होती है कि बसरे-बस।"

"ग़जब के सिद्ध हैं!" एक ने गम्भीरता से कहा—"अच्छे-अच्छे नास्तिक और साधुओं की सिद्धि में विश्वास न करने वाले भी बाबा मनुष्यानन्द अघोड़ी को देख कर दङ्ग रह जाते हैं। व्यक्ति विशेष को देखते ही वह उसके विषय की विख्यात और अख्यात बातें इस तरह बताने लगते हैं मानों उनके पेट में उसकी जन्म-कुण्डली हो।"

"अरे भाई!" मुख से भारी आश्चर्य प्रदर्शित करते हुए एक दूसरे व्यक्ति ने आरम्भ किया—"पिछले साल तो बाबा मनुष्यानन्द के कमाल देखकर मैं दङ्ग रह गया। वह हमारे मुहल्ले का जो सुबराती खाँ दर्ज़ी है—अजी (एक दूसरे व्यक्ति की ओर देख

कर) वही—वही जिससे तुमने उस दिन अपने कपड़े ब्योंतवाये हैं—उसे ऐसे जोर का कालरा हुआ कि आफ़त मच गयी। सैकड़ों क़ै, हजारों दस्त! दो दिन की बीमारी में उस हट्टे-कट्टे पहलवान की मिट्टी पलीत हो गयी। मगर बाबा मनुष्यानन्द ने एक चुटकी ख़ाक से उसे चुटकियों में चङ्गा कर दिया।"

"कैसे भाई? कैसे यार?"

"अरे कैसे क्या बताऊँ? सुबराती की बीबी ने सुना कि कोई अघोड़ी फ़क़ीर ऐसा आया है जो सब कुछ कर सकता है। बस वह दौड़ी हुई अखाड़े में आयी और उसने डाल दिया अपने साल भर के बच्चे को बाबा जी के चरणों में—'अब इस बच्चे की जिन्दगी आप ही के क़दमों में है, बाबा जी!' वह कहने लगी—हैजे से मरते हुए इसके बाप और मेरे मालिक को अगर आप नहीं बचायेंगे, तो हमारा कारवाँ लुट जायगा। दोहाई है हजूर की! दोहाई है सरकार की!"

"फिर?"

"फिर क्या? अघोड़ी बाबा ने अपनी धूनी में से चुटकी भर राख निकालकर पहले औरत के माथे पर मल दी और फिर दूसरी चुटकी की राख उसे देते हुए बोले—'भाग, भाग! ससुरी कहीं की। खिला दे ले जाकर उस साले को—भाग, भाग! नहीं तो मारते-मारते राँड बना डालूँगा।' बस, वह चुटकी भर राख सुबराती के लिए संजीवनी बूटी हो गयी। अघोड़ी की इस करामात की चर्चा सुनकर डाक्टरों ने और वैद्यों ने दाँतों अँगुली दबा ली।"

"अच्छा जी, यह हैं कौन?" एक ने दरियाफ़्त किया—"कुछ इनकी जीवनी भी किसी को मालूम है?"

"अरे भाई फ़क़ीरों की जीवनी ही क्या। ख़ास कर अघोड़ी मनुष्यानन्द के बारे में दावे से कुछ कहना बहुत ही मुश्किल बात

है। मैंने इनके बारे में तरह-तरह की बातें सुनी हैं। कोई कहता है यह पहले हिन्दू ब्राह्मण थे। कोई कहता है मुसलमान शेख़ थे।"

इसी समय एक काला-कलूटा, गठीला और मज़बूत आदमी, गोद में कोई दो वर्ष की लड़की लिए, उन आदमियों के सामने आकर खड़ा हो गया—

"सरकार ! हम लोग भी जा सकते हैं ?"

"तू कौन है रे ?" एक ने उसे किसी नीच जाति का समझ कर रोब से पूछा।

"मैं सरकार, आपका ख़िदमतगार, बुधुआ भंगी हूँ। यह मेरी लड़की रधिया है। यह अघोड़ी बाबा ही के आसीस से जी रही है। मेरे ऊपर दो-तीन दिनों से भारी मुसीबत आ पड़ी है। इसकी माँ—मेरी औरत सुकली—न जाने कहाँ ग़ायब हो गयी है। उसके लिए रोती-रोती यह छोकरी मरी जा रही है। रात भर आग की तरह गरम ज्वर इस सुकुमार फूल पर चढ़ा रहा। मैं जाऊँ बाबू ?"

"अबे जाता क्यों नहीं। इस अखाड़े में भंगी हो या ब्राह्मण किसी के लिये रोक-टोक नहीं। यह औघड़ का मठ है।"

"नहीं बाबू, रोज़ तो नहीं, मगर जब शहर के बड़े आदमी इसमें आते हैं तो हमें रोका जाता है। हम अछूत जो हैं। भंगी जो हैं। अच्छा सलाम बाबू ! लड़की घिघिया रही है। मुझे जाना ही चाहिए। बला से कोई बिगड़ेगा, तो सह लूँगा। चुप रे ! चुप !! बापरे बाप ! यह तो रो-रोकर जान दे देना चाहती है।"

लड़की को चुप कराता हुआ बुधुआ भंगी आगे बढ़ा।

एक व्यक्ति ने उसे पुनः टोका—"अबे ! तेरी तो बीबी खो गयी है न ? भला इसकी दवा अघोड़ी बाबा के पास क्या होगी ? पागल हो गया है क्या ?"

"नहीं सरकार !" भंगी ने जवाब दिया—"वह सब कुछ कर

सकते हैं। वह देवता हैं—परमेश्वर हैं। उनसे पूछूँगा कि सुकली कहाँ गयी? उसे भूत ले गया या जिन? उनसे पूछूँगा कि अब यह रधिया जीती कैसे रहेगी?"

बुधुआ लड़की को चुमकारता-चुमकारता अखाड़े के फाटक के भीतर हो गया!

: ६ :

अफ़वाह

बुधुआ के मठ के भीतर चले जाने पर भी बाहर के बातूनी बातें ही करते रहे। जिस व्यक्ति ने यह कहा था कि अघोड़ी मनुष्यानन्द के बारे में उसे कई क़िस्से मालूम हैं उससे बाक़ियों ने सवाल-पर-सवाल करने आरम्भ किये।

"बताओ, तुम से किसने कहा? अघोड़ी बाबा कौन हैं?"

"मेरे दादा ने..." उस व्यक्ति ने अघोड़ी की जीवनी आरम्भ की—"पाँच वर्ष पहले मुझे इनके बारे में जो बातें बतायी थीं उन पर मेरा अधिक विश्वास है। वही सुनाता हूँ।

"वह कहते थे कि अघोड़ी मनुष्यानन्द तीर्थ-राज प्रयाग के रहने वाले एक प्रतिष्ठित और विद्वान और कुलीन ब्राह्मण हैं। भू-सम्पत्ति के अलावा इनके विख्यात पिता के पास कई सौ रईस-घरों की यजमानी और कई हजार रुपये थे। अघोड़ी का नाम कृपाराम था। जिस वक़्त उनकी अवस्था अट्ठारह वर्ष की थी, उनके पिता का देहान्त हो गया। कृपाराम अपनी युवती और सुन्दरी स्त्री को प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे। ब्याह हो जाने के बाद ही उन्होंने सन्ध्या-पूजा, यजमानी-वृत्ति, सबकुछ छोड़कर स्त्री के रूप और मोह पर अपने को निछावर कर दिया। वह जो कुछ कहती कृपाराम ईश्वर की आज्ञा की तरह आँख मूँद कर उसका पालन

करते। अपने हृदय के सारे प्रेम को स्त्री के चरणों पर दिन में सौ-सौ बार निचोड़ कर चढ़ाने पर भी उन्हें सन्तोष न होता। वह अपने आपको भूलकर, संसार को भूलकर, स्त्री की उपासना करते थे।

"मगर, खब बलिष्ठ होने पर भी, ब्राह्मण कृपाराम भयानक कुरूप थे। उनकी काली और बड़ी-बड़ी मूछें कौड़े की तरह भारी-भारी ख़ूनी आँखें और भी गज़ब ढाती थीं। शायद इसीलिये, उनके आगे प्रेम का दम भरती हुई भी, उनकी सुन्दरी ब्राह्मणी उन्हें हृदय से नहीं चाहती थी। मगर, वह तो उसके रूप यौवन पर अन्धे थे। उन्हें यह ज्ञान नहीं था कि मुग्ध-मन, चमाचम रूप के परदे के भीतर छिपा हुआ 'धोका' नहीं देख पाता। वह समझते थे कि ब्राह्मणी भी वैसे ही स्वच्छ और विशाल हृदय से उन्हें प्यार करती है जैसे वह उसको।

"पुश्त-दर-पुश्त से कृपाराम के घर पर ग़रीब और अमीर सभी तरह के विद्यार्थी शास्त्रों का अध्ययन करने के लिये आते थे। मृत्यु के बाद कृपाराम ने भी उस सिलसिले को तोड़ा नहीं था। उनकी विद्या और विद्वत्ता से भी अनेक विद्यार्थी लाभ उठाते थे। उन्हीं विद्यार्थियों में से एक युवक और सुन्दर छात्र ने उनकी गृहस्थी में आग लगा दी।

"कृपाराम, रोज़ शाम को पाँच बजे, घर के बाहर—कभी मित्रों से मिलने, कभी टहलने—चले जाया करते थे। लौटते थे नौ-साढ़े-नौ बजे। एक दिन घर से बाहर होने के घण्टा-डेढ़-घण्टा बाद ही उनका जी उचट गया। न जाने क्यों कलेजा धड़कने लगा। मानो उनकी स्त्री, उनका घर, उन्हें पुकार रहा था। मानो कोई भीषण-विपत्ति उन्हें घर लौट चलने का सन्देश दे रही थी। उनका जी ऐसा उचटा—ऐसा उचटा कि, हमेशा पैदल चलने वाले वह, एक्के पर बैठ कर घर की ओर लपके।

"घर पहुँचने पर देखा बाहरी दरवाज़ा अधखुला पड़ा था। उनकी अनुपस्थित में तो ब्राह्मणी हमेशा दरवाज़ा बन्द रखती थी—आज माजरा क्या है? वह धीरे से दबे-पाँव भीतर घुसे। उनका मकान महल्ले के बाहर, पक्का, छोटा और दो-खण्ड का था। उन्होंने सुना ऊपरी खण्ड पर कोई पुरुष बोल रहा था—

"प्यारी! चलो हम यहाँ से कहीं दूर देश भाग चलें। यह चोरी-लुक्के का प्रेम ठीक नहीं।"

"मगर तुम तो ग़रीब विद्यार्थी हो मेरे राजा!' स्त्री-कण्ठ से उत्तर मिला—'हमारा तुम्हारा गुज़र कैसे होगा?'

"कृपाराम की नसों में उक्त संवाद सुनते ही आग-सी लगी। वह एक बार शून्य-स्तब्ध हो रहे। काटो तो खून नहीं। हजारों तरह के भाव एक साथ ही उनके हृदय को कुरेदने लगे। क्षणभर में वह लपक कर दो-तल्ले की कोठरी—अपने पुष्प-भवन के द्वार पर जा धमके। दरवाज़े खुले थे आँखों से चिनगारियाँ बरसाते वह कोठरी में घुसे। उस समय उनकी प्राणवल्लभा—जिसके लिए उन्होंने ईश्वर को भी भुला दिया था—उनके एक युवक विद्यार्थी की गोद में खिलखिला रही थी। उनके वहाँ पहुँचते ही उस कोठरी का शृङ्गार रस वीभत्स में परिणत हो गया।

"क्रोध से अन्धे कृपाराम ब्राह्मणी और विद्यार्थी पर टूटे। अपनी काली और बलवती भुजाओं के भयानक पंजों से उन्होंने दोनों को गर्दन के सहारे पकड़ कर ज़मीन से गज़ भर ऊपर तान दिया—

'नीच! राक्षसी!!'

"वह काँपने लगे—भयानक क्रोध से। उनके पंजों के शिकार भी काँपने लगे—भीषण भय से। मगर, क्षण भर बाद ही उन्होंने दोनों को अपने चंगुल से मुक्त कर दिया। जहाँ-के-तहाँ ज़मीन पर बैठ गये। दुपट्टे में मुँह छिपा लिया। शायद रोने लगे—

"वह कब तक उस हालत में रहे, मालूम नहीं। फिर मुँह खोलने के बाद उन्होंने देखा उनके अपराधी ज्यों-के-त्यों वहीं खड़े थे। इस बार वह बोले—

'उफ़! स्त्री! तुम्हारा यह रूप भी हो सकता है? तुम ऐसे भयानक ढंग से अपने सच्चे-से-सच्चे प्रेमी को भी ठग सकती हो? तुम्हारे लिये—उफ़!—तुम्हारे लिए!'

एकाएक कृपाराम गंभीर हो उठे—

'जी करता है', उन्होंने उन दोनों से कहा—'जी करता है यहीं पर तुम दोनों विश्वासघातियों को खनकर गाड़ दूँ। मगर नहीं, मगर नहीं। मैं स्वीकार करता हूँ—इसमें अपराध मेरा था। मैंने आईने में अपना काला रूप न देखकर तुम्हारे सौन्दर्य के पीछे अपने वासना-विभ्रान्त मन को दौड़ा दिया था। अपराध मेरा है। अपराध मेरा है।'

'अच्छा', उन्होंने ब्राह्मणी को ललकारा—'अब मेरा नमस्कार स्वीकार करो देवि! अपने गहने और कपड़े सँभालो और अभी—इसी वक़्त—मेरा घर खाली कर दो। मेरी भूल थी जो मैंने तुम्हें अपनी स्त्री समझा—तुम तो इस गोरे और सुन्दर युवक की—गुरु-तियगामी की—रानी हो। चलो! सँभालो सामान!'

'और तुम!' विद्यार्थी की ओर मुड़ कर उन्होंने कहा—'मेरे भाई! तुम अब इन्हें अपनी स्त्री बनाओ। ले जाओ अपनी जवानी सफल करो। यद्यपि हृदय का पापी क्रोध मुझे तुम्हारा रक्त पान करने का आदेश देता है, मगर, मैं वैसा करने का नहीं। मैं तपस्वियों की सन्तान—ब्राह्मण हूँ। मैं दूसरों को क्षमा कर स्वयं कष्ट भोगना जानता हूँ। ओह! दुनिया ऐसी भी होती है? मनुष्य ऐसा भी होता है।'

ब्राह्मणी को अपने स्थान से न हटते देख कृपाराम स्वयं कमरे के बाहर हो गये और थोड़ी देर बाद सन्दूकभर गहने और कपड़े

लिए लौट आये। सन्दूक से चादर निकाली, उसे विद्यार्थी के हाथ में देकर बोले—

'यह रो रही हैं। मैं अब यह सब नहीं देखना-सुनना चाहता। लो यह चादर। ओढ़ाओ इन्हें। ओढ़ाओ! ओढ़ाओ!! मुझे पुनः ब्राह्मण से राक्षस न बनाओ।'

"मन्त्र मुग्ध की तरह विद्यार्थी ने आज्ञा का पालन किया।

'इस सन्दूक में', कृपाराम ने कहा—'इनके हज़ारों के ज़ेवर हैं। उनके अलावा मैंने पाँच हज़ार रुपये के नोट भी रख दिये हैं। इतने से तुम अगर समझदार होगे तो अच्छी तरह ज़िन्दगी की नाव खेने लगोगे। बस। अब तुम लोग चले जाओ यहाँ से। उठाओ! चलो!!'

"उस काले और भयानक ब्राह्मण ने उसी वक़्त अपनी रूप की रानी और उस युवक को अपने घर से बाहर कर दिया!"

कहानी कहने वाला व्यक्ति यहाँ पर ज़रा रुका। दम लेने लगा। उसके साथियों में से एक बोला—

"सचमुच विचित्र ब्राह्मण था। जैसा तुम कहते हो वैसा ही हुलिया तो औघड़ बाबा का भी है। वैसे ही काले हैं, वैसी ही लाल-लाल भयानक आँखें हैं।"

दूसरा बोला—"लेकिन यदि यह कहानी सच हो, तो यह आदमी नहीं देवता या राक्षस है। यदि मेरी औरत ने ऐसा किया होता तो मैंने तो उस मर्द और उस पापिनी नारी, दोनों का ख़ून पी लिया होता।"

"इसी से तुम महापुरुष नहीं, क्षुद्र संसारी प्राणी हो," कहानी कहने वाले ने कहा—"अब आगे की बातें भी तो सुन लो। प्रयाग के उस महल्ले वालों का कहना है कि उक्त घटना के सात दिन बाद तक ब्राह्मण कृपाराम बिलकुल उन्मत्त-से, पागल-से रहे। वह रात-बिरात रह-रह कर चिल्ला उठते—'हायरी औरत! हायरी औरत!'

अगर कोई उन से पूछता कि क्या है कृपाराम जी, आपको क्या हो गया है ? तो, अपनी सारी कहानी अक्षर-अक्षर दुहरा कर, एक लम्बी साँस लेकर, हृदय को दहला देने वाले स्वर से वह गाने लगते—

यां चिन्तयामि सततं
मयि सा विरक्ता !
* * *
यां चिन्तयामि सततं
मयि सा विरक्ता !

"इसके बाद एक दिन कृपाराम ने आस-पास के सभी ग़रीबों और भिखमङ्गों को बुलाकर उनमें अपनी सारी सम्पत्ति बाँट दी। किसी को लोटा दिया, किसी तो चाँदी की थाली दी। किसी को दुशाला ओढ़ा दिया, किसी के गले में सोने की सिकड़ी और मूँगे की माला डाल दी। मुहल्ले वाले आश्चर्य की मूर्ति बने उनकी यह लीला देखते रहे !

"उसी दिन, रात के बारह बजे के बाद, एकाएक हल्ला मचा—आग लगी !! घर से बाहर आकर लोगों ने देखा कृपाराम का घर भयानक रूप से जल रहा था। उन्होंने मिट्टी का तेल और घी डालकर घर के शेष सामानों में और उस घर में आग लगा दी थी। और स्वयं वे, एक अँगोछा लपेटे, घर के बाहर खड़े लोगों को आग बुझाने से रोकते और नाचते और अट्टहास करते और गाते रहे—

"अगिया लागी
सुन्दर बन जरि गयो हो।
अगिया लागी !"

इसी समय मठ के भीतर से अमीरों के पक्षपाती और नौकर, बुधुआ भंगी को, छड़ियों और डण्डों के सहारे बाहर खदेड़ते

दिखाई पड़े !

"भाग ! भाग !! अभी बाहर ठहर ! अभी बड़े-बड़ों से तो औघड़ बाबा को फुर्सत ही नहीं है, और तू साला अछूत-भंगी भीतर पिला पड़ रहा है। मारूँगा व' हाथ की खोपड़ी भन्ना उठेगी ।"

बुधुआ बाहर बैठ कर रोने लगा। उसकी दुधमुहीं रधिया और भी जोर से घिघियाने लगा। बातूनियों का दल तमाशा देखने लगा। कहानी कहने वाला व्यक्ति भी अपनी बातें भूल मठ के फाटक की ओर देखने लगा !

: ७ :

अखाड़े में

अखाड़े के भीतर, आँगन में, बड़ी भीड़ थी। कोई दो-सौ औरतें, मर्द और बच्चे इकट्ठे थे। भीड़ से पच्चीस गज की दूरी पर, सामने, बरामदे में, एक धूनी जल रही थी। उसकी चारों ओर अनेक औघड़-पन्थी साधु बैठे थे। सभी देखने में डरावने और वीभत्स मालूम पड़ते थे।

भीड़ में एक पुरुष की गोद में सवार किसी पाँच-छः बरस के लड़के ने उससे पूछा—

"बाबू जी, औघड़ बाबा कौन हैं ?"

"वही, वही," पुरुष ने धूनी की ओर बच्चे को आकर्षित करते हुए उत्तर दिया—"वह देख, बीच में कंबल पर बैठे हैं। देखा ?"

पुरुष की गोद में चिपकते हुए, काँपते कलेजे से, लड़के ने कहा—

"वह—वह तो बड़े डरावने हैं बाबू जी ! भागो, भागो ! मुझे

डर मालूम पड़ता है। औघड़ बाबा पकड़ेंगे। औघड़ बाबा मारेंगे। भाग चलो बाबू जी।"

"चुप-चुप!!" प्रेम भरे शासन के स्वर में बच्चे को चुप कराता हुआ पुरुष बोला—"नहीं—ऐसा न कहो। उनसे डरो मत बेटा, वह देवता हैं। अभी मैं तुम्हें उनके पास ले चलूँगा। वह तुम्हारे पेट का रोग दूर कर देंगे।"

"उनकी आँखें इतनी बड़ी-बड़ी क्यों हैं? ऐसी लाल-लाल क्यों हैं? उनके मुँह पर इतने बड़े-बड़े और काले-काले बाल क्यों हैं बाबू जी, उनका रङ्ग इतना काला क्यों है? मुझे डर मालूम पड़ता है। भाग चलो यहाँ से, नहीं तो, औघड़ बाबा मुझे पकड़ लेंगे।"

इसी समय औघड़ की कर्कश-कण्ठध्वनि ने भीड़ में सन्नाटा डाल दिया। लोग स्तब्ध-से होकर धूनी की ओर बड़े ध्यान से देखने लगे। वहाँ, औघड़ के सामने, कोई मोटा-सा सुफ़ैद पोश अमीर, हक्का-बक्का-सा बैठा था। औघड़ अपनी भयावनी आँखों से उसे घूर रहा था। क्रोध से उसके होठ फड़क रहे थे। लोगों ने एक और आश्चर्यजनक बात देखी। उस मोटे-मलके मुँह और गर्दन और माथे पर कई रुपये और गिन्नियाँ चिपकी हुई चमक रही थीं।

"पाजी, बदमाश!" औघड़ ने उसे डाटा—"ऐसा काम क्यों किया?"

"ऐसा काम क्यों किया?" औघड़ के पार्श्ववर्ती दूसरे औघड़ों ने भी प्रतिध्वनि की।"

मोटा आदमी मारे भय के काँपने लगा। उसके रोम-रोम से पसीना बह चला। एक बार मुँह पर हाथ फेर कर उसने रुपयों और गिन्नियों को छुड़ाने की चेष्टा भी की—मगर, व्यर्थ। वे उसके बदन पर इस तरह सट गये थे जैसे माँस और नाख़ून।

"उसने औघड़ बाबा को रुपये का लालच दिखाया है।" भीड़ के एक व्यक्तिने अपने साथी से कहा—"मैं तो देख ही रहा था। उसने जाते ही वे रुपये और गिन्नियाँ निकालकर औघड़ बाबा के खप्पर में डाल दीं। बस इसीसे वह बिगड़ पड़े। वह किसी से कुछ लेते थोड़े ही हैं।"

"मैं तो अपने पीछे खड़े उस आदमी की गोद के बच्चे की बातें सुन रहा था।" उसके साथी ने कहा—"मैंने तो देखा ही नहीं। ये रुपये और गिन्नियाँ इसके मुँह पर किस तरह सट गयीं?"

"औघड़ बाबा ने," पहले व्यक्ति ने उत्तर दिया—खप्पर समेत चाँदी और सोने के उन टुकड़ों को उस मोटे-मल के मुँह पर खींच मारा। वह देखो, खप्पर उधर पड़ा है। देखते हो? मुर्दे की खोपड़ी है। कैसी डरावनी मालूम पड़ती है!"

"और वे रुपये उसके मुँह पर चिपके ही रह गये! अरे, वह तो तड़प रहा है। क्या अब वे उसी तरह चिपके ही रहेंगे। बच्चू साधुओं को अपनी अमीरी दिखाने गये थे। तुम्हें मालूम नहीं, साला भारी मक्खीचूस है। हज़ार तरह की बेईमानी से रुपये बटोरता है। ग़रीबों के गले बे-रहमी से काटकर अघोड़ी बाबा को अपनी दानशीलता दिखाने आया था।"

"रुपये क्यों लाया? रुपये क्यों लाया?" अघोड़ी की आवाज़ एक बार पुनः चारों ओर गूँज उठी—"किसने तुझे बताया कि मैं रुपयों का ग़ुलाम हूँ। किसने तुझे बताया कि मैं चाँदी या सोना लेने के बाद कुछ देता हूँ?"

मोटा आदमी रोता और काँपता रहा। उसकी आकृति इस तरह बिगड़ गयी थी मानों वे चिपके हुए चाँदी-सोने के टुकड़े जोंक की तरह उसके जीवन का रस सोख रहे हों। उसने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए कहा—

"अपराध हुआ महाराज! मूर्ख हूँ, बेवकूफ़ हूँ, क्षमा कीजिये। दोहाई है औघड़ बाबा की! इन रुपयों और गिन्नियों को मेरे मुँह पर से जल्द छुड़ाइये। बड़ी व्यथा—उफ़!—मरा जा रहा हूँ।"

वह दोनों हाथों से अपना मुँह छिपाकर रोने और तड़पने लगा।

"जा—भाग!" औघड़ ने आदेश दिया—"गंगा जल से अपना मुँह धो डाल! ख़बरदार, फिर कभी किसी साधु को चाँदी-सोने के जाल में फँसाने की कोशिश न करना। तू क्यों आया था? उसी काम के लिए—अपने लड़के के लिये न? उसे क्षय हुआ है? अरे पागल, उसे क्षय हुआ है तेरे ही पापों से। सुना नहीं है—बाढ़े पूत पिता के धरमा। मगर, तू क्या धरम करता है? किसी मुसीबत-ज़दे को कभी चार रुपये क़र्ज़ देता है तो पन्द्रह वसूल करता है। छोड़ इस कमीनी आदत को। रुपये का उपयोग समाज के ग़रीबों की भलाई करना है। अर्थ—पिशाच की तरह सूद लेना बन्द कर। तेरा लड़का चंगा हो जायगा। हट यहाँ से—भाग!"

"भाग! भाग!" दूसरे औघड़ों ने भी पुनः प्रतिध्वनि की। मोटेमल अपनी तोंद सँभालते धूनी के सामने से अखाड़े के बाहर की ओर भाग खड़े हुए। भीड़ के कुछ लोग उसकी दुर्दशा पर मुँह छिपाकर हँसने लगे। कुछ लोग औघड़ बाबा के करामात देख कर सन्न रह गये!

: ८ :

कौन रोता है?

"कौन रोता है? कौन रोता है?"

एकाएक औघड़ लाल-लाल आँखें निकाल कर उग्र-रूप से

चिमटा लेकर खड़ा हो गया।

"रोता कौन है ? कोई तो नहीं।" दूसरे औघड़ों ने आश्चर्य-चकित हो खड़े होते-होते उत्तर दिया।

"कौन रोता है ? कोई तो नहीं।" भीड़ के कुछ लोगों ने भी औघड़-राज को भीत-स्वर से उत्तर दिया।

"उहुँक ! ज़रूर कोई रोता है। इधर देखो, मेरी छाती में तूफ़ान-सा उठ रहा है। ज़रूर कोई रोता है। ज़रूर किसी ग़रीब और दुखी को किसी अन्यायी ने सताया है। बताओ ! बताओ !!" औघड़ ज़ोर-ज़ोर से गरज ने लगा—"कौन रोता है ? कौन रोता है ?"

अखाड़े के भीतर खड़े सभी लोग अवाक्-से होकर अपने आस-पास के प्राणियों के मुख और आँखों को आँखों से टटोलने लगे; मगर, वहाँ तो कोई नहीं रोता था। सभी औघड़ बाबा से मिलने, अपने दुख सुनाने और आशीर्वाद पाने के लिये उत्सुक खड़े थे।

"बाहर देखो, फाटक के बाहर कोई रो रहा है। दौड़ो ! उसे अभी मेरे पास लाओ। रास्ता छोड़ो, ऐ सुफ़ेद कपड़े वालो ! रास्ता छोड़ो, ऐ आदमी होकर भी दूसरे आदमी को ग़रीब और घृणित समझने वालो ! मैं पहले उस रोने वाले से मिलूँगा ! उसे मेरे पास लाओ। दौड़ो !"

दस-पाँच सुफ़ैदपोश भी बाहर की ओर दौड़े और दो-चार औघड़ भी। भीड़ने धूनी वाले बरामदे से लेकर फाटक तक रास्ता साफ़ कर दिया। औघड़ क्रुद्ध रूप से बरामदे में टहलने और अर्ध-स्वगत रूप से बड़बड़ाने लगा—

"शायद उसे किसी ने यहाँ आने नहीं दिया। वह फूट-फूटकर रो रहा है। हाँ जी—ज़रूर रो रहा है ! दुनिया की हँसी की आवाज़ तो मेरे कानों में पड़ती ही नहीं। इनमें केवल रोदन की

करुण-झंकार ही सुनायी पड़ती है।"

एकाएक फाटक की ओर देखकर औघड़ पुनः चिल्ला उठा—

"वह आया! आया न! देखो, वह अभी तक रोही रहा है! अरे—अरे! यह तो—यह तो—बुधुआ!"

औघड़ ने झटपट आगे बढ़कर, सुफ़ैदपोशों और दूसरे औघड़ों के आगे-आगे रधिया को गोद में लिये आते हुए बुधुआ का हाथ पकड़ लिया—

"बुद्धू—बुधराम—बुधुआ! अरे तू बाहर बैठा रो क्यों रहा था? पागल कहीं का। तुझ पर क्या विपत्ति पड़ी है रे?"

तेज़ी से बुधुआ के हाथ से नन्हीं रधिया को औघड़ ने अपनी गोद में ले लिया। खूबसूरत गुड़िया की तरह सुन्दर रधिया, दाढ़ी वाले काले और भयानक औघड़ की गोद में जाने से झिझकी नहीं। हाँ, उल्टे उसने घिघियाना बन्द कर दिया। कुछ चकरायी-सी वह टुकर-टुकर औघड़ का मुँह ताकने लगी।

"यह वही है न? वही—क्या इसका नाम बताया था...?"

"रधिया—रधिया है स्वामी जी। यह तो आपही के आसीस से जनमी है। यह आप ही के चरणों की धूल है। आह! अब कैसी चुप हो गयी। आपकी गोद में जाकर अपनी माँ को भूल गयी!"

"क्यों, इसकी माँ का क्या हुआ? तूने, तो बताया ही नहीं बुधुआ, तू बाहर बैठकर रो क्यों रहा था? भीतर मेरे पास क्यों नहीं चला आया? तुझे क्या उस साल की मेरी बातों पर विश्वास नहीं हुआ? मैंने तो तुझसे तभी कह दिया था कि मैं तुझे नीच या अछूत या अपने अथवा किसी से भी छोटा नहीं मानता। बोलता क्यों नहीं? तू भीतर क्यों नहीं आया भाई?"

औघड़ की हृदय से निकली हुई प्रेम-भरी बातों ने बुधुआ को पुलकायमान कर दिया। उसकी आँखें छलछला उठीं। वह चुप

रहा—सजल आँखों से औघड़ मनुष्यानन्द का मुँह ताकता रहा।

"बोल, तुझे किसने नहीं आने दिया? आदमी के चोले में यहाँ ऐसा कौन व्यक्ति है जिसने तुझे इस तरह से अपमानित कर इतना सताया? बता तो, मैं एक बार उसकी शकल देखूँ। नहीं, डर मत। संकोच भी न कर। ज़रूर बता, मैं देखना चाहता हूँ उस व्यक्ति को जो अछूत या भंगी समझ कर तुझसे घृणा करता है! तुझे भी सबकी तरह पंचतत्व का पुतला नहीं मानता। तुझमें भी उस परम प्रकाश की एक रेखा नहीं देखता। तू चुप है। तू नहीं बतायेगा। तू उनसे अधिक साधु या महापुरुष या ऊँचा है जिन्होंने तुझे इस अखाड़े में नहीं घुसने दिया था। तू उन्हें मेरे क्रोध से बचाना चाहता है। नाः नाः नाः नाः। यह नहीं होने का। मैं देखना चाहता हूँ उस आदमी को।"

औघड़ की लाल-लाल आँखें अंगारे की तरह चमक उठीं। साधारण लोगों की साधारण आँखों ने उन आँखों में क्रोध की छाया अवश्य देखी; मगर, उफ़! साधारण क्रोध से वह कितना तेजस्वी, कितना भीषण, कितना उग्र क्रोध था। अखाड़े में एकत्र सारी जन-मण्डली स्तब्ध-सी हो रही। जिन्होंने बुधुआ को अपमानित किया, मारा और फाटक-बाहर कर दिया था उनकी तो मारे डर के नानी ही मर गयी। वहाँ एकत्र सभी लोगों को विश्वास था कि औघड़ कोई महापुरुष, अत्यन्त शक्तिशाली योगी है। उसे बुधुआ के अपमान पर इस तरह उत्तेजित देख कुछ लोग अपने अगल-बगल वालों से फुसफुसाने लगे—

"किसने इसे निकाल दिया था जी?"

"मैं क्या जानूँ बाबा," एक परम आस्तिक प्रकृति के व्यक्ति ने कानों पर हाथ धरते हुए कहा—"मैं खुद फाटक के पास होता तो ऐसा काम कदापि न करता। वैसे चाहे मैं किसी भंगी या मेहतर-हेला को न छूऊँ, उनसे दूर ही रहूँ, मगर, बाबा जी के

पास आने से तो कभी न रोकता। दुनिया में सबकी विपदा बराबर समझनी चाहिये। महाराज ठीक ही कहते हैं, भंगी हो या ब्राह्मण, सबकी काया एक ही मिट्टी से तो सँवारी गयी है। भंगी-चमार के माथे पर कोई सींग तो होता नहीं। राम, राम! जाने कब से बेचारा रोता रहा। ऐसा रोया कि औघड़ बाबा का कलेजा काँप उठा।"

भीड़ के पिछले भाग में दो-तीन आदमी इस बुधुआ-काण्ड पर आलोचना करने लगे—

"अरे, अरे!! औघड़ बाबा ने तो बुधुआ को इतनी आसानी से छू लिया मानों किसी ऊँची जाति के आदमी का स्वागत करते हों।"

"आखिर औघड़ ही ठहरे, इनके लिये ऊँच-नीच का भेद कैसा।"

"अब हम सब को भी उसी हाथ से छूएँगे। न जानें क्यों मेरे तो रोंगटे खड़े हो रहे हैं। मुझ से भंगी छू गया होता, तो मैं तो बिना स्नान किये अपने 'मन' को शुद्ध न समझता।"

"और, मुसलमान साईस के साथ अपनी जोड़ी पर बैठ कर पान चबाने में तुम्हें घृणा नहीं होती, क्यों? मुसलमान तो गोमांस खाता है। उसे छूने से तुम्हारा मन क्यों नहीं अपवित्र होता?"

मानों पहले व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति की खरी बात से चोट-सी लगी। वह तिलमिला-सा उठा। ज़रा झिझक कर और कुछ उत्तेजित होकर उसने कहा—

"बड़े उपदेश देने वाले! अरे मुसलमान को सभी छूते हैं; और छूते हैं बिना उस तरह की भयानक घृणा अपने मन में लाये जिस तरह की घृणा भंगी को छूने से होती है। तुम कहाँ के देवता हो, परमहंस हो। स्वयं तुम भी तो गोमांस-भक्षक मुसलमान को

छू कर निस्तेज नहीं होते ? स्वयं तुम भी तो—भंगी को नहीं छूते ?"

"नहीं छूता इसलिये कि छूने की कोई जरूरत नहीं पड़ती। मुझसे कभी कोई भंगी या अछूत छू जाता है तो मैं नहाता नहीं। मेरे मन पर उसका कोई विशेष प्रभाव भी नहीं पड़ता। मेरे लिये—जहाँ तक छू-जाने का सम्बन्ध है—भंगी, मुसलमान, हिन्दू और तुम बराबर हो।"

पहले व्यक्ति ने, जो मक्खन की तरह मुलायम, तगड़ा और गोरा था, देखने में अमीर-सा मालूम पड़ता था, मुँह फुलाकर कहा—

"चुप रहो ! तुम तो बोलते-बोलते गाली देने लगते हो। भंगी-मुसलमान और मैं ! छिः—जो तुम-सा भ्रष्ट न हो उसको तुम अपमानित करते हो।"

दूसरे व्यक्ति ने मुस्करा कर, धीरे, मगर ताने से कहा—

"सिया-राम-मय सब जग जानी,
करौं प्रणाम जोरि जुग पानी।"

इसी समय औघड़ का कर्कश कण्ठ-स्वर भय-पूर्ण सन्नाटे की तरह सब के कानों में व्याप उठा—

"मैं तुम सबसे पूछता हूँ—सच बोलो ! मेरे सामने आओ ! किसने बुधुआ को इतना रुलाया है ? जिसने उसे मेरे पास आने से रोका है, मैं एक बार उस मनुष्य की सूरत देखना चाहता हूँ।"

बाबा कीनाराम के अखाड़े में क्षण भर के लिये गम्भीर सन्नाटे का राज्य हो गया !

: ६ :

लियाक़त हुसैन

लियाकत हुसैन ने कहा—"रहमान, अरे यार थोड़ी देर के लिये इस बैठक में मुझे अकेला ही छोड़ दो। अभी कितने बजे होंगे? साढ़े-चार? नहीं। अँधेरा गाढ़ा हुआ जा रहा है, पाँच से ऊपर बज गये होंगे। बस डेढ़-घण्टे के लिए तुम कहीं घूमने-फिरने चले जाओ। नाराज़ न होना, मुझे तुमसे ऐसा कहना नहीं चाहिये; तुम मेरे मिहमान हो; मगर, भाईजान, कुछ काम ही ऐसा है जिसके लिये रोज़—शाम छ:-बजे से रात आठ-बजे तक—मैं इस बैठक में अकेले ही रहता हूँ। अपने भाई को—अपने बेटे को—भी यहाँ नहीं फटकने देता।"

कुछ ताज्जुब में आकर रहमान ने पूछा—"आख़िर ऐसा कौन-सा काम है बड़ेमियाँ जिसे तुम अपने भाई, बेटे और मेरे-जैसे पुराने दोस्त से भी छिपाते हो?"

"उहूँ! तुमने समझा नहीं। मैं उस काम को अपनी जात के किसी भी आदमी से नहीं छिपाता। मगर, जिस वक़्त मैं उस मज़ेदार काम का दीबाचा तैयार करने बैठता हूँ, उस वक़्त, अपने पास किसी को नहीं रहने देता। तुम पहले घूम कर लौट आओ, फिर देखना कैसा अच्छा है वह काम। मुझे डर है—एक बार उसका मजा पा जाने पर फिर तुम जल्द मेरा घर छोड़ोगे नहीं।"

"अच्छा बड़ेमियाँ," रहमान ने कहा—"मैं अभी जाता हूँ। मैं सचमुच तुम्हारे किसी काम में दस्तन्दाज़ी कर तुमको हैरान नहीं करना चाहता। मगर, क़सम ख़ुदा की, ईमान से कहता हूँ, तुम्हारी बातें सुनकर मेरे पेट में चूहे कूदने लगे हैं। ज़रा-सा इशारा भर कर दो—अकेले यहाँ रहकर तुम कौन-सा काम करोगे?"

"कुछ औरतों को बच्चे देने का इन्तजाम करूँगा और अपनी रोज़ी कमाऊँगा। तुम तो जानते ही हो, आजकल मैं बे-कार बैठा रहता हूँ। पाँच-बरस से मैंने दुर्गाकुण्ड पर बैठकर माला बेचना बन्द कर दिया है। वह काम अब मेरा लड़का करता है। पहले—कोई दस बरस की बात है—मैं गोश्त बेचा करता था। मगर, उस काम को तो कभी अपने छोटे भाई को सौंप दिया। अब वही दाल की मण्डी वाली दूकान पर बैठता है। सब कुछ कर थकने के बाद अब यही—औरतों को बच्चा देने का काम—मुझे बहुत ज्यादा पसन्द आया है। आजकल गो कि आरिया-समाजियों ने हम लोगों की रोजी देने वाली हिन्दू औरतों को हमारे खिलाफ बहका दिया है; फिर भी, रोज़गार चलता ही है। जहाँ पहले मेरे पास महीने में दो-ढाई-सौ औरतें, बच्चा पाने के लिए, आती थीं; वहाँ, अब, इस गुज़रे ज़माने में भी कोई सौ-सवा-सौ औरतें आती ही हैं। इतना भी बहुत है। औसत तीन-चार औरतें रोज़ आती हैं, जिनकी वजह से मुझे कम-से-कम दो-तीन रुपये रोज़ मिल जाते हैं। पहले तो रुपयों के साथ-साथ 'मज़ा' भी लिया करता था; पर अब, तुमसे झूठ क्यों बोलूँ, मज़ा लेने की ताक़त नहीं रह गयी। अब मज़ा दूसरे लेते हैं, रुपये मैं लेता हूँ।"

"आहा!" आश्चर्यमय प्रसन्नता से मुँह फैलाकर रहमान ने कहा—"बड़ेमियाँ—यह नुस्खा तुम्हें कहाँ से मिला? अरे, यार! यह तो बड़े मुनाफ़े का रोज़गार है। कसाई का काम इसके आगे झख मारे और माली का काम भाड़ में जाय। मुझे मालूम है, लखनऊ में मेरा एक दोस्त ठीक यही रोज़गार करता है। तुम तो बुड्ढे हो चले, वह खूब जवान और तन्दुरुस्त है। उसने हज़ारों हिन्दू औरतों को बच्चे दिये हैं। वह सारे शहर की औरतों में मशहूर है। उसने कई हज़ार रुपये इस रोज़गार से पैदा किये हैं। ख़ैर। एक बात तो बताओ। जो लोग तुम्हारी मिहरबानी से 'मजा'

पाते हैं उनसे तुम कुछ फ़ीस भी ज़रूर लेते होगे। ऐसा ही वह लखनऊ वाला भी करता है। हाँ, कितनी फ़ीस होती है बड़े-मियाँ ?"

"अजी फ़ीस-वीस कुछ नहीं लेता," दाढ़ी पर हाथ फेरते-फेरते निरक्षर भट्टाचार्य, पर, साधारण लोगों का 'मौलवी लियाकत हुसेन' बोला—"ख़ुदा के फ़ज़्ल से और तुम चार दोस्तों की दुआ से मुझे रुपयों के लिये कुछ वैसी हाय-हाय करने की ज़रूरत नहीं पड़ती। लड़का लायक़ है, दुर्गाकुण्ड पर माला-फूल बेचकर काफ़ी पैसे पैदा कर लेता है। साथ ही, मेरे लिए बच्ची-बच्चे-परस्तों को भी ठिकाया करता है। अजी मियाँ रहमान, तुम नहीं जानते, इन हिन्दुओं के मन्दिरों के फाटक भी हूरों के खलिहान हैं। दुनिया का कोई भी, किसी भी हिन्दू-मन्दिर के फाटक पर पन्द्रह-बीस, हद-से-हद तीस, दिनों तक हाज़िरी देकर एक-न-एक हूर को अपना बग़लगीर कर सकता है। उफ़! क़सम ख़ुदा की ! ग़ज़ब की भोली होती हैं हिन्दुओं की औरतें। ज़रा-सा देवता, पीर, भूत और जिन्न के नाम सुनते ही काँपने लगती हैं। फिर तो उनसे जो चाहो वही मांगलो। गहने, पैसे और—उसका कोई मज़हबी नाम रखकर याने पूजा-पत्तर का रूप देकर—इज़्ज़त भी। हिन्दू औरतें ख़ाहशा कम होती हैं। मगर, अगर कोई बनाने वाला हो, तो, वे सब कुछ बन सकती हैं। कम-से-कम मैंने तो बे-गिनती हिन्दू औरतों को केवल बच्चा देने के लालच में उलटा-सीधा नाच नचाया है। तुम पूछते थे मैं फ़ीस क्या लेता हूँ ? कुछ नहीं। मुतलक नहीं। मैं किसी से एक छिब्बा भी नहीं माँगता। मगर, देने वाले दे ही जाते हैं— और तुमसे झूठ क्यों कहूँ, आज तक किसी भी 'मज़ा' लेने वाले ने मुझे आठ-आने से कम नहीं दिये। भीड़ लगी रहती है भीड़। शहर के दर्जनों आवारे बन्दए इस-लाम मेरे दरवाजे पर उसी तरह सर पटका करते हैं जिस तरह

अपने माशूक़ के दरवाजे पर कोई आशिक़। अच्छा, अब बस। वक़्त हो चला। 'मामले' आते होंगे। तुम जाओ ज़रा टहल आओ। आज तुम्हारी भी ख़ातिर होगी। सबसे ख़ूबसूरत चीज़ के लिये पाकरूहका काम तुम्हीं को दूँगा। हाँ, सच कहता हूँ; मुझे झूठ बोलने की आदत नहीं।"

"नहीं बड़े मियाँ! मैं तो एक दूसरी ही बात अर्ज़ करना चाहता था। आप जानते ही हैं, मैं ब्योपार के सिलसिले में दो-चार दिनों के लिए यहाँ आया हूँ। आप यह भी बख़ूबी जानते हैं कि मदनपुरे में मेरे कई अज़ीज़ हैं। उन सब को छोड़ कर आपके यहाँ डेरा डालने की वजह भी आप ऐसे जहाँ-दीदा आदमी को जानना चाहिये। मैं केवल 'मज़ों' के लिए ही आपकी ख़िदमत में हूँ। और, मैं आपसे अर्ज़ करता हूँ कि आप किसी-न-किसी हूर को चार-पाँच दिनों तक बराबर अपने यहाँ रोक रखें। जो ख़र्च लगेगा मैं ओढूँगा। कलिया, पुलाव, कोर्मा। मुर्ग़, अण्डे, दो-प्याज़ा—चार-पाँच दिनों तक सारा ख़र्च मेरा। मगर एक 'चीज़' दोगे तभी। बस, बन्दगी। मैं दो घंटे में लौटूँगा। किसी को ज़रूर रोके रखना—हाँ; भूलना मत।"

लियाक़त दाढ़ी में मुस्कराने लगा। रहमान ने समझा अर्ज़ी मंज़ूर हो गई। वह भी मुस्कराने लगा। इस बार ज़रा मज़ाक़ से, लम्बा—कोई दो गज़ का—एक सलाम कर वह कमरे से बाहर की ओर बढ़ा। मगर, दरवाज़े पर शायद उसे कोई बात सूझी, वह लौट पड़ा—

"मगर, एक बात का ख़याल रखना बड़े मियाँ।" उसने कहा—"कहीं अपनी उमर की कोई 'चीज़' न रख छोड़ना। नहीं तो, सारा मज़ा किरकिरा हो जायगा।"

दरवाज़े की ओर रहमान को दिखाता हुआ लियाक़त बोला—

"वह देखो! कोई ख़ूबरू 'मामला' आ रहा है। हो पसन्द, तो

बोलो। तुम्हारे लिये पहले इसी चिड़िया पर जाल डाल—बिस-मिल्ला करूँ।"

"बस ठीक है। बस खूब है!" रहमान ने कहा—"काफ़ी अच्छी है। डालिये कम्पा। इससे मेरी दिलबस्तगी हो जायगी।"

आने वाली औरत पर एक तेज़ निगाह डालता हुआ, रह-मान तेज़ी से कमरे के बाहर हो गया।

: १० :

सुकली

एक ही दृष्टि में रहमान को पसन्द आ जाने वाली वह औरत बुधुआ की लुगाई सुकली थी।

सुकली को बनारस के बेनिया पार्क के उस कोने के भंगी-टोले में बुधुआ के साथ रहते तीन वर्ष से ऊपर हो चले थे। उसे उसके गोरखपुरी 'मर्दुये' ने जिस तरह सताया था बुधुआ उसी तरह आराम से रखता था। अगर कभी वह ज्यादा मिहनत-मजूरी करना भी चाहती, तो वह उसे न करने देता। कहता—"तू क्यों हाय-हाय करती है? मैं तो कमाता ही हूँ। इतना कमाता हूँ जितना हम खा नहीं सकते। हर महीने में कुछ-न-कुछ बच ही जाता है। फिर तेरे कमाने और घर-घर नरक साफ़ करने के लिए घूमने की क्या ज़रूरत है?" बुधुआ के इसी प्रेम-भाव के कारण ही सुकली भंगी टोले की सभी भंगिनों से ज्यादा साफ़ रहा करती। उसे पहनने को मोटा मारकीन या गाढ़े की छींट ही मिलती थी—मगर, साफ़। बुधुआ ज़ोर देकर उसे साफ़ रहने को कहा करता।

बधुआ के पास आते ही, आरामों का मुँह देखते ही, सुकली

के मन में एक अभिलाषा का उदय हुआ। वह अभिलाषा थी पुत्र पाने की। उसने कई बार, बल्कि, हर महीने में चालीस बार, बुधुआ पर अपनी इच्छा प्रकट भी की। उससे कहा कि वह किसी साधु-महात्मा या जिन्न-देव से उस के लिए एक पुत्र—एक गोरा-सा, सुन्दर-सा खिलौना-सा, बेटा—माँग दे। बुधुआ उसकी बातें सुनकर पहले तो उसे समझाने की कोशिश करता—"देख, मेह-राऊ! बेटी-बेटा आदमी के दिये नहीं मिलता। उसके लिए कोशिश-पैरवी भी व्यर्थ है। उसे तो भगवान ही दे सकते हैं। हट! तू नाक क्यों सिकोड़ती है? अरे मैं खूब जानता हूँ। तेरे मिलने से पहले मैं एक अमीर के घर कमाया करता था। उस के भी कोई लड़का नहीं था। विश्वास मान, उसने हजारों रुपये पूजा-पाठ और होम-जाप में खर्च किये, सैकड़ों साधुओं की उसने बेटा पाने के लिए सेवा की; मगर, व्यर्थ। दुनिया का कोई आदमी उसे बेटा न दे सका। इसीलिए कहता हूँ, मान जा। भगवान के आसरे रह। उसकी मरजी होगी तो वह तुझे बेटा भी देगा, बेटी भी। उसकी मरजी नहीं होगी तो, उलटी होने पर भी, तेरी कोख से एक गुड़िया भी जन्म न ले सकेगी।" मगर सुकली न मानती। वह हर महीने बुधुआ के कुछ पैसे भूत-प्रेत और ढोंगी साधुओं के फेर में नष्ट करती।

जब सुकली पहले-पहल गर्भवती हुई तब उसकी प्रसन्नता का कोई ठिकाना न रहा। वह रोज-रोज यही सोचती कि उसका इतना लेना-देना-अब फल देगा। उसी समय उसने सुना कि कीनाराम के अखाड़े में कोई भारी महात्मा अघोड़ी आया हुआ है। उसने यह भी सुना कि अघोड़ी सब कुछ जानता है, वह सब कुछ कर सकता है। उस बुधुआ को अघोड़ी से मिलने के लिए विवश किया। मगर अफ़सोस! अघोड़ी बाबा ने सुकली के खसम की बातें सुनकर जो जवाब दिया उसे सुनकर सुकली का दिल टूट

गया। अघोड़ी ने कहा—"बुधुआ, इस बार तो तुझे लड़की ही होगी, फिर आगे की राम जाने।" हुआ भी वही। सुकली के गर्भ से रधिया ने जन्म लिया।

यद्यपि बच्ची रधिया वैसी ही खूबसूरत थी जैसा खूबसूरत बेटा सुकली चाहती थी; लेकिन वह बेटा जो नहीं थी—इस से सुकली ने उसे प्यार नहीं किया। रधिया कें-कें चिल्लाती रहती और वह सुनती रहती; उसे चुप कराने या दूध पिलाने की कोशिश न करती। अगर उसकी इस हृदय-हीनता पर बुधुआ डाटता-डपटता तो वह कहती कि—'मैंने इस मुँह-झौंसी को किससे माँगा था जो इसने मुझे नौ महीने तक हलाल किया। मैं तो बेटा चाहती थी—मैं तो पूत चाहती हूँ। यह मर जाय—इसके मुँह में आग लगे। मैं लड़की नहीं चाहती, फिर चाहे वह सीता-सती गौरा-पार्वती ही क्यों न हो।"

रधिया के बाद दो वर्षों तक फिर उसे कोई सन्तान नहीं हुई, वह देवी-देव, जिन्न-शैतान को मनाती ही रह गयी। आखिर उसे एक दिन कबीर-चौरा मुहल्ला की रहने वाली एक नयी-नवेली भंगिन ने मौलवी लियाक़तहुसैन का पता बताया। "बहिन, बहिन" उसने सुकली से कहा—"बस दो-तीन दिन मौलवी साहब के घर पर जाने ही से, और रोज़ उन्हें चार आने पैसे क़ब्र की पूजा के लिए देने ही से मुँह-माँगी मुराद मिल जाती है। अरे मेरा यह जो 'डुनुआँ' है और रमजनवाँ की लुगाई भोलिया का वह जो 'दरगहिया' है—यह दोनों मौलवी साहब के दिये हुए बेटे हैं। मैं और भोलिया साथ-साथ मौलवी के यहाँ जाती और क़ब्र देवता की पूजा कर आती थी। तू भी जा—हाँ; जरूर जा। तेरी इच्छा पूरी हो जायगी।"

सुकली को तो बेटा चाहिये था; फिर, चाहे वह हिन्दुओं के देवता से मिले या मुसलमानों के; इससे उसका कोई वास्ता नहीं।

कबीर चौरा वाली सखी की बात सुनकर वह मौलवी लियाक़त हुसैन के घर जाने, क़ब्र पूजने और चार-चार आने तीन-चार दिनों तक ख़र्च करने के लिए व्यग्र हो उठी।

आख़िर उस दिन शाम को, जब बुधुआ घर पर नहीं था, अपनी सबसे साफ़ धोती पहन कर, माथे में जरूरत से कहीं ज्यादा कड़ुआ तेल चुपड़ कर, आँखों में मूसल की तरह काजल की रेखायें सजाकर, मुँह में सेरभर मिस्सी लपेट कर, माँग में सिंदूर का मोटा तिलक लगाकर, आँचल के कोने में एक अठन्नी बाँध कर, वह चमकती, मटकती दुर्गा कुण्ड की ओर – दो-तीन दिनों में बेटा देने वाले मौलवी की तलाश में—चल पड़ी!

: ११ :

"छुरा दे! छुरा दे!!"

उस दिन शामको पाँच-साढ़े-पाँच बजे बेनिया पार्क के पीछे वाले भंगी-टोले के भंगी और भंगिनें अपनी झोंपड़ियों के सामने वाले मैदान में एकत्र होकर आपस में साश्चर्य पूछ-ताछ कर रहे थे कि, आज सुबह से ही बुधुआ कहाँ ग़ायब है?

"ओरे, ओरे!" सात कोने का मुँह बनाकर एक बूढ़ी भंगिन कहने लगी—"वह दाढ़ीजार का पूत तो लुगैया का ग़ुलाम हो रहा है। वह मु-झौंसी सुकली भी ऐसी पाजी औरत है कि बस रे बस! तीन दिन से उसका पता नहीं। एक भतार का मुँह फूँक कर गोरखपुर से भाग आयी थी, अब दूसरे को बहाली देकर न जाने कहाँ अलच्छ हो गयी। ऐसी कलाबाज मेहरारू! मेरी कोंख की छोकरी ऐसी बदमास होती तो मैं—दोहाई सहीद बाबा की!—ओझा से बान फेकवा कर उसकी छाती फड़वा

डालती ।"

"ओरे दादी ! ओरे दादी !!" एक बीस वर्ष का जवान भंगी समर्थन के स्वर में बूढ़ी से कहने लगा—"उसकी इसी कुचाल पर गोरखपुर वाला उसे मारता-पीटता रहा होगा। नहीं तो सुकली-सी सुन्दर लुगाई को यों ही कोई मरद न तंग करता। बेचारे बुधुआ चाचा ही को देख। कितनी खातिर करता है। दूसरे भंगी के पाले पड़ी होती, तो 'म्युनसिपलटी' में चार रुपया आठ आना महीने नौकरी दिलवा कर, सड़क पर का कूड़ा फेंकवा-फेंकवा कर, उसकी कमर सीधी कर दी होती। नहीं तो बुद्धू चाचा उसे बबुआइन की तरह रखता है—बबुआइन की तरह। इतने सुखों पर ऐसे करतब ! धत्तेरी औरत की जात जले !"

एक दूसरा भंगी कहने लगा—"गुस्सा करता रहा, अम्माँ ! बड़ा गुस्सा करता रहा जमादार साहब ! बोलता रहा कि तीन दिनों से साला बुधुआ काम पर नहीं हाजिर है, उसके हलके के लोगों के मकान बद-बू से भर गये हैं, सड़कें कूड़ाखाना हो रही हैं। इस बार उसे बिना जेल भेजवाये या जुर्माना कराये न रहूँगा।"

इसी समय—"बुधुआ चाचा आया ! बुधुआ चाचा आया !!" कह कर दो-तीन भंगी-बच्चे चिल्ला उठे। मैदान में एकत्र सब लोग सामने आते हुए बुधुआ और उसकी गोद में चिपकी रधिया को आश्चर्य और प्रश्न भरी आँखों से देखने लगे।

"नहीं मिली सुकली चाची।" एक जवान भंगी ने अन्दाज़ लगाया।

"अरे वह किसी दूसरे खसम के यहाँ भाग गयी, अब क्या मिलेगी। मगर, देखता नहीं—बुधुआ का मुँह कैसा डरावना हो रहा है ! गुस्से में है—गुस्से में !" एक दूसरा भङ्गी बोला।

"उसकी आँखें कैसी लाल-लाल हो रही हैं !"

"नथुने फूले हैं, ओठ फड़क रहे हैं। जान पड़ता है किसी से झगड़ कर आ रहा है।"

"रधिया को देखो, कैसी सन्न है। डाट के चुप करा दिया होगा। नहीं तो रात को माँ के लिये किस तरह चिल्लाती थी ?"

"बुधुआ !" बूढ़ी भङ्गिन ने आगे बढ़कर उसे सम्बोधित किया तथा मुँह के भाव और आँखों से ही प्रश्न किया कि—क्या मामला है बेटा ?

मगर, बुधुआ ने न तो उस बूढ़ी की ओर देखा और न अपनी ओर कौतूहल-भरी आँखों से देखती हुई भङ्गियों की उस भीड़ की ओर। वह उसी गम्भीर गति से अपनी झोपड़ी की ओर बढ़ा। झोपड़ी के द्वार पर पहुँच कर उसने रधिया को गोद से उतार कर जमीन पर रख दिया। कुछ देर तक खोया-सा खड़ा रहा। फिर एकाएक नथुने फुलाकर जोर-जोर से साँसें लेने—रह-रह कर दाँतों तले ओठ दबाने और आँखें गुरेर-गुरेर कर अपने सामने देखने लगा।

"सुकनी के लिये पागल हो जायगा क्या रे ?" वही बूढ़ी एक बार फिर बुधुआ की ओर बढ़ी। मगर, बुधुआ ने पुनः उसकी बातों पर कान नहीं दिया। रधिया को वहीं—झोपड़ी के दरवाजे पर—छोड़ कर भीतर घुस गया और उजलत-भरे भाव से कुछ ढूँढ़ने लगा। अब भङ्गियों की भीड़ उसकी झोपड़ी के दरवाजे पर आ गयी। छोटे-छोटे बच्चे तो झाँक कर भीतर देखने भी लगे कि वह क्या करता है।

"छुरा दे ! छुरा दे !!" एकाएक वह झोपड़ी के बाहर की ओर गरजता हुआ, खूनी और डरावनी आँखें ताने, निकला—"मुझे एक छुरा दे ! आज जान लेकर रहूँगा—आज खून होकर रहेगा।"

"क्यों ?—क्यों रे भाई बुधुआ ?" अध-बढ़े भंगी ने दरि-

याफ्त किया—"छुरा लेकर क्या करेगा रे? सुकली का पता लगा क्या ?"

"हूँ—" गर्ज कर बुधुआ बोला—"लगा पता। अघोड़ी बाबा ने ध्यान लगाकर बताया है कि...!"

बुधुआ की आँखें एक बार फिर तन गयीं। उसका क्रोध एक बार फिर उबल-सा पड़ा।

"क्या बताया है अघोड़ी बाबा ने बेटा ?" उस बूढ़ी भंगिन ने पुनः पूछा।

"फिर किसी दूसरे भंगी के यहाँ बैठ रही ? किसके यहाँ भाई ? कबीर चौरा वाले किसी पाजी साले ने तो उसे नहीं बहका लिया ?" अध-बूढ़े भंगी ने पूछा।

"नहीं", बुधुआ बोला—"किसी भंगी ने उसे नहीं बहकाया है। अघोड़ी बाबा ने बताया है कि वह लड़का पाने की लालच में किसी पाजी के यहाँ जा फँसी है !" एकाएक बुधुआ फिर उत्तेजित हो उठा—"बस आगे मत पूछ ! अब कुछ न बताऊँगा—मुझे उस पाजी मौलवी का पता मालूम हो गया है। वह दुर्गाकुण्ड पर रहता है। अभी जाता हूँ उस पाजी के घर। आज खून होकर रहेगा। ला एक छुरा—छुरा दे ! छुरा दे !!"

तड़प कर बुधुआ एक भंगी पर टूट पड़ा। बड़े जोर से उसकी गर्दन दबा कर वह बोला—

"अबे साले छुरा दे ! चुपचाप खड़ा क्यों है ? सुनता नहीं ?"

भीड़ तितर-बितर हो गयी। बूढ़ी और बूढ़े भंगी भाग खड़े हुए। लड़के सहम गये। रधिया चिल्लाकर रोने लगी।

सुकली के लिये बुधुआ सचमुच पागल हो गया !

: १२ :

ख़ून हो गया ?

दो-तीन आदमी दुर्गा जी के मन्दिर के ठीक सामने सड़क पर खड़े बातें कर रहे थे।

"किसी हिन्दू ने एक मुसलमान का खून किया है। इसीलिये इतनी भीड़ वहाँ इकट्ठी है। पुलीस जाँच कर रही है।" एक ने कहा।

"नहीं," दूसरा अपनी बातों पर अधिक विश्वास दिखाता हुआ बोला—"तुमने ग़लत बात सुनी है। मुझसे अभी-अभी एक आदमी ने, जो उसी भीड़ में से इधर आया था, बताया है, कि किसी मुसलमान ने एक हिन्दू का ख़ून किया है।"

"क्यों ख़ून किया है?" तीसरे ने दूसरे से पूछा।

"वह कहता था कि," उत्तर मिला—"मुसलमान, उस हिन्दू की बहिन को जो विधवा है उढार लाया था। हिन्दू ऊँची जात का है--शायद क्षत्रिय है। बस, इसीलिए, मारे अपमान और क्रोध के, उसने उस दढ़ियल को ख़पा दिया।"

"अजी नहीं," पहला ज़रा चिढ़कर बोला—"तुमसे जिसने यह खबर बताई है वह भी तुम्हारे ही जैसा बेवकूफ़ 'नम्बर वन' था। मेरी खबर बिलकुल सच है। कल रात को नौ-साढ़े-नौ बजे शहर के किसी भंगी ने उसी सामने वाले मकान के मौलवी का ख़ून किया है।"

"क्यों ख़ून किया है?" तीसरे व्यक्ति ने भी पहले से जवाब तलब किया।

"यह मुझे मालूम नहीं," उत्तर मिला—"मालूम हो भी तो, मैं बताने को तैयार नहीं। कहीं पुलिसवाले कुछ सुन लें, तो लेने के देने पड़ जाँय। चलो, हम लोग भी उस मौलवी के घर की ओर

चलें। भीड़ से कुछ-न-कुछ पता ज़रूर ही लगेगा।"

"और, अगर वहाँ पुलीस ने पकड़ कर हमें सरकारी गवाह बनने के लिये कहा—तो ?" तीसरे ने मुस्करा कर पहले से पूछा।

"पहले चलो भी", उसने उत्तर दिया—"हम लोग भीड़ से दूर या पीछे खड़े होंगे। ज़रा भी लच्छन-कु-लच्छन देखते ही नौ-दो-ग्यारह हो जायँगे।"

"अच्छी बात है—चलो !"

"हाँ—चलो, ज़रा देखा जाय ख़ूनी का मुँह कैसा होता है ?"

आख़िर तीनों, भीड़ के पिछले भाग में चुपचाप जाकर खड़े हो गये। भीड़ भी मामूली नहीं थी। पचासों तो पुलीस के ही जवान थे। छोटे जमादार, छोटे दरोग़ा और शहर कोतवाल को छोड़कर। तमाशबीनों के मजमेकी तो बात ही पूछना फ़िज़ूल है। दस-बीस-पचास नहीं, हज़ारों उत्सुक स्त्री-पुरुष और बालकों ने मौलवी लियाक़त हुसैन का मकान घेर रखा था। चारों ओर विविध प्रकार की बातें, तरह-तरह की कल्पनाएँ गढ़ी जा रही थीं। कोई कुछ कहता था, कोई कुछ। भीड़ और पुलीस के बीच में, हथकड़ियों से कसे हुए, आठ मुसलमान बैठे थे और एक काला कलूटा भयानक हिन्दू। पाँच जवान-अधेड़ औरतें भी, नीची गर्दन किये, सिसक रही थीं। इनके अलावा पुलीस आफ़िसरों के सामने दो लाशें भी पड़ी थीं। एक स्त्री की, एक पुरुष की। पुलीसवाले अपने रजिस्टरों का जाल फैलाये दनादन क़लम घिस-घिस कर रहे थे। भीड़ के पीछे कुछ आदमियों के फुसफुसाने की आवाज़ ज़रूर आ रही थी—पर, पुलीस की चारोंओर भयानक सन्नाटे का साम्राज्य था।

हमारे पूर्व-परिचित तीनों दोस्त भीड़ के जिस भाग में खड़े थे वहाँ कुछ आदमी आपस में इस तरह फुसफुसा रहे थे—

"जात का भंगी है।"

"बुधुआ नाम है। बुधुआ ही तो? अभी उसने यही नाम पुलीसवालों को निडर भाव से बताया था न?"

"लेकिन भाई, है बड़ा मर्दाना भंगी। औरत को भी मार डाला और उसके यार को भी।"

"अजी यार नहीं था। मौलवी था—मौलवी। साला लड़के देने के बहाने औरतों को अपने यहाँ बुला-बुलाकर बे-इज्जत किया करता था। भगवान भी कैसी सजा देते हैं। मरने पर भी साला गाली सुन रहा है। उसकी लाश की फ़जीहत हो रही है। उसके नाम पर थूका जा......।"

"अहँ! बेवक़ूफ़ों-सी बातें करते हो। मौलविया तो बच गया। सुना नहीं? उसको तो गाड़ी पर लादकर पुलीसवाले अस्पताल ले गये हैं। वह केवल घायल होकर रह गया। फिर भी, नाक उसकी जड़ से साफ़ हो गयी है।"

"देखते नहीं, बुधुआ कैसा भयावना है! कैसा दैत्य-सा मज़-बूत दिखाई पड़ता है! उसकी आँखें कैसी लाल-लाल हैं! मैं अगर इसे रात को अँधेरे में देख लूँ, तो, डरकर मर ही जाऊँ!!"

"लेकिन भाई, है भारी हिम्मती। खूब बदला चुकाया। सभी अपनी औरतों की बेइज्जती का बदला इसी तरह चुकाने को तैयार हो जायँ, तो बदमाशों के होश ठिकाने आ जायँ।"

"अरे चुप! अरे चुप!! ऐसी बात न बोलना। कोई सुन ले, तो आफ़त आ जाय। इस जमाने में अपनी बेइज्जती का बदला खुद लेने का अधिकार आदमी के हाथ में कहाँ। अब तो बेइज्जत हो कोई—बदला ले अदालत। अगर अपने अपमान का बदला लोग खुद ही ले लिया करेंगे, तो अदालतें क्या करेंगी? पुलिसवाले क्या करेंगे? नक़ल नवीसी से लेकर जज तक क्या करेंगे?"

"मगर, मेरी समझ से, ऐसे मौक़ों पर जब किसी का ऐसा भीषण अपमान हो जैसा कि इस भंगी बधुआ का हुआ है,

स्वयं बदला लेना ही ज्यादा स्वाभाविक और मनुष्यता-पूर्ण है! कायरों की तरह अदालत और पुलिस का मुँह जोहना नीचता है। पक्षियों को देखो, पशुओं को देखो—इनसे बढ़कर प्राकृतिक और कौन होगा? पशु-पक्षी अपने अपमान का बदला स्वयं लेते हैं। किसी अदालत या पुलिस की शरण नहीं जाते। अदालत और पुलिस की सहायता लेने से अपमान का रूप और भी अधिक नग्न हो जाता है।"

"मगर, तुम्हारा पशु-पक्षियों का उदाहरण कमजोर है। उन्हें ज्ञान जो नहीं है। वह हम मनुष्यों-जैसे सभ्य जो नहीं हैं। 'आँख के लिए आँख और दाँत के लिए दाँत' जंगलियों का सिद्धान्त है।"

"मैं ऐसे असभ्य और अज्ञान पशुओं को धन्य समझता हूँ। जंगलियों को आजकल के कायर सभ्यों के मुक़ाबले में आदर्श मानता हूँ। नाश हो इस कृत्रिम सभ्यता का!"

"शोर क्यों होता है?" भीड़ के बीच से दारोग़ा ने एक जमादार से पूछा—

"चुप रहो! भागो!! तुम सब यहाँ भीड़ क्यों लगाये हो जी···?"—एक साथ ही अनेक लाल पगड़ीवाले चिल्ला उठे।

हमारे तीनों परिचित जहाँ खड़े होकर उपर्युक्त बातें सुन रहे थे वहाँ से दुम दबाकर सट्टसे भागे!

: १३ :

बुधुआ का बयान

"तेरा नाम?"

"बधुआ,"

"बाप का नाम?"

"सुधुआ,"

"जात ?"

"भंगी, हजूर !"

"उम्र कितनी है ?"

"बयालिस बरस से ऊपर।"

"कहाँ रहता है ?"

"बेनिया बाग के पीछे वाले भंगी-टोले में।"

"इनका," लाशों की ओर इशारा कर दारोग़ा ने दरियाफ़्त किया "खून तूने किया है ?"

"जी हाँ सरकार, मैंने ही इन पाजियों का खून किया है, और, ऐसी हालत में किया जिसमें कोई भी आदमी यही करता ! हुजूर भी यही करते।"

"चुप !" पुलिस जमादार ने बुधुआ को डाटा—"फ़िजूल बात न कर ! दारोग़ा साहब जो पूछें केवल उसीका जवाब दे।"

"इनका खून तूने किया है ?"

"हाँ सरकार।"

"तूने ही लियाक़त हुसैन की नाक भी काटी है ? उसे घायल भी किया है ?"

"हाँ हाँ," दाँत किटकिटा कर और भयकंर मुँह बनाकर बुधुआ ने कहा—"मुझे अफ़सोस है कि इन पाजियों ने मुझे पकड़ लिया—उस कुत्ते के बच्चे का खून करने नहीं दिया।"

"फ़िजूल बात नहीं।" जमादार ने पुनः रोका।

"सच-सच बता, तूने ऐसा क्यों किया ? देख झूठ नहीं बोलना ?"

"झूठ क्यों बोलूँगा। यह जो औरत मरी पड़ी है—मेरी लुगाई सुकली है। तीन दिनोंसे यह मेरे घर से ग़ायब थी। बाद को, पता लगाने पर, मालूम हुआ कि यह इस मौलवी के घर पर थी। वहाँ

जाने पर मैंने अपनी औरत को इस (मर्द की लाश को दिखाकर) बदमास के साथ 'खराब काम' करते देखा। बस, मैंने दोनों को जहाँ-का-तहाँ खपा डाला।"

"और—इन्हें मार डालने के बाद लियाक़तहुसैन को भी मारने की कोशिश की? उसे बुरी तरह घायल किया? उसकी नाक तराश ली?"

"जी हाँ हुजूर......" निडर भाव से बुधुआ ने स्वीकार किया।

"अच्छा, तुझे कैसे मालूम हुआ कि तेरी बीबी सुकली लियाक़त के यहाँ है?"

बुधुआ इस प्रश्न का उत्तर फ़ौरन न दे सका। कुछ हिचका। वह नहीं चाहता था कि अघोड़ी का नाम भी पुलिस के गन्दे कानों में पड़े।

"किससे सुना? बताता क्यों नहीं रे?"

"सुना सरकार, किसी से भी सही। मैं इस बीच में किसी दूसरे को फँसाना नहीं चाहता। इस सवाल का जवाब नहीं देना चाहता।"

"रात के कितने बजे तू लियाक़त के घर पर आया था?"

"मालूम नहीं सरकार, मुझे घड़ी का अन्दाज़ नहीं लगता।"

"यह छुरा तेरा है? तू इसे अपने साथ लाया था?"

"हाँ—"

"किधर से घर में घुसा था?"

"घुसा नहीं—यह जो बड़ी चहारदीवारी है इसी पर चढ़ गया।"

"फिर?"

"धीरे से झाँक कर देखा—एक छोटा-सा आँगन—जिसमें एक नीम का पेड़ था जिसके नीचे कोई कब्र पर दो-तीन छोटे-छोटे

तेल के दिये जल रहे थे......।"

"धीरे-धीरे कह...देखता नहीं लिख रहा हूँ। हाँ—कब्र पर दो-तीन दीये जल रहे थे।"

"कब्र के सामने एक दालान थी, उसीमें मैंने देखा आठ-नौ औरतों के बीच में, वह पाजी मौलवी खड़ा होकर कुछ मन्तर-सा पढ़ रहा था।"

"मन्त्र-सा पढ़ रहा था—अच्छा।"

"फिर मैंने देखा वह औरतों के साथ कब्र के पास आया। वहाँ भी थोड़ी देर तक खड़े-खड़े कुछ भुन-भुनाता रहा। इसके बाद उसने सभी औरतों से कहा कि—'कब्र की चारों-ओर आसमान की तरफ मुँह कर, आँखें बन्द कर सो जाओ। सोने के थोड़ी देर बाद तुम्हारे ऊपर पाक-रूह आयेगी। खबरदार! आँखें न खोलना। नहीं तो, तुम्हारी आशा पूरी न होगी। साथ ही जान का भी खतरा है। कोई तुम्हें कितना भी हिलाये-डुलाये—दमसाधे पड़ी रहना—हाँ। खुदा ने चाहा तो तुम सब को लड़का ही होगा।"

पुलीस वाले हैरत से बुधुआ का मुँह ताकने लगे। वह आगे बढ़ा—

"मौलवी की बातें सुन सब-की-सब औरतें कब्र की चारों ओर आँखें बन्द कर पड़ गयीं। उन्हीं में मेरी लुगाई सुकली भी थी। इनके पड़ने के थोड़ी ही देर बाद इन सब बदमाशों (गिरफ्तार दूसरे मुसलमानों को दिखा कर) के साथ वह मौलवी फिर दालान में चुपके से आया और इशारे से इन्हें उन औरतों की ओर भेजा। और फिर ये उन औरतों को—पाक-रूह बन कर... करने लगे!"

पुलीस के सामने बैठी हुई औरतें बुधुआ का बयान सुनकर मारे लज्जा के गड़-सी गयीं। उनमें से दो-एक तो जोर से

चिल्ला तक उठीं।

"बस," बुधुआ बोला—"इसी समय मैं चहारदीवारी से नीचे कूदा और अपनी औरत और उसके साथ 'ख़राब काम' करने वाले को चुटकियों में खपा दिया। मुझे देखते ही और यह देखते ही कि एक औरत और एक मर्द का खून हुआ है, बाक़ियों में से कुछ मर्द मुझ पर झपटे। औरतें भी जैसे होश में आ गयीं। वे भी चिल्लाने लगीं। मगर, मैंने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। मैं उस पापी मौलवी की तलाश में—अग़ल-बग़ल के आदमियों को धकियाता—झपटा। मगर, अब तक चारोंओर हो-हल्ला मच गया था। बाहर के भी अनेक आदमी घर में घुस आये थे। मैं मौलविया के पास पहुँच कर भी उसे केवल घायल ही कर पाया—खपा न सका, पकड़ लिया गया। इसी बीच में चौ-मुहानी और चौकी से कई सिपाही आ गये। मेरे ही कहने से उन्होंने इन कई बदमाशों को गिरफ़्तार किया—और कई तो भाग गये। बस, इससे ज्यादा मुझे कुछ कहना नहीं।"

बयान समाप्त होने पर पुलीस वालों ने और भीड़ ने देखा बुधुआ की बड़ी-बड़ी आँखें अंगारे की तरह जल रही थीं—उसके ओठ अभी भी ग़ुस्से से काँप रहे थे!

: १४ :

भयानक आश्चर्य

रविवार की सन्ध्या थी। बनारस के सिगरा मुहल्ले के उस लम्बे-चौड़े अहाते में जो ईसाइयों का प्रार्थना-स्थल या गिरजाघर है, वहाँ उस दिन और रविवारों की अपेक्षा कुछ अधिक भीड़ थी। इसका कारण शायद यह था कि उसी दिन प्रातःकाल के एक स्थानीय दैनिक-पत्र में यह समाचार प्रकाशित हुआ था कि आज सायंकाल सिगरा-चर्च के वर्त्तमान पुरोहित, फ़ादर जानसन के

मित्र और इङ्गलैण्ड के एक प्रसिद्ध साधु रेवरेण्ड राइट का, रवि-वार की प्रार्थना के बाद, धार्मिक-कीर्तन और भाषण होगा।

इसीलिये उस दिन महात्मा ईसा के सुफ़ेद और काले अनु-याइयों—स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ों—का एक अच्छा दल सिगरा के गिरजा घर में प्रार्थना करने और रेवरेण्ड या पादरी राइट का भाषण सुनने आया था। इसीलिये उस दिन दूसरे रविवारों की अपेक्षा प्रार्थना में कुछ समय भी अधिक लगा। प्रार्थना समाप्त होने के बाद जब ईश्वर-भक्त अपने-अपने घर की ओर चले तब लोगों ने देखा, कि चर्च के बाहर निकल कर पादरी जानसन, उनके मित्र पादरी राइट और एक कोई और अंग्रेज़ खूब घुल-घुल कर आपस में बातें करने लगे।

एक अंग्रेज़ की मेम ने उससे दरियाफ़्त किया—"जार्ज! काला सर्ज पहने वह लम्बा और अधेड़ पुरुष कौन है जो दोनों पादरियों से बातें कर रहा है?"

"ओहो, डियर!" उस अंग्रेज़ ने उत्तर दिया—"तुम उस भले आदमी को नहीं जानतीं! वही तो हमारे नये सेशन जज हैं।"

"अच्छा! अच्छा!!" आश्चर्य प्रकट करती हुई मेम साहिब बोलीं—"यही मिस्टर यङ्ग हैं। ओहो! यह तो अपने नाम ही की तरह जवान भी दिखाई देते हैं। इसी उमर में यह सेशन जज हो गये! ताज्जुब की बात है!"

"नहीं प्यारी," अंग्रेज़ ने अपनी बीबी की बाँह अपनी बाँह में लेते हुए और ज़रा तेज़ी से आगे बढ़ते हुए कहा—"मिस्टर यङ्ग वर्षों में कम हो सकते हैं, पर, ज्ञान में अनेक बूढ़ों से बड़े हैं। इन्होंने जैसी उन्नति की है उसे देख कर इनके साथी स्तब्ध-रह गये हैं। इनके फ़ैसलों को देखकर, हाई-कोर्ट के अच्छे-अच्छे जज भी दङ्ग रह जाते हैं। इनके बाल भले ही काले हों; पर, बुद्धि इनकी बिलकुल सुफ़ेद है।"

"तुमने इनकी स्त्री मिसेज़ यङ्ग को देखा है प्यारे ?"

"हाँ," साहब ने जवाब दिया—"शायद एक ही बार शहर के किसी रायबहादुर रईस की दावत में मिसेज़ यङ्ग को देखा था। वह सुन्दर, आकर्षक, पचीस वर्ष से कम उम्र की युवती हैं, वही हैं न ?"

"हाँ," मेम ने उत्तर दिया—"मैंने उसे कई बार—सैकड़ों बार—होटेल डि पेरी और क्लबों में देखा है। वह कुछ अजीब औरत है। उसके विचार विचित्र होते हैं।"

"कैसे विचित्र विचार, डियर ?"

"बिलकुल वलवाई। कहती है कि स्त्री-जाति पर शुरू ही से सबल होने के कारण, पुरुष ज़ुल्म करते आ रहे हैं। पुरुषों का गढ़ा हुआ समाज भी उन्हीं के पक्ष में अधिक है। अब स्त्रियों को एक बार इस स्वार्थी पुरुष-जाति के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करनी होगी ! हा हा हा हा !" मेम साहिबा ज़रा दम लेकर खिसखिसा पड़ीं—"प्यारे, तुमने पुरुषों के विरुद्ध उसका लेक्चर कभी सुना नहीं, खूब बोलती है, अद्भुत तर्क प्रणाली है उसकी। बनारस की अंग्रेज़ी दुनिया की नौजवान छोकरियाँ तो उसकी चेलियाँ होती जा रही हैं।"

"स्त्रियों को," साहब ने कहा—"तुम मुझे माफ़ करना प्यारी—बहुत अधिक स्वतन्त्रता दिये जाने का यही फल है। हमारे समाज ने उन्हें स्वतन्त्रता दी इसलिए कि हमारा जीवन अधिक शान्तिमय, अधिक सुखमय हो; मगर, नतीजा बिलकुल उलटा हुआ। मैं तो कभी-कभी हिन्दुस्तानियों के इस सिद्धान्त को लालच की नज़र से देखता हूँ कि—औरतों को सब सुख दो—पर, आज़ादी कभी न दो !"

"ओ हो हो ! जार्ज !" मेम ने कहा—"ठीक तुम्हारी तरह एक किसी भले आदमी ने उस दिन होटेल डि पेरी के एक 'बाल'

में, उससे, स्त्रियों के विरुद्ध तर्क किया था। मगर उफ़! ऐसी तेज़ है मिसेज़ यंग कि बस-रे-बस। उसने तड़प कर जवाब दिया कि—आखिर इन पुरुषों को किस पापी परमात्मा ने हम स्त्रियों को परतन्त्र रखने का मन्त्र दिया है? प्रकृति की जिन विभूतियों से इन पुरुषों का निर्माण हुआ है, आखिर, उन्हीं से हमारा भी तो हुआ है? अगर कुछ विशेष गुण पुरुषों में हैं—तो कुछ हम में भी हैं। रही शारीरिक-शक्ति और धनोपार्जिनी-शक्ति—जिनको सदियों से दबा-दबा कर, पीस-पीस कर, पुरुषों ने अपने स्वार्थ के लिए हम से छीन लिया है। वह हमें जान-बूझ कर कोमल बनी रहने का उपदेश देते हैं, इसलिए कि, उनकी झक और उनका आदर्श पूरा होता रहे। मैं पूछती हूँ, स्त्रियाँ पुरुषों की झकों पर अपनी सुकृति, अपने सुखों, अपनी स्वतन्त्रताओं का क्यों बलिदान करें?—ही ही ही ही!" मेम साहिबा एक वार फिर हँसी—"डियर, उसके उस दिन के भाषण का एक अंश तो मुझे अक्षर-अक्षर याद है। उसने उस भले आदमी को ललकार कर कहा—सावधान, महोदय! तुम और तुम्हारी जाति वालों को चाहिए कि अब स्त्रियों को बुत्ता-बहाली और प्रेम के झूठे सब्ज़-बाग़ दिखाना छोड़ दें। अब वह दिन दूर नहीं है जब स्त्रियाँ पुरुषों से पग-पग पर समान अधिकार माँगेंगी। यदि पुरुष विवाहित और अविवाहित दोनों ही अवस्थाओं में अपने को अपनी झकों का दास समझेंगे, तो स्त्रियाँ भी पीछे न रहेंगी। यदि पुरुष हम औरतों को केवल एक वसन्त तक सूँघने और गले डाल रखने लायक जुही की माला समझेंगे, और बाद में, अपने रसोई घर के कूड़ाखाने में फेंक देने को तैयार रहेंगे, तो, हम भी उन्हें ठगने, बहकाने और अपने मतलब का कठपुतला बनाने से बाज़ न आयेंगी। माथे पर शिकन क्यों ला रहे हो? कहना चाहते हो कि जिस दिन स्त्रियाँ ऐसा करने लगेंगी उस दिन उनकी सारी कोम-

लता, सारा सौन्दर्य नष्ट हो जायगा? मैं इसे जानती हूँ; पर क्या हम ऐसी विशेषताओं और ऐसे महत्वों को लेकर चाटेंगी जिनके कारण हमारा जीवन पशुओं और क़ैदियों की तरह हो जाय? छि: ! ना मुमकिन है—दोनों को दोनों का बराबर खयाल रखना होगा—नहीं तो, दोनों अपने-अपने स्थान से गिरेंगे और जरूर गिरेंगे। एक बार क्रान्ति होगी, प्रलय होगा, तभी अपने को ज़बर्दस्त समझनेवालों की आँखें खुलेंगी !"

"एक बार क्रान्ति होगी ! एक बार प्रलय होगा !! तभी अपने को ज़बरदस्त समझने वालों की आँखें खुलेंगी। बहुत ठीक, श्रीमतीजी, मैं आपकी बातों का समर्थन करता हूँ।" किसी ने कर्कश स्वर से मेम साहिबा की बग़ल से शुद्ध अंग्रेज़ी में कहा।

मेम और साहब उक्त कर्कश कण्ठ-ध्वनि को सुनकर स्तब्ध-से, जहाँ के तहाँ खड़े हो गये। उस समय सन्ध्या का रंग गाढ़ा हो चला था। अन्धकार ने सिगरा से बनारस छावनी की ओर जाने वाली सड़क के मुँह पर भरपूर कालिमा पोत रखी थी। म्युनिसिपैलटी के लैम्प अभी जले नहीं थे।

दोनों ने आवाज की ओर देखा। कोई काली-सी छाया अपनी छाती पर हाथ रखे खड़ी थी।

"कौन है ?" कड़क कर साहब ने पूछा।

"केवल एक आदमी...।" कह कर वह छाया उन दोनों के सामने आ खड़ी हुई। दोनों ने देखा, कमर में कपड़े का एक टुकड़ा लपेटे, एक हाथ में चिमटा और खप्पर लिए और दूसरे हाथ से कपड़े में लपेटी हुई किसी चीज़ को छाती से लगाये, भयानक रूपवाला कोई साधु उनके सामने खड़ा था। एक बार, हजार वीर जाति के होने पर भी, साहब और मेम साहिबा सिर-से-पैर तक काँप उठे ! मेम साहिबा तो अपने पति से प्रायः लिपट कर खड़ी हो गयीं।

"डरो मत भाई!" उसी कर्कश स्वर और उसी शुद्ध अंग्रेज़ी में उस भयानक साधु ने पुनः कहा—"मैं कोई खूँखार पशु नहीं, मनुष्य हूँ।"

"तुम्हें क्या चाहिए," लड़खड़ाते स्वर से अंग्रेज़ ने उस साधु से पूछा।

"मैं पादरी जानसन का मकान ढूँढ़ रहा हूँ। मुझ से किसी ने कहा था कि वह सिगरा पर किसी चर्च के पास रहते हैं। मैंने बहुत ढूँढ़ा, पर, उनका पता नहीं चला। संयोग से आप दोनों को रास्ते में पाकर मुझे विश्वास हो गया कि अब पता चल जायगा। इसी से मैं, करीब तीन मिनट से, आपके साथ-साथ आ रहा हूँ। इन श्रीमती जी की बातें ऐसी अच्छी थीं कि मैं उनके सुनने का लोभ संवरण न कर सका—खैर! आप परीशान हो रहे हैं। पिस्तौल है या नहीं इसलिए जेब टटोल रहे हैं। गिरजाघर से आते हैं न? हाँ। उफ़! क्या आप लोग प्रार्थना मन्दिर में भी नाश के उस भयानक यन्त्र को लेकर जाते हैं! ईश्वर की दया पर इतना अविश्वास! अच्छा, अच्छा...घबराइये नहीं। ज़रा बताइये तो पादरी जानसन का मकान कितनी दूर पर है!"

इतनी स्पष्ट अंग्रेज़ी! ऐसा भयानक रूप! साहब और मेम तो इस अद्‌भुत साधु को देखकर दंग रह गये। एक तरह से उनकी सिट्टी गुम हो गयी।

"बहुत नजदीक है," साहब ने उत्तर दिया—"सीधे जाइये। ठीक चार फ़र्लाङ्ग जाने पर चर्च मिलेगा। बस वहीं—उसी कंपाउण्ड में—फ़ादर जानसन मिलेंगे।"

"धन्यवाद! अनेक धन्यवाद!" साधु ने कहा—"आप लोगों की बातें ऐसी अच्छी थीं, कि अगर मैं इस वक़्त एक जरूरी काम के लिए पादरी जानसन के पास न जाता होता, तो आप लोगों ही के साथ जाता। सभ्यता और सभ्य व्यवहारों का—

जिन्हें इस बीसवीं सदी के प्रेमी बड़ा महत्व देते हैं--बिना विचार किये ही। पर, जो हो, मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ। आप मेरी धृष्टता क्षमा करेंगे—धन्यवाद ! धन्यवाद !!"

मेम साहिबा और साहब उस घने अन्धकार में आँखें फाड़-फाड़ कर देखते ही रह गये ! वह साधुद्रुत-गति से, देखते-देखते अलक्षित हो गया।

"ओ माई गाड !" एक लम्बी साँस खींच कर धड़कते दिलसे मेम ने कहा—"फ़क़ीर क्या था पूरा दैत्य था ! मैं तो, प्यारे ! मूर्छित होते-होते बची !"

स्त्री को अपनी बग़ल में कसकर दबाते हुए और आगे बढ़ते हुए साहब के कहा—

"सचमुच ! सचमुच !! वह साधु आश्चर्यजनक था ! वह अंग्रेज़ी कैसी साफ़ बोलता था ! वह निडर कैसा मालूम पड़ता था ! इसे कहते हैं बनारस की विशेषता। इतिहास का यह सबसे प्राचीन नगर आध्यात्मिक आश्चर्यों से भरा है।"

"चलो जल्दी चलें। बिना कैण्टूनमेंट गये कोई सवारी भी न मिलेगी और यह सड़क बड़ी भयानक है।" मेम साहिबा ने कहा।

: १५ :

पादरी जानसन

जिस कमरे में पादरी जानसन, रेवरेण्ड राइट और बनारस के सेशन जज मिस्टर यंग बैठे—चाय पीते-पीते—बातें कर रहे थे, वह सजावट की दृष्टि से कोई विशेष उल्लेखनीय नहीं था। छोटे से उस चौकोर कमरे की चारोंओर की दीवारों पर अनेक धार्मिक

चित्र टँगे थे। उन चित्रों में किसी में माता मरियम तेजस्वी बालक ईसा के साथ दिखाई गयी थीं, किसी में ईसा, साधारण मल्लाहों—पीटर और एण्ड्रू—को अपनी कश्ती और जाल छोड़ अपनी ओर बुलाते और यह कहते दिखाये गये थे, कि—आओ, मैं तुम्हें मनुष्य-रूपी मछलियों का फँसाना सिखाऊँगा। कमरे के प्रवेश-द्वार के ठीक सामने जो बड़ी तस्वीर टँगी थी उसमें महात्मा ईसा चोरों के बीच में, काँटों के ताज से आभूषित कर, क्रूस पर चढ़ाये दिखाये गये थे। इन तस्वीरों के अलावा भारत और विदेशों के अनेक आर्क बिशपों और प्रसिद्ध बिशपों के चित्र भी थे। पूर्व की दीवार के सहारे दो मँझोले आकार की शीशेदार अलमारियाँ खड़ी थीं जिनमें बहुत-सी सजिल्द पुस्तकें क़ायदे से सजाकर रखी थीं।

कमरे में बीचोंबीच जो मेज़ थी उसकी तीन ओर तीन कुर्सियों पर उक्त व्यक्ति बैठे चाय पी रहे थे।

"तब," रेवरेण्ड राइट ने मिस्टर यंग से पूछा—"आपकी श्रीमती आपकी दूसरी पत्नी हैं? आपकी इनकी शादी कब हुई?"

"तीन वर्ष हुए" मिस्टर यंग ने कहा—"लण्डन में। वहाँ जब मैंने पहले-पहल अपनी पत्नी को कुमारी अवस्था में, मिस अना गुडविल के रूप में देखा और परिचय प्राप्त किया था—उस वक़्त वह ऐसी क्रान्तिकारिणी या बे-कही नहीं थीं; मगर, इधर उन्हें न जाने क्या हो गया है। आजकल तो वह स्वतन्त्रता की दुर्दशा को स्वतन्त्रता कहकर पुकारती और बरतती हैं। मुझे उनसे और कोई भी शिकायत नहीं है फ़ादर, मगर, मेरे उनके वर्त्तमान विचार इतने भिन्न हैं कि हमारा दाम्पत्य-जीवन विकम्पित-सा हो रहा है।"

"वह गिरजाघर में प्रार्थना करने जाती हैं?" पादरी जानसन ने प्रश्न किया।

"ओ नो! कदापि नहीं। उनका तो कहना है कि इन चर्चों और पादरियों ने स्त्रियों को और भी परतन्त्र कर रखा है। धर्माध्यक्षों की अधिकतर व्यवस्थाएँ बलियों अथवा पुरुषों के पक्ष में होती हैं। स्त्री-जाति की जागृत के लिये इन धार्मिक संस्थाओं और पर्दों का नाश होना भी बहुत ही आवश्यक है।"

"ओ मेरे स्वर्गस्थ पिता!" पादरी जानसन ने गंभीर मुँह बनाकर कहा—"रक्षा कर उस बच्ची की! उसके हृदय पर—मुझे क्षमा करना मिस्टर यंग—काले संस्कार उदय हो रहे हैं। वह बहुत कम उम्र की है न? हाँ। तब आपको अपनी स्त्री के विचारों पर खास नज़र रखनी होगी मिस्टर यंग। विश्वास है, आपकी पत्नी के विषय में ऐसी सलाह देकर मैं आपका अपमान नहीं कर रहा हूँ। वह तो बनारस के युरोपियन समाज की 'कठिन-समस्या' हो रही हैं। सुना है उन्होंने कोई 'स्त्री स्वातन्त्र्य-समर्थिनी समिति' क़ायम की है, जिसकी वही प्रवर्त्तिका हैं। यह भी सुना है कि गाही-की-गाही स्त्रियाँ और युवती कुमारियाँ उस समिति की सदस्या बन रही हैं। लेकिन मेरी समझ में भारतवर्ष के एक प्रतिष्ठित नगर के दौरा जज के नाम के लिये ये सब बातें सन्तोषप्रद नहीं हैं। आपकी क्या राय है राइट महोदय! मैं अनुचित तो नहीं कहता? हाँय! कोई दरवाज़ा खटखटा रहा है क्या?"

"नहीं—नहीं, फ़ादर!" यंग ने कहा—"हवा है। दरवाजा कौन खटखटायेगा। आपका छोकरा तो बाहर है न?"

"हाँ है तो—हाँ; आपका क्या मत है राइट महोदय!"

रेवरेण्ड राइट अपनी घनी, सुफ़ेद और सुन्दर दाढ़ी के भीतर जरा मुस्कराये—"मेरा मत न पूछिये," उन्होंने कहा—"यद्यपि मैं मिसेज़ यंग की समिति का सदस्य नहीं; और, न मैंने उन्हें कभी देखा ही है, पर, जानने वाले जानते हैं, अक्सर मेरे विचार तो मिसेज़ यंग से भी अधिक उग्र और क्रान्तिकारी होते हैं। मैं

संक्षेप में इतना तो कहूँगा कि वातावरण गम्भीर दिखाई पड़ रहा है—आँधी भी आ सकती है, बूँदें भी पड़ सकती हैं और पत्थर भी पड़ सकते हैं। हमारा काम घबराना नहीं, ठहरना और 'उसकी' इच्छा पूरी होते देखना है।"

"लेकिन, फ़ादर,"—यंग ने कहा—"आप मुझे क्षमा करेंगे—आप तो बाल ब्रह्मचारी साधु हैं। ब्रह्मचारियों की सहानुभूति इन स्त्रियों के प्रति अधिक होती है। नहीं, हँसिये नहीं। मैं ठीक कहता हूँ—भले आपके विषय में यह सिद्धान्त ठीक न हो। मैं अब अपनी स्त्री के विरुद्ध शिकायतें—एक भले आदमी की हैसियत से—नहीं सुन सकता। मैंने निश्चय कर लिया है, बल्कि अर्ज़ी भी दे दी है, मैं शीघ्र ही स्वदेश जाऊँगा—और—और इस झगड़े का फ़ैसला ही करके लौटूँगा!"

"याने ?" पादरी जानसन ने कुछ-कुछ-समझ-गये-सा मुँह बना कर पूछा।

"मैं अपनी वर्त्तमान स्त्री को तलाक़ दे दूँगा।"

"पर, मैं तुमसे कहता हूँ," कमरे का दरवाज़ा खुलता-सा दिखाई पड़ा और एक कर्कश आवाज सुनायी पड़ी—"व्यभिचार को छोड़ और किसी भी कारण जो कोई भी अपनी स्त्री का त्याग करता है, वह उसे व्यभिचारिणी बनाता है। और फिर, जो कोई भी उससे विवाह करता है—व्यभिचार करता।"

यह तो धर्म-पुस्तक (बाइबिल) का उद्धरण है!" दरवाजे की ओर आश्चर्य से आँखें फाड़ कर देखते हुए रेवरेण्ड राइट ने कहा—"ओहो तुम! रूखे और भयानक रूपवाले भारतीय साधु! अच्छा!! तुम हमारी भाषा इतनी सरलता से बोल लेते हो! तुमने हमारी धर्म-पुस्तक का इतना अच्छा अध्ययन किया है! खूब कहा तुमने—ठीक कहा तुमने!" कुर्सी से उठकर राइट महोदय दरवाज़े की ओर बढ़े!

उधर मिस्टर यंग ने दाँतोंतले ओठ दबाकर घूसा तान लिया। किसने चोरी से उनकी गुप्त बातें सुनी हैं। मगर दरवाजे के भीतर निर्भय-भाव से घुसने वाले का मुँह देखकर कमरे के सभी प्राणी एक बार अवाक्-से रह गये! थोड़ी देर तक किसी को कुछ सूझा-ही नहीं कि क्या किया या कहा जाय! सब लोग आँखें फाड़-फाड़कर उस भयानक को देखने लगे।

वह व्यक्ति प्रायः नंगा था, भयानक काला था, उसके दाहिने हाथ में लोहे का एक लम्बा चिमटा था और थी मनुष्य की खोपड़ी, बाएँ हाथ से उसने एक छोटी-सी किसी चीज को छाती से चिपका रखा था, उसकी डरावनी आँखें अंगारे की तरह लाल-लाल थीं। उसकी लम्बाई साढ़े ६ फीट से भी अधिक थी। सिर और दाढ़ी के बाल काले और रूखे और घने थे। वह एक साथ ही, भयानकता, तेजस्विता और दया की मूर्ति-सा दिखाई पड़ता था!

: १६ :

किसका बच्चा है?

"बॉय! बॉय!!" उत्तेजित रूप से अपनी कुर्सी से उठते हुए पादरी जानसन ने आवाज़ दी। मगर, वह केवल उठ और पुकार कर ही रह गये। उस चिमटाधारी भयानक साधु के सामने जाने की उनकी हिम्मत न हुई!

"घबराओ मत!" उसी कर्कश-स्वर परन्तु स्पष्ट अंग्रेजी में साधु ने कहा—"यह मत समझो कि मैं कानून-भंग करने आया हूँ, मैं तो उसे पूरा करने आया हूँ। तुम्हारा छोकरा तो मेरी शक़ल ही देखकर भाग गया। बेचारा डर गया! आदमी ऐसा डरपोक होता है कि अपने ही जैसे दूसरे आदमी को देखकर भी डर जाता

है। आदमी ऐसा भयानक होता है कि अपने ही जैसे दूसरे आदमी के हृदय में भी कँपकँपी पैदा कर देता है। यह आदमी भी एक अजीब अहेली है।"

"बाहर भागो!" पादरी जानसन ने, अपने स्थान ही से हिन्दी में, साधु को इस तरह भगाने की कोशिश की जिस तरह कोई किसी पगले को भगाता है।

"ठहरो!" साधू ने आँखें चमका कर पादरी को डाटा—"सच्चे ईसाई की तरह व्यवहार करो। धर्माध्यक्ष होकर जब तुम्हीं अपने धर्म और व्यवस्थाओं के विरुद्ध आचरण करोगे तब तुम्हारे अनुगामियों की क्या अवस्था होगी? यह तुम्हारे ही महापुरुषों की बात है न कि—'मांगो, तुम्हें, दिया जायगा; खोजो, तुम पाओगे; खटखटाओ, तुम्हारे लिए द्वार खोला जायगा।' मैंने तो अभी-अभी एक ईसाई साधू का द्वार खटखटाया था; ताज्जुब, वह क्यों नहीं खोला गया?"

"ओ हो हो!" रेवरेण्ड राइट ने सदय मुस्कराहट के साथ कहा—"तब वह हवा नहीं थी, मिस्टर यंग, जैसा कि आपने अन्दाज़ लगाया था। वह इनकी खटखटाहट थी।"

"पर जाने दीजिये उस बात को राइट महोदय," पादरी जानसन ने कहा—"मैं नहीं पसन्द करता इन पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी साधुओं को। इस देश में, प्रभु के सन्देश के प्रचार के सबसे बड़े बाधक यही हैं। मैं तो इन्हें शत्रु समझता हूँ।"

"पर मैं तुम से कहता हूँ," अभी दरवाज़े ही पर ज्यों-का-त्यों खड़ा वह भयानक साधु बोला—"पादरी, तुम्हारी बाइबिल में लिखा है—अपने शत्रुओं से प्रेम करो और अपने सतानेवालों के लिए परमपिता से प्रार्थना करो। ऐसा करने से तुम अपने स्वर्ग-स्थित पिता की सन्तान कहलाओगे। क्योंकि, उसका सूर्य भले और बुरे दोनों पर उदित होता है। उसके बादल दोनों को पानी देते हैं।

फिर, यह तुम्हारा कैसा आचरण है ईसाई साधु ? तुम्हारा धर्म तो बड़ा उदार कहा जाता है ?"

"मैं तुम से बहस नहीं करना चाहता," मानो अपने सुफ़ैद रंग पर इतराते हुए पादरी जानसन ने कहा—"तुम भागो यहाँ से। तुम बड़े भयानक दिखाई देते हो।"

"हा हा हा हा !" इस बार साधु खिलखिला कर भयानक रूप से हँसा —"मैं भयानक दिखाई देता हूँ ! पर, तुम्हारे इस आचरण का शैतान के खज़ाने में जो दण्ड होगा, यह मुझ से भी कहीं भयानक होगा। यह निश्चय है। याद रखो ! अब भी कुल्हाड़ी पेड़ों की जड़ों पर जमी है। अब भी जो पेड़ अच्छा फल न देंगे वह काटे और आग में डाले जायँगे।"

"ठीक कहते हो भाई ! ठीक कहते हो भाई !" भयानक साधु के बिलकुल सन्निकट जाते हुए रेवरेण्ड राइट ने कहा—"बेशक, हमारे मित्र ने तुम्हारे साथ न्याय नहीं किया। यद्यपि मैं उनकी छत के नीचे हूँ, यद्यपि मैं उनका अतिथि हूँ, पर, सच से दूर क्यों रहूँ ?" पादरी जानसन की ओर न्याय-प्रार्थिनी आँखों से देखकर राइट ने कहा—"क्या आप इस भले आदमी के साथ न्याय न करेंगे जानसन महोदय ? नहीं, आप ऐसे निर्दय या अन्यायी नहीं हो सकते।"

मानो राइट की बातों से जानसन के होश ठिकाने आये। होश ठिकाने क्या आये, बल्कि, उसने अपने पद के महत्व का ख्याल किया। फिर भी, अभी गोरों के मन में कालों के विरुद्ध जो अकड़ होती है वह बाक़ी थी—

"बहुत अच्छा, मैं इसकी बातें सुन लूँगा। पूछिये यह क्या चाहता है ?"

"मैं अपनी ग़रज कहता हूँ," वह साधु बोला—"मगर, अब भी तुम्हारा हृदय मेरे प्रति वैसा नहीं हुआ जैसा होना चाहिए।

अब भी तुम शासक-जाति के गुरु की तरह अँकड़े हुए हो—अपने आपे में आओ पादरी !—कहाँ भूले हो ?"

अब रेवरेण्ड राइट ने साधु की बायीं बाह पकड़कर उसे अपनी ओर खींचा—

"अब जाने दो भाई, अपनी बात कहो। इधर आकर बैठो !—आयँ—यह तो बच्चा है ! तुम्हारे हाथ में बच्चा ? इसे तुमने कहाँ पाया साधु ?"

बच्चे का नाम सुनकर पादरी जानसन और मिस्टर यंग भी अपने स्थान से विचलित हुए। अब सब-के-सब उस भयानक साधु के सामने आश्चर्य-विस्मित-से आ खड़े हुए।

"किस का बच्चा है ?" पादरी जानसन ने साधू से उत्तर माँगा ?

"एक ग़रीब का, एक अज्ञान का, संसार के दुष्टों और पापियों द्वारा सताये हुए एक अभागे का। इस बच्चे का बड़ा कारुणिक इतिहास है पादरी महोदय। यह दो बरस की लड़की है। इसका नाम रधिया है। इसका बाप बुधुआ भंगी है जो इस समय कई खनों के अपराध में जेल की हवालात में है। यहाँ की सेशन अदालत में उसपर हत्या का मुक़दमा चल रहा है।"

"बुधुआ की कहानी," जानसन ने कहा—"मैंने सुनी है। यहाँ की मुक्ति फौज के प्रधान अधिकारी की हैसियत से मैं उसदिन जब बेनियाबाग़ के पीछे वाले भंगी-टोले में पतितों को स्वर्ग का सन्देश सुनाने और उन्हें मुक्ति का मार्ग बताने गया था, तब भंगियों ने बुधुआ की सारी कथा मुझ से बतायी थी। तो तुम्हीं वह अघोड़ी साधू हो, जो उसकी लड़की को लेकर चला गया था ? तुम्हारा ही ज़िक्र भंगियों ने किया था ?"

"हाँ मैं ही वह व्यक्ति हूँ," अघोड़ी ने उत्तर दिया—"मैं इसे वहाँ से इसलिए उठा ले आया था कि शहर का कोई-न-कोई हिन्दू

मेरे कहने से अपने यहाँ इसे जरूर रख लेगा और इसके पिता की मुक्ति तक पाले-पोसेगा।"

"मगर," पादरी ने कहा—"इसके बाप को तो फाँसी होनी चाहिए," इसी समय एकाएक कुछ सोचकर उन्होंने सेशन जज मिस्टर यंग से कहा—"मेरा विश्वास है, आप मेरी बातों को अनुचित या गैरकानूनी न समझेंगे। हम लोग यहाँ प्राय: प्राइवेट बातें कर रहे हैं।"

मिस्टर यंग चुप रहे और अघोड़ी की ओर देखते रहे।

"नहीं," अघोड़ी ने कहा—"बुधुआ को फाँसी नहीं होगी। मेरा पूरा विश्वास है।"

मिस्टर यंग ने इस बार और भी गम्भीर दृष्टि से उस विचित्र साधु की ओर देखा।

"खैर," अघोड़ी बोला—"मुझे अपना उद्देश्य कह लेने दीजिए। मैंने यहाँ के अनेक हिन्दुओं से, जिनके पास पैसे और हृदय थे, इस बच्ची को आश्रय देने का आग्रह किया। किसी-किसी से तो, अपनी प्रकृति के विरुद्ध, मैंने प्रार्थना भी की; लेकिन उनमें से एक भी न पसीजा। इस शहर का एक भी हिन्दू बुधुआ भंगी की इस अनाथा बालिका को पालने के लिये तैयार न हुआ। यद्यपि यहाँ पर ऐसे-ऐसे अनेक हिन्दू हैं जिनके यहाँ कुत्ते भी पले हैं—और एक नहीं अनेक। भंगी समाज का मैला ही फेंकने के कारण पतित है—और उसी मैले को खाने वाला कुत्ता शुद्ध है! वसुधैवकुटुम्बकम् सिद्धान्त के आदि आविष्कारक इन हिन्दुओं का ऐसा पतन हो गया है पादरी साहब!"

कुछ रुककर अघोड़ी ने एक ठण्डी साँस ली। मानों इस जाति के पतन का स्मरण कर वह व्यथित हो उठा!

"पन्द्रह-बीस दिनों से," वह फिर बोला—"जब से अभागा बुधुआ इस विपत्ति में पड़ा है, मैं इस सुकुमार फूल को अपनी

कड़ी छाती से लगाये, इधर-से-उधर और उधर-से-इधर घूम रहा हूँ। बहुत ध्यान रखने और चेष्टा करने पर भी यह मुझसे हिलती नहीं है—अपनी माँ को—उसी मातृ-जाति की किसी को ढूँढ़ रही है। रात को रोने लगती है, तो तब तक रोती है जब तक गला बैठ नहीं जाता। खाती नहीं, पीती नहीं—ज़रा इस का मुँह देखिये ! कैसी सुन्दर थी पहले, किस तरह मुरझा गयी है अब !"

औघड़ ने कपड़ा हटाकर रधिया का मुँह खोल दिया। वह टुकुर-टुकुर ताक रही थी। मानो, गम्भीर भाव से, अपने भविष्य की कहानी की भूमिका सुन रही थी।

"ओ हो !" रेवरेण्ड राइट ने उसे देखकर कहा—"बच्ची तो बड़ी ही सुन्दरी है। दया आती है इसकी अभागिनी माता पर ! हृदय उमड़ा आता है इसके अभागे पिता की परिस्थिति पर ! रोने को जी करता है इस सुकुमार फूल के दुर्भाग्य पर !"

सहृदय राइट ने एक ठण्डी साँस ली !

"साधु !" उन्होंने पुनः औघड़ से कहा—"मैं पहले-पहल तुम्हारे देश में आया हूँ। अभी मुझे यहाँ आये अधिक दिन हुए भी नहीं। मगर, यह मैं क्या देख रहा हूँ ? क्या गीता का सन्देश सुनाने वाले श्रीकृष्ण इसी पुण्य-भूमि में पैदा हुए थे, जहाँ आज एक अनाथ बच्ची को कोई आश्रय देने वाला नहीं ? क्या संसार को प्रेम और विश्व-बन्धुत्व का उपदेश देने वाले महात्मा बुद्ध ने यहीं जन्म ग्रहण किया था—अपने महामन्त्र का प्रथम वार उच्चारण इसी काशी में किया था—जहाँ आज मनुष्य मनुष्य को इस तरह घृणित और शोकजनक नजर से देखता है ? साधु, बोलो ! क्या आज का भारत वह भारत नहीं रह गया है जिसके यश का सौरभ सात समुद्र पार तक, हजारों वर्षों से आज तक, अपना सुगन्ध फैला रहा है ?"

"आज का भारत वह प्रसिद्ध भारत नहीं है," अघोड़ी ने

उत्तर दिया—"यह तो तभी से प्रसिद्ध है जब से हम गुलामी का जीवन बिता रहे हैं। हमारा प्राचीन भारत आत्मा के महान उपासक की तरह प्रसिद्ध था, पर जब से हम परतन्त्र हुए तबसे हमारी विचार धारा ही पलट गयी है। अब हम शरीर—वादी हो गये हैं। बल्कि, अब हमारा कोई सिद्धान्त ही नहीं रह गया है। पशुओं की तरह पेट पालकर, कुत्तों की तरह जीवन व्यतीत करके ही हम अपने को धन्य समझते हैं। यदि महोदय, पतन नामक कोई चीज़ भी संसार में होती है, तो यह देश और इस देश के आर्य इस समय पतन की चरम सीमा पर पहुँच गये हैं। यहाँ जहाँ पर किसी समय प्रत्येक प्राणी ईश्वर समझा जाता था–इस समय, एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को अपने से जाति में छोटा समझता है, कुल में छोटा समझता है, नीच समझता है, पतित समझता है, अस्पृश्य समझता है।"

"इस देश में क़रीब ६ करोड़ अछूत हैं।" अभी तक चुप मिस्टर यंग ने भी इस संवाद में भाग लिया।

"इस देश में इकतीस करोड़ अछूत हैं।" अघोड़ी ने कहा—"छः करोड़ तो ऐसे हैं जिन्हें इस देश के हिन्दू नामधारी मूर्ख अछूत समझते हैं; पर बाकी के पचीस करोड़ ऐसे अछूत हैं जिन्हें सारा संसार अस्पृश्य और पतित और पृथ्वी का भार और गुलाम समझता है। प्रकृति भी, ईश्वर भी, थप्पड़ का जवाब थप्पड़ से देता है—महोदय। हम छः करोड़ से नफ़रत करते हैं, हमसे सारा संसार नफ़रत करता है। हम नफ़रत बोते हैं, नफ़रत काटते हैं।"

"मगर देखिये," जानसन ने कहा—"एक तरह से हम ईसाई आपके अछूतों का उद्धार ही कर रहे हैं। हम उनसे नफ़रत नहीं करते, हम उन्हें छूते हैं, पढ़ाते-लिखाते हैं, समाज और शहर से बाहर रहने वाले जंगलियों की श्रेणी से उठाकर मनुष्य बनाते हैं।"

"आप उन हिन्दुओं से अच्छे ज़रूर हैं," अघोड़ी ने कहा—

"जिनके कारण ये छः करोड़ अभागे अछूत बने पड़े हैं। जो न तो इन्हें छूते हैं और न मनुष्य बनने देते हैं। मगर, आप बिलकुल अच्छे हैं, यह बात नहीं है। मेरी राय में तो आप और आपकी मुक्ति-फौज वाले इन अभागों को हिन्दू अछूत से उठाकर ईसाई अछूत बना देते हैं। कितने ऐसे अछूत आप पेश कर सकते हैं जिन्हें आपने अपनी जाति में मिलकार समाज में बराबरी का पद दिलवाया हो ? मेरा तो ख़याल है—नहीं के बराबर। फिर, आप केवल ईसाइयों की संख्या बढ़ाने के लिये इन्हें अपने दल में घसीट रहे हैं। यह शुद्ध सेवा नहीं है, जिसका कि आपके धर्म-ग्रंथ में महत्व है। यह स्वार्थ-साधन है। मूर्खों की मूर्खता से लाभ उठाना है। इसे शुद्ध सेवा मैं तब मानता जब आप उन्हें अपने समाज में मिलाते, पढ़ाते-लिखाते, ज्ञानी बनाते और तब उनसे पूछते कि तुम हिन्दू धर्म अच्छा समझते हो या ईसाई या कोई भी नहीं ? मगर, ऐसा आपके वहाँ कहाँ होता है ?"

अघोड़ी थोड़ा रुका। एक सतर्क-दृष्टि से उसने पता लगा लिया कि जानसन को उसकी बातें अच्छी नहीं लगीं—

"ख़ैर, मैं इस समय, इस विषय पर विवाद करने नहीं आया हूँ।" उसने कहा—"हिन्दू मूर्ख हैं, उन्हें अभी संसार के चरणों की अनेक ठोकरें खानी हैं। इसीलिये उनके यहाँ इतनी जातियाँ, उपजातियाँ, ऊँच-नीच और अछूत हैं। आप हिन्दुओं से तो लाखदर्जे अच्छे मालूम पड़ते हैं। फिर भले ढोंगी ही क्यों न हों। हाँ; हाँ—इस तरह आँखें फाड़-फाड़कर मेरी ओर न देखिये—मैं ठीक कहता हूँ—आपकी जातिमें भी ढोंगी ही अधिक हैं—बल्कि, और सब जातियों से अधिक है। लेकिन आपमें और भी कुछ ऐसे गुण है जिनके कारण आपका ढोंग भी जम जाता है। जाने दीजिये—इस विषय को। मैं जिस लिए आया हूँ वह काम सुन लीजिये। मैं इस बच्ची को आपकी शरण में—आश्रय में—

छोड़ना चाहता हूँ ।"

"मुझ ढोंगी के आश्रय में—?" ताने से जानसन ने कहा ।

"इस तरह न बोलिये, गंभीर विषयों में व्यंग्य-परिहास ठीक नहीं । मेरी बातों पर एकान्त में विचार कीजियेगा । इस समय इस बच्ची को सँभालिये । मुझे अभी अनेक काम करने हैं—बुधुआ की फ़िक्र है । उसे फाँसी से बचाने की चिन्ता है ।"

"अच्छी बात है," जानसन ने कहा—"मैं इसे पाल लूँगा । बच्ची बड़ी सुन्दरी—मैं इसे खुशी से पाल लूँगा ।"

"मगर," अघोड़ी ने कहा—"याद रहे, आप इसे बप्तिसमा न देंगे—केवल पालेंगे । पढ़ाने-लिखाने में भी आप अपनी रुचि का प्रयोग न करेंगे । यह लड़की आपकी नहीं—बुधुआ भंगी की है । वह जब इसे माँगेगा, आपको देना पड़ेगा ।"

दूसरा मौक़ा होता, तो जानसन ऐसा पादरी, उक्त शर्तों पर किसी बच्चे को अपनी संरक्षता में कदापि न लेता, पर, न जाने कैसी शक्ति थी उस भयानक अघोड़ी की आँखों में, जिससे दृष्टि मिलते ही, पादरी जानसन ने मन-ही-मन अनुभव कर लिया, कि अघोड़ी का व्यक्तित्व उसके व्यक्तित्व से कहीं बड़ा—कहीं ऊँचा—था । उसने रधिया को अपनी संरक्षता में ले लिया ।

"जानसन महोदय," रेवरेण्ड राइट ने कहा—"यदि आप बुरा न मानें, तो मैं एक प्रार्थना करूँ । जबतक यह बच्ची आपके यहाँ रहे, इस पर जो व्यय पड़े वह मुझसे लिया जाय । मैं इसके लिये १० पौण्ड मासिक से आरम्भ कर, २० पौण्ड मासिक तक बराबर भेजते रहने की प्रतिज्ञा करता हूँ ।"

"ओ थैंक्यू वेरीमच !" जानसन ने कहा ।

अघोड़ी ने कहा कुछ नहीं केवल अपनी तेजस्विनी आँखों में करुणा भर कर उसकी ओर देखा ।

"तो," चलने का रूपक बाँधते और रधिया को रेवरेण्ड राइट

के हाथों पर रखते हुए, अघोड़ी ने कहा—"अब मैं जाता हूँ भाई जानसन ! मैं आपसे अक्सर मिला करूँगा।"

वह बाहर जाने के लिये, बिना प्रणाम-अभिवादन ही, पीछे मुड़ा—पर, ड्योढ़ी पर जाकर एकाएक रुका। उसने एक बार फिर दोनों पादरियों और मिस्टर यंग का सामना किया। लेकिन—ओह! उक्त तीनों ने देखा इस बार उस भयानक साधु की जलती हुई आँखों में विचित्र ज्योति थी। उसने मिस्टर यंग की आँखों से आँखें मिलाकर कहा—

"तुम मेरे साथ आना चाहते हो?"

"हाँ," मन्त्र-मुग्ध की तरह दौरा-जज मिस्टर यंग ने कहा।

"तो फिर चलो! अभी दस ही बजे हैं, अधिक विलम्ब नहीं है। आओ!"

मिस्टर यंग भी अघोड़ी की ओर बढ़े!

आश्चर्य से जानसन ने पूछा—

"रात अंधेरी है, हवा जोरों की है, आप इस अपरिचित भयानक के साथ कहाँ जा रहे हैं, मिस्टर यंग?"

"क्या कोई विशेष प्रयोजन है?" राइट ने भी दरियाफ़्त किया।

मगर, यङ्ग ने उनमें से किसी को भी उत्तर नहीं दिया। क्षण भर बाद साधु के साथ, वह, उस कमरे के बाहर थे!

: १७ :

अघोड़ी के पीछे

पादरी जानसन के कमरे से बाहर आकर उसी अँधेरी और तूफ़ानी रात में, अघोड़ी ने ज़रा सन्निकट से, मिस्टर यंग की आँखों में देखा। उसकी आँखें क्या थी बिजलियाँ। मिस्टर यंग

एकबार अपने गाढ़े-काले सूट में काँप उठे। अघोड़ी की दोनों आँखें उनके कलेजे में उतर गयीं। उसने दरियाफ़्त किया—

"तुम किसी सवारी पर आये हो?"

"हाँ," मिस्टर यंग ने उत्तर दिया—"मेरी मोटर बाइक वह रखी है।"

"अच्छी बात है, तुम उस पर बैठ लो, और मेरे पीछे आओ!"

"मगर," हिचकिचाते हुए यंग ने कहा—"मोटर बाइसिकिल तो बहुत तेज़ जायगी, उसमें साइडकार भी नहीं है, कि दो आदमी बैठ लेते।"

"तुम बैठकर चलो! जल्दी करो!"

शायद, कुछ देर बाद, पादरी जानसन का छोकरा लौट आया था, और, शायद उस भयानक साधु से अपने मालिक को बातें करते सुन उसकी हिम्मत खुल गयी थी। क्योंकि, इस बार अघोड़ी ने देखा, वह फाटक के पास मिस्टर यंग की मोटर बाइक सँभाले खड़ा था। अघोड़ी उसे देखकर ज़रा मुस्कराया—

"क्यों, तू आदमी से भी डरता है? पागल कहीं का!"

छोकरा फिर काँप उठा!

इधर मिस्टर यंग फट्-फट् कर, मोटर बाइसिकिल पर चढ़ बैठे। वह बड़े ज़ोर से फड़फड़ाती हुई, अपने तीव्र प्रकाश से उस घने अन्धकार की छाती फाड़ती हुई, आगे बढ़ी। चर्च-कम्पाउण्ड के बाहर आने पर उन्होंने पीछे मुड़कर देखा कि अघोड़ी कहाँ है? मगर, वह उधर नहीं था। फिर सामने की ओर नज़र दौड़ायी—ओ हो! मोटर बाइसिकिल के प्रकाश की अन्तिम रेखा सड़क के जिस भाग पर पड़ रही थी—अघोड़ी वहीं जाता दिखाई पड़ा! "ओह!" आश्चर्य से यंग ने अपने मन में विचार किया—"यह इतना आगे कैसे

निकल गया !" उन्होंने अपनी गाड़ी की गति ज़रा तीव्र की। क्षण भर बाद उन्होंने फिर सामने देखा—मगर, अब भी अघोड़ी उनकी गाड़ी के प्रकाश की चोटी ही पर था। सड़क सूनी, काली और भयानक थी। यंग ने सोचा, माजरा क्या है। उस व्यक्ति की चाल से मेरी गाड़ी की गति मन्द क्यों है ? इस बार प्रति-घंटा तीस मील के हिसाब से उन्होंने अपनी गाड़ी की गति कर दी। अग़ल-बग़ल की पृथ्वी थर्रा उठी। वायु और अन्धकार की छाती में उनकी गाड़ी तीर की तरह घुस चली—मगर उफ़ ! अब भी जब उन्होंने सामने नज़र दौड़ायी, तो, अघोड़ी आगे ही था—इतना आगे कि उनकी गाड़ी उसे देख भर सकती थी, छू नहीं !

घंटों तक यही हालत रही। जैसे माया के पीछे जीव दौड़े, उसी तरह उस भयानक-बदन साधु के पीछे, बीसवीं सदी के विज्ञान के चरम विकास पर चढ़े, मिस्टर यंग दौड़ते रहे। बनारस की 'बहरी' तरफ़ की किन-किन सड़कों की ख़ाक उन्होंने छानी—कहना मुश्किल है। मगर, वह ऊबे नहीं। इस दौड़ में कोई विशेष प्रयोजन, कोई ख़ास स्वार्थ, न होने पर भी, उस भयानक व्यक्ति की ओर न जाने क्यों उनका हृदय बे-लगाम घोड़े-सा झपटा—खिंचा—चला जा रहा था। आख़िर, बहुत दौड़-धूप के बाद, उन्हें ऐसा मालूम पड़ा मानो वह बनारस के उस मुहल्ले में आ गये जिसमें युरोपियनों की बस्ती है। लेकिन अब भी अघोड़ी की गति रुकी नहीं। उस मुहल्ले में भी वह यंग साहब को प्रायः १० मिनट तक दौड़ाता रहा।

"बस !" उन्होंने सुना, अघोड़ी ने आवाज़ दी। उन्होंने अपनी गति मन्द की। मशीन रोक दी। उतर पड़े।

"अब थोड़ी देर तक," उनके पास आकर अघोड़ी कहने लगा—"गाड़ी को हाथ से घसीटते हुए मेरे पीछे आओ !"

कोई १० मिनट तक यङ्ग साहब को, अघोड़ी के पीछे पेड़ों से

घिरी हुई सड़क पर चलना पड़ा। उन्होंने देखा वह अंग्रेजी-बस्ती के एकान्त भाग में थे।

"बस, इसी पेड़ के नीचे गाड़ी रख दो! और मेरे पीछे आओ! रख दो! कोई डर की बात नहीं है। बनारस के सेशन जज की गाड़ी कोई चुरा नहीं सकता!"

गाड़ी पेड़ के नीचे रख कर वह अघोड़ी के पीछे चले। कोई सौ गज़ चलने के बाद वे एक पेड़ों के झुरमुट में घिरे बङ्गले के फाटक पर पहुँचे। मिस्टर यङ्ग ने देखा फाटक के बाहर एक साइनबोर्ड था, जिस पर दूर से आती हुई सड़क के लेम्प की रोशनी पड़ रही थी। उन्होंने पढ़ा। उस पर लिखा था—"स्त्री-स्वातन्त्र-समर्थिनी-समिति।"

साइनबोर्ड देख कर यङ्ग साहब चकराये! उन्होंने धीरे से अघोड़ी से कहा—

"आज यहाँ समिति का एक विशेष उत्सव है, जिसमें चुने हुए लोग ही निमन्त्रित हैं। यहाँ मेरी स्त्री भी है। मैं इस अहाते में नहीं जाऊँगा। ऐसा करना नियम विरुद्ध होगा। अभद्रता होगी।"

"चलना होगा!" आँखें चमकाकर अघोड़ी ने कहा—"इसी-लिये तो तुम्हें यहाँ ले आया हूँ। ठहरो, घबराओ मत। तुम्हारे जूते आवाज़ करेंगे। उन्हें उतार कर यहीं आड़ में रख दो—हाँ, यहाँ—ठीक है। अच्छा, उधर से नहीं—इधर से आओ। इसे फाँद तो सकोगे न? क्यों नहीं, तुम काफ़ी लम्बे हो, कोशिश करो—पार हो गये यङ्ग? ठहरो मैं भी आया!"

क्षण भर में अघोड़ी और मिस्टर यङ्ग समिति के अहाते के भीतर थे। अहाते के बीचोबीच एक सुन्दर बङ्गला था जिसके हाल में खूब रोशनी हो रही थी। मिस्टर यङ्ग ने देखा हाल से सटे हुए एक कमरे में १०-१५ पुरुष और ठीक उतनी ही स्त्रियाँ मद्यपान

कर रही थीं। लोगों की नज़रों से बचता, यङ्ग साहब के साथ, अघोड़ी एक ऐसे स्थान पर जा छिपा जहाँ से भीतर वालों की भाव-भंगिमा और बातें साफ़ दिखाई-सुनाई पड़ती थीं !

मिस्टर यङ्ग ने देखा, प्रत्येक पुरुष की बग़ल में एक-एक युवती स्त्री थी। उनकी स्त्री भी एक जवान और सुन्दर पुरुष की बग़ल में बैठ कर, आँखों और कपोलों और होंठों में मुस्करा रही थी। यद्यपि इसमें कोई पातक की बात—मिस्टर यङ्ग के सामाजिक नियमानुसार—नहीं थी; फिर भी, उनका ख़ून गरम होने लगा ! इसी समय उन्होंने अपनी स्त्री की आवाज़ सुनी—

"चलो ! जल्दी करो ! हम अन्तिम नाच नाच लें। सारी सदस्याएँ अपने-अपने साथी की आँखों पर पट्टी बाँध दें।"

"इस बार नहीं, प्यारी !" यङ्ग साहब की बीबी की बग़ल में बैठे हुए युवक ने मुस्करा कर कहा।

"नो नो नो—हज़ार बार नो ! तुम पुरुषों की स्वार्थ लिये हम अपनी समिति का नियम नहीं तोड़ेंगी। हम यहाँ पर उन्हीं पुरुषों को निमन्त्रित करती हैं, जो हमारे हाथों के खिलौने हों, हमारी शर्तें स्वीकार करते हों। तुम सबने प्रतिज्ञा की है कि हमारी समिति के नियमों का पालन करोगे। बस—दूसरा शब्द नहीं—बाँधो आँखें।" मिसेज़ यङ्ग ने आज्ञा दी।

देखते-देखते सभी युवतियों ने अपने साथियों की आँखों पर पट्टी बाँध दी। फिर, उनके हाथ पकड़ कर, नाचने वाले कमरे में ले गयीं। एक दूसरे कमरे में मधुर बाजा बजने लगा। स्त्री-पुरुषों की जोड़ियाँ, एक दूसरे की कमर में हाथ डालकर, छाती से सटकर, थिरकने लगीं !

कोई आध घंटे से ऊपर तक वह नाच चलता रहा। कोई आध घंटे तक यङ्ग साहब अपने होंठों को दाँतों से काटते रहे। इसके बाद बाजा रुका। नाचने वाले और वालियाँ भी रुकीं। अब सब

की-सब युवतियाँ देखते-अन्धे अपने यारों को लेकर, इधर-उधर एकान्त स्थान ढूँढ़ने लगीं। कुछ बङ्गले ही में बैठ गयीं; पर, अधिकांश- जोड़ियां बगीचे में निकल आयीं और कुञ्जों और झुरमुटों की ओर बढ़ीं!

मिस्टर यंग ने देखा, उनकी बीबी भी अपने साथी को लेकर एक कुञ्ज में जा डटी। उन्होंने यह भी देखा कि सभी कुंजों में एक-एक बेंच थी।

"उत्तेजित न हो!" यंग के कान में अघोड़ी ने कहा—"धीरे से, अपनी स्त्री के कुंज के पास चलो!"

मन्त्र-मुग्ध की तरह यंग ने अघोड़ी का अनुसरण किया। वे उस कुंज से जिसमें यंगकी स्त्री और उसका साथी था, थोड़ी दूर पर जाकर, गुलाबों के झुरमुट में बैठ गये। उन्होंने देखा पट्टी बँधा हुआ पुरुष बेञ्च पर बैठा था, और यंग की स्त्री खड़ी थी। उसका हाथ उस पुरुष के हाथ में था। एकाएक मिसेज यंग उस पुरुष की छाती से लग गयी और उसे चूमने लगी!

"ठहरो प्यारी! ठहरो प्यारी!" उस पुरुष ने कहा—"अब अन्तिम बार तो पट्टी खोल दो—मान जाओ! मुझे भी सुख लेने दो!"

"नो नो नो नो!" बार-बार पुरुष को उन्माद से चूमती हुई मिसेज यंग ने कहा—"अन्धा ही रहने पर पुरुष अधिक आकर्षक होता है। जैसे हो, वैसे ही रहो! मैं आँखवाले पुरुषों को नहीं प्यार करती।"

वह एक बार फिर उस अन्धे की छाती पर मिस्टर यंग की नजरों में वीभत्सता से थिरकने लगी! मगर, अब, शायद वह पुरुष अपने को संभाल न सका। बड़े जोर से मिसेज यंग को एक हाथ से छाती में दबा कर उसने दूसरे हाथ से अपनी आँखों की पट्टी खोल दी। बेञ्च से उठ खड़ा हुआ। उन्मत्तों की तरह मिसेज

यंग को गोद में उठा लिया और पागलों की तरह चूमने, छाती में छोपने, उसको लिये-दिये बेञ्च पर बैठने—फिर उठने—फिर बैठने लगा !

इस बार अघोड़ी ने मिस्टर यंग की ओर देखा। उन्होंने अपना हाथ अपने पाकेट में डाल लिया था—वह कुछ ढूँढ़ रहे थे ! शायद पिस्तौल !

"ठहरो !" यङ्ग के कान में तीव्र परन्तु धीमे-स्वर में अघोड़ी ने कहा—"तुम क़ानून के पण्डित हो, बुद्धिमान हो ! तुम्हें वैसा काम न करना चाहिये जैसा काम करके बुधुआ भंगी फाँसी पाने का स्वप्न देख रहा है।"

मगर यंग रुके नहीं। उनकी पिस्तौल बाहर निकली और वह उन दोनों की ओर झपटने को तैयार हो गये। पर, वाह रे अघोड़ी की शक्ति ! उसने एक हाथ से यंग का पिस्तौल वाला हाथ पकड़ा–पिस्तौल को अपनी मुट्ठी में किया और दूसरे हाथ से उनका मुँह बन्द कर दिया !

मारे उत्तेजना के बेचारा यंग बेहोश हो गया !

: १८ :

होश में आने के बाद

ज़रा-सा होश आने का अनुभव होते ही मिस्टर यंग ने यह जानने की चेष्टा की कि वह कहाँ हैं। उन्हें मालूम पड़ा जैसे उनको कोई अपनी पीठ पर लादे लिए जा रहा है। एकबार सन्नाटे में आकर उन्होंने आँखें खोल दीं। उन्हें मालूम पड़ा, अभी सवेरा नहीं हुआ है, रात्रि के पिछले पहर की घड़ियाँ सायँ-सायँ कर रही हैं। आकाश में नक्षत्र-राशि है जरूर ; मगर, खिली हुई नहीं,

कुम्भलायी हुई। उन्होंने अपना दाहिना हाथ उठाकर उस चीज़ को स्पर्श करना चाहा जो उनकी कमर के ऊपर लिपटी-सी थी। मगर, हाथ हिलाते ही उनका पंजा किसी कड़ी और ठण्ढी चीज़—शायद लोहे—से टकराया। वह चीज़, उन्हें मालूम पड़ा, उनकी मोटर बाइक का पिछला भाग था। मोटर बाइसिकिल का स्मरण आते ही मिस्टर यंग 'धक्' से हो उठे! उन्हें कुछ घंटे पहले की सब घटनाएँ याद आने लगीं। उनके स्मृति पटपर, क्रमशः, सिगरा का चर्च, रेवरेण्ड राइट और पादरी जानसन से भेंट, औघड़ के दर्शन, रधिया की कथा, उनका औघड़ के साथ जाने को राज़ी होना, मोटर बाइक की दौड़, स्त्री-स्वातन्त्र्य-समर्थिनी समिति, अन्धे पुरुषों का नाच, उनकी स्त्री की स्वतन्त्रता का वीभत्स प्रदर्शन, उनका उत्तेजित होना, औघड़ का बाधा देना आदि घटनाएँ फिर गयीं। वह मन-ही-मन समझ गये कि अलौकिक शक्तिमान वह भयानक औघड़ ही उन्हें अपनी पीठ पर लादे उस नारकीय स्थान से कहीं दूर लिए जा रहा है; जहाँ उनकी स्त्री विश्वासघात और व्यभिचार का नारकीय नाच नाच रही है। यंग का माथा एकबार पुनः गरम हो उठा। उन्होंने ज़ोर से सगबगाते हुए अघोड़ी से कहा—

"रुको! हे भयानक साधु! तुम मुझे कहाँ लिये जा रहे हो?"

"ओहो! तुम होश में आ गये!" यङ्ग को पीठ पर से उतारते हुए तथा बाइसिकिल को सड़क पर रखते हुए अघोड़ी ने कहा—"मिस्टर यङ्ग, तुम्हारा जी कैसा है?"

"मेरा जी?" यङ्ग ने तीव्र-स्वर से उत्तर दिया—"मेरा जी ख़राब कब था? मगर, वहाँ पर, उस पाजी औरत और उस नराधम को मारने से रोक कर तुमने अच्छा काम नहीं किया। उफ़! तुमने मुझे छूते ही बेहोश कर दिया। तुम्हारे स्पर्श में निद्रा

मालूम पड़ती है ।" मिस्टर यङ्ग आगे कुछ न कह कर अघोड़ी को, छीजते हुए पूर्ण-चन्द्र के हलके प्रकाश में, सिर-से-पैर तक देखने लगे—"तुम आदमी हो ? तुम शैतान हो ? तुम देवता हो ? तुम क्या हो ?" उन्होंने पूछा—"मुझ जैसे तगड़े आदमी को पीठ पर लादकर, इस वज़नी मोटर बाइसिकल को हैण्ड-बेग की तरह एक हाथ से उठाकर, तुम ढाई मील से ऊपर चले आये ! तुम्हारे माथे पर पसीने की एक बूँद भी नहीं दिखाई पड़ती है ! तुम्हारी छाती से एक दीर्घ-श्वास भी बाहर नहीं निकल रहा है ।...मगर सुनो ! मगर सुनो !" एकाएक पुनः उत्तेजित होकर यंग कहने लगे—"मेरी पिस्तौल कहाँ है ? लाओ उसे मुझको दो, मैं बँगले पर लौट जाना चाहता हूँ—मैं...।"

यंग अपने होठ को दाँतों से काटने लगे ।

अघोड़ी ने दयार्द्र-भाव से मिस्टर यंग के कन्धे पर अपना हाथ रखकर पूछा—

"एक बात बताओगे मिस्टर यंग ? देखो—ठहरो—उत्तेजना ज़रा कम करो ! मैं जानता हूँ, तुम्हारी-जैसी परिस्थिति में पड़कर कोई भी 'आदमी' उतना ही उत्तेजित हो उठेगा जितने तुम हो—मगर, नहीं; तुम बुद्धिमान हो, तुम दौरा जज हो, सुना है प्रतिभाशाली भी हो, तुम इस बात को ज़रूर जानते होगे कि उत्तेजित और क्रोधान्ध-मस्तिष्क हमेशा उचित ही नहीं सोचता । ठीक है, ठीक है । तुम मेरी बात समझ रहे हो । क्यों न समझोगे, तुम बुद्धिमान हो ।"

"लेकिन एक ठंडी साँस खींचकर यङ्ग ने कहा—"ऐसे वक़्तों पर भावों को वश में रखना बड़ा कठिन काम है । दौरा जज या बुद्धिमान होने से कोई फ़रिश्ता तो हो नहीं जाता—उफ़ ! ऐसा विश्वासघात ! ऐसी नीचता ! जी करता है—जी करता है…।"

यङ्ग एक बार पुनः उत्तेजित हो उठे ।

"मगर सुनो तो-सुनो तो मिस्टर यङ्ग ! तुम ऐसी दुनिया में रहते हो जिसमें सुख के साथ दुख, प्रकाश के साथ अन्धकार, विश्वास के साथ अविश्वास और प्रेम के साथ द्वेष अक्सर देखे जाते हैं। दुनिया रङ्गमञ्च है—जैसा कि पूर्व और पश्चिम, उत्तर और दक्षिण, चारों ओर के विद्वान कह गये हैं—जीवन नाटक है, और हम-तुम अभिनेता हैं। इस नाटक में कहीं भी नाटकीय-सत्य से परे किसी ठोस सत्य को ढूँढ़ना व्यर्थ है, मूर्खता है, बालू से तेल निकालने की आशा है। एक अभिनेता तुम हो, दूसरी अभिनेत्री तुम्हारी वह सामाजिक-पत्नी है जिसे तुम पापिनी, राक्षसी और क्या-क्या कहकर पुकार रहे हो—नाः नाः नाः भाई ! सांसारिक खिलौनों से इतना गम्भीर सम्बन्ध रखोगे तो कष्ट पाओगे। तुम दूसरों का अभिनय देखकर दाँत क्यों किटकिताते हो ? पिस्तौल क्यों ढूँढ़ते हो ? तुम अपना पार्ट याद करो—अपना 'रोल प्ले' करो ! और, यह तो तुम भी स्वीकार करोगे कि तुम्हारा रोल, तुम्हारा पार्ट, दाँत किटकिटाना और रोना और हत्या करना और किसी एक मुट्ठीभर के पंचतत्व के पुतले के लिये जीवन को नरक बना डालना नहीं है।"

"मगर—मगर !" मिस्टर यङ्ग ने आजिज़ी से कहा—"यही स्वाभाविक है। यही मानुषिक है धर्मावतार ! हज़ार विद्वान होने पर भी मनुष्य हमेशा दार्शनिक नहीं रहता है। मानव समाज का अधिकांश हमेशा दार्शनिक रहना भी नहीं चाहता। आपकी बातों को अगर हम सच मान भी लें, तो, वह केवल कल्पना में रहने लायक हैं—बर्तने लायक नहीं। आपकी बातें साधारण सांसारिकों के लिये असाध्य हैं। संसारी प्राणी तो अपनी स्त्री को व्यभिचारिणी देखकर आग उगलेगा ही—खून की होली खेलने को तैयार होगा ही। वह जीवन और नाटक और रङ्ग-मंच और अभिनायकता का विचार नहीं करेगा। नहीं करता। शायद कर

ही नहीं सकता। संसार रङ्ग-मंच पर आकर जीवन के नाटक को सत्य मान लेना और अपने असली पार्ट को भूलकर कुछ दूसरी ही बक-झक और दाँता-किटकिट करने लगना ही, मनुष्य ने, सृष्टि के आरम्भ से आज तक सीखा है। वैसा ही साधारण मनुष्य मैं भी—मैं स्वीकार करता हूँ—वैसा ही साधारण मनुष्य मैं भी हूँ। मैं ऐसे ही साधारण मनुष्यों की मंडली में पाला-पोसा गया हूँ जो जीवन के नाटक में अपने असली पार्ट को भूलकर रोते हैं, गाते हैं, पुलकते हैं, प्रेम करते हैं, और मरते मारते हैं।"

"मगर यङ्ग" अघोड़ी ने कहा—"ऐसे जीवन का अन्त असन्तोष है। और, असन्तोष तो जीवन को नरक बना डालता है। इस समय तुम बड़े ही भयानक खड्ढ के मुँह पर खड़े हो। बहुत सँभाल कर पैर आगे बढ़ाना—बहुत सँभाल कर मित्र! नहीं तो, पछताना पड़ेगा। और, पश्चात्ताप के फल विष-वृक्ष के फलों से भी अधिक कड़वे होते हैं। इतनी बातें तुमसे इसलिये कहता हूँ कि तुम्हारी परिस्थिति से मेरी पूर्ण सहानुभूति है। जिस स्थान पर तुम आज खड़े हो, उसी स्थान—ठीक उसी स्थान पर—ज़माना हुआ, मैं भी खड़ा था। नारी का ठीक वही रूप एक बार मेरे सामने भी आया था जिसे देखकर तुम अपने आपे के बाहर हुए जा रहे हो—मगर, मैं बच गया। मुझे बचा लिया मेरे ईश्वर ने, मेरे भगवान ने, मेरे उदार मालिक ने! उस घटना से मैं केवल बचा ही नहीं, बल्कि, जीवन के मैदान में कुछ आगे भी बढ़ गया।"

"तुम बच गये!" आश्चर्य से आँखें फाड़कर यंग ने पूछा—"किससे बच गये? औरत की माया से? उसके विश्वास से? साधु, बोलो! क्या कभी तुम भी मुझ-जैसे गृहस्थ और संसारी जीव थे? ओहो! तुम तो अद्‌भुत घटनाओं से भरे उपन्यास की तरह कौतूहलमय दिखाई पड़ते हो! तुम कहो, मैं तुम्हारी वह

कहानी सुनना चाहता हूँ, जिसमें किसी स्त्री ने तुम्हारे साथ विश्वासघात किया था। मैं तुम्हारी उस कहानी को एक बार सुन लेने के बाद ही अपना मार्ग निश्चित करूँगा। सच कहता हूँ—विश्वास मानो!"

"कहानी सुनना है तो" अघोड़ी ने कहा—"सड़क छोड़कर उस पीपल के पेड़ की छाया में चलकर बैठो। यहाँ खड़े-खड़े—मैं तो नहीं तुम्हीं—थक जाओगे; आओ!"

मिस्टर यंग औघड़ के हाथ से अपनी मोटर-बाइक लेकर उसके साथ सड़क की एक ओर छतनार खड़े, विशाल पीपल वृक्ष की ओर बढ़े।

: १६ :

उत्तरार्ध

अघोड़ी की कहानी का पूर्वार्ध सुनकर मारे आश्चर्य के मिस्टर यंग, उछलकर खड़े हो गये और कहने लगे—

"सचमुच तुम विचित्र आदमी हो, भयानक साधु! हमारे पश्चिमीय देशों में तुम्हारे जैसे व्यक्ति, लाख चेष्टा कर खोजने पर भी, नहीं मिलेंगे। तुमने अपने उस गुरु-पत्नी गामी विद्यार्थी को बिलकुल क्षमा कर दिया! अपनी उस विश्वासघातिनी पत्नी को केवल क्षमा ही नहीं कर दिया—पूर्ण स्वतन्त्रता ही नहीं, कई हज़ार के गहने और नोट भी दिये! वाह रे क्षमा करने वाले! वाह रे उदार!"

"तुम नहीं जानते," अघोड़ी ने कहा—"यद्यपि तुम्हारी बायबिल क्षमा के महत्त्वों से भरी पड़ी है—अपने शत्रुओं को क्षमा कर, जो तेरे दाहिने गाल पर तमाचा मारे उसके सामने अपना

बायाँ गाल भी कर दे; हे परमात्मा ! इसे क्षमा कर, क्योंकि यह नहीं जानता कि क्या कर रहा है; आदि महान उपदेश-मय बातों से बायबिल चमक रही है। मगर, तुम लोग उसे अपना धर्म-ग्रन्थ मानते हुए भी क्षमा के महत्व को नहीं समझते। तुम ईंट का जवाब पत्थर और घूसे का जवाब तलवार से देने के हिमायती हो रहे हो—जो कि ईश्वरीय नहीं, शैतानी, सात्विक नहीं, अ-सात्विक प्रकार है। मैं देखता हूँ मिस्टर यंग ! तुम्हारे ओष्ठाधरों पर व्यंग से भरी मुस्कराहट नाच रही है। ऐसा न समझो कि इस अन्धकार में मुझे तुम्हारे मुख पर के भाव नहीं दिखाई पड़ते हैं। तुम मन-ही-मन सोच रहे हो कि ऐसे स्थानों पर का क्षमा-दान कायरों का शस्त्र है। नहीं, नहीं, कदापि नहीं। मैं कायरों की तरह क्षमा करने को नहीं कहता। और न तो वैसी क्षमा का महत्व ईसा ही ने समझा था। क्षमा तो वीरों का शस्त्र है। दण्ड देने की शक्ति रखते हुए भी जब, मुस्करा कर, किसी को क्षमा कर दो, तब क्षमा करने का मज़ा है। ऐसे मौक़ों पर क्षमा-दान लेने वाला ही अपमानित होता है, कायर साबित होता है। मेरा मत यह है कि आदमी को क्षमा-दान देने को तैयार रहना चाहिये—लेने को कभी नहीं। किसी से क्षमा-दान लेने से दण्ड लेना ही अधिक उत्तम है; क्योंकि, दण्ड की व्यथा थोड़ी देर में दूर हो जाती है और क्षमा की मार बरसों तक—और कभी-कभी आजीवन—छाती में चिलक पैदा करती रहती है।—मगर ठहरो ! इन विषयों पर मैं तुमसे कभी फिर बहस कर लूँगा, अभी मुझे अपनी कहानी पूरी कर लेने दो। भोर होने को आ रहा है। तुम्हें प्रभात के पूर्व ही अपने बँगले पर पहुँचना चाहिये।"

सन्नाटे की प्रति-मूर्ति बने मिस्टर यंग अघोड़ी की कहानी का उत्तरार्ध सुनने को तैयार हो गये।

"जीवन-हीन शरीर की तरह घरनी-हीन घर में आग लगा

देने के बाद मैं उसी रात प्रयाग से एक ओर—न जानें किस ओर—चल पड़ा। मैं किधर जाता था, कहाँ जाता था, मुझे मालूम नहीं था। फिर भी, दिन और रात—और रात और दिन—मेरे पैर आगे ही की ओर बढ़ते जाते थे। उस समय अपनी स्त्री के विश्वासघात का स्मरण कर, अपने पागल प्रेम को याद कर, मेरी छाती में तहलक़ा-सा मचा था। जी करता था, समुद्र की तरह हाहाकार कर गर्ज उठूँ; दावानल की तरह दहक कर आग उगलने लगूँ; रुद्र की तरह भयानक रूप धरकर ताण्डव नृत्य करने लगूँ। उफ़! मैंने कैसे सच्चे हृदय से प्यार किया था, दुनिया के उस छलिया-रूप को! मैंने कितना महत्व दिया था संसार की उस विश्व-विमोहिनी मृग-मरीचिका को! बस, यही विचार, बिच्छी के आर की तरह, मेरे माथे पर, हृदय पर, टपाटप टपक रहे थे। यदि कभी चलते-चलते सामने कोई वृक्ष दिखाई पड़ता था, तो, ऐसा जी करता था कि—टकरा दूँ उसीसे अपना माथा और इस हाय-हाय-मय जीवन का 'बस' कर दूँ। नदी दिखाई पड़ती थी, तो मन करता था फाँद पड़ूँ और जीवन को जीवन में विलीनकर, अधम शरीर को जल-जन्तुओं के 'क्षणभर मौज' के लिये छोड़ दूँ।

"कभी-कभी रास्ते के किनारे पर रुक जाता और हाय-हाय कर रोने लगता था। हाँ—हाँ, आश्चर्य न मानो; दहाड़ मारकर रोने और 'हायरी औरत! हायरी माया!! हायरी औरत! हायरी माया!!' चिल्लाने लगता था। रास्ते के भोले-भाले बटोही मेरी ओर ताकने और सहानुभूति की मीठी-मीठी बातें करने लगते थे। कोई कहता—'बेचारा लुट गया-सा मालूम पड़ता है।' कोई कहता 'अभागा पागल है पागल!'

"इसी तरह कितने दिनों तक मैं इस संसार-समुद्र की भयावनी लहरों में पड़ा, इधर-से-उधर और उधर-से-इधर ठोकरें खाता

रहा—मालूम नहीं; हाँ, इतना मालूम है कि चलने की क्लान्ति से और भूख-प्यास जर्जर होकर एक दिन यह काया किसी रेतीली जमीन पर घुटनों के बल गिर पड़ी। मैंने तबाह की सूरत बन कर उसी तरह घुटनों के बल पड़े-पड़े अपने माथे को बालू में गाड़ दिया और रो-रोकर लगा चिल्लाने—'मेरे ईश्वर! मेरे स्वामी! बड़ी व्यथा है, बड़ा कष्ट है, बड़ा कष्ट है! अब समाप्त करो इस नारकीय यन्त्रणा को!'

"मैं उसी अवस्था में—वहीं मूर्छित हो गया!

"इसके बाद जब मेरी मूर्छा टूटी उस समय प्रभात हो चला था। प्रकृति के उसी प्रभात के साथ मेरे नये जीवन का प्रभात भी हुआ। मानो परमेश्वर ने मेरी पुकार सुन ली। आँखें खुलने पर देखा, कोपीनधारी एक औघड़ साधु, नर-मुण्ड में जल भरे, मेरे माथे पर छींटें दे रहे थे। मुझे सचेत होते देख उन्होंने आवाज़ दी—

'चेत! चेत!! सवेरा हो गया!'

"मैंने पूछा—

'कैसा सवेरा महाराज! आप कौन हैं?'

'मैं तेरा गुरू हूँ।' उस अघोड़ी ने कहा—'उठ! चल मेरी कुटी पर। मैं तेरी ही प्रतीक्षा में था। तुझे तो कभी यहाँ आ जाना चाहिये था। हा हा हा हा! फँस गया दुनिया के चक्कर में और भूल गया मुझे! कैसा थप्पड़ लगा भैया! कैसा पुरस्कार दिया तुझे उस ठगिनी ने! अब उठ! चल मेरी कुटी पर। मेरा समय पूरा हो गया है। मैं आज ही देह छोड़ूँगा। तू मेरा उत्तराधिकारी है। अपनी सारी सम्पत्ति मैं तुझे सौंपूगा।'

"इसके बाद पास ही के जंगल की कुटी में ले जाकर उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति, अर्थात् वह कोपीन और नर-मुण्ड, मुझे दे दी। उन्होंने मुझे अनेक दिव्य-मन्त्र भी दिये, उनके साधने की

विधियाँ बतायीं और उसी कुटी में रहकर दस वर्ष तक एकान्त चिन्तन करने का उपदेश दिया।

"बस—इसके बाद, प्राणायाम कर उन्होंने देह छोड़ दिया जिसे मैंने उनके इच्छानुसार जल-जन्तुओं के आहार के लिये यमुना में प्रवाहित कर दिया। आगे चलकर ईश्वर ने मेरी बड़ी मदद की। मैं प्रवृत्ति से परे होकर निवृत्ति के मार्ग का पथिक बन गया और अबतक उसी पथ पर, अपने गुरुदेव के आज्ञानुसार, चलने की चेष्टा कर रहा हूँ।"

अघोड़ी क्षण भर के लिये रुका। यंग ने एक ठंडी साँस खींच कर कहा—

"उफ़! साधु! तुम मूर्तिमान आश्चर्य हो!!"

: २० :

बुधुआ बच गया!

उस दिन संध्या ६ बजे के समय बनारस के कम्पनी बाग़ की बेञ्चों पर आपने-सामने बैठे कुछ लोग बातें कर रहे थे—

"क्या कहते हो?"

"बुधुआ भंगी बच गया।"

"बच गया?? याने, उसे दौरा जज ने साफ़ छोड़ दिया?"

"नहीं, साफ़ नहीं छोड़ा। ऐसा तो मुमकिन ही नहीं था, उसने दो-दो खून किये थे, एक को घायल किया था और पुलीस के आगे खून करना और घायल करना स्वीकार भी किया था।"

"तब? वह बचा कैसे?"

"बच ही गया, उसकी क़िस्मत से ज्यादा उसकी बहादुरी ने उसकी मदद की।"

किसी तीसरे व्यक्ति ने कहा—"मैंने उड़ती हुई ख़बर सुनी है, कि दुनियाभर की दुश्मन पुलिस ने भी उसकी मदद की। भेलूपुरा थाने का वह थानेदार उसकी बहादुरी पर ऐसा ख़ुश हुआ कि उसने बुधुआ से कहकर, उसे समझा-बूझाकर, ऊपर की अदालत में और मैजिस्ट्रेट के सामने, उसका बयान बदलवा दिया।"

"बयान बदलवा दिया का क्या अर्थ ? क्या उसने ख़ून करने से इनकार कर दिया ?"

"ख़ून करने से इनकार नहीं, दूसरी कई और छोटी-छोटी, पर, महत्व-पूर्ण बातों से इनकार कर दिया। जैसे, घर से छुरा लेकर आने की बात। छोटी और बड़ी अदालत में उसने यह नहीं कहा कि मैं घर से ही मारने-मरने की तैयारी करके आया था, बल्कि, बात ही बदल दी। कहा—अपनी स्त्री को बेइज़्ज़त होते देख मैं मौलवी के घर में कूद पड़ा और वहीं, एक कोठरी में, उस छुरे को टँगा देख, क्रोध के भयानक आवेश में, मैंने उसका उपयोग किया।"

"बस, महज़ इतनी ही रद्दोबदल होने से उस की जान बच गयी ?"

"अजी इतनी ही रद्दोबदल हुई यह कौन कह सकता है ? मैंने कुछ अदालतों में जाकर उसके बयान सुने तो हैं नहीं, अफ़वाह सुनता हूँ। जब पुलीस ही उसकी मदद पर थी तब उसने क्या-क्या बदला और क्या-क्या नहीं बदला यह कौन कह सकता है !"

"ख़ैर उसे फाँसी नहीं हुई, मैं इस संवाद से ख़ुश हुआ। बुधुआ ने जिस परिस्थिति में वह खून किया था उससे, मेरा विश्वास है, प्रतिशत निन्यानवे व्यक्ति सहानुभूति प्रकट करेंगे। अच्छा उसे सज़ा कितनी हुई ?"

"सजा उसे आजन्म कालेपानी की हुई है।" एक चौथे व्यक्ति ने कहा—"मगर मुझे एक दूसरी बात मालूम हुई है। मुमकिन है मेरे मित्र की पुलीस के मदद देने की बात सही हो, पर, मैंने सुना है—और बड़े विश्वासी आदमी से सुना है, कि—दौरा-जज ही ने बुधुआ की परिस्थिति को सहानुभूति की नज़र से देख कर उसे फाँसी से बचा दिया। सुना है, उन्होंने फ़ैसले में सरकार से इस बात की सिफ़ारिश भी की है कि अगर कुछ समय तक, जिसकी तादाद कई वर्षों से कम न हो, जेल में इसका आचरण अच्छा रहे, तो, सरकार इसे मुक्त करने पर ज़रूर विचार करे।"

इसके बाद उक्त वक्ता, दौरा जज के बारे में कोई दस मिनट तक, धीरे-धीरे बातें करता रहा, जिन्हें, पास के लोगों ने सुना, दूर वालों ने नहीं सुना। उसकी बातें समाप्त होने पर उसके पार्श्ववर्तियों में से एक ने कहा—

"ओ हो! यह बात है! ठीक है, ठीक है। मैंने भी सुना है, कि दौरा जज मिस्टर यंग इसी पहली तारीख को अपनी बीबी के साथ स्वदेश जा रहे हैं। उक्त संवाद का रहस्य यह है!"

"कैसा रहस्य?" न सुनने वालों में से एक ने पूछा—"तुमने आपस ही में न जाने क्या कुल्हिया में गुड़ फोड़ लिया। अरे ज़रा हमें भी सुनाओ, दौरा जज के जाने में क्या रहस्य है?"

"नहीं भाई, नहीं भाई," उत्तर मिला—"किसी दूसरे वक़्त कान में सुन लेना। बड़े अफ़सरों की बातें हैं, और यह है जन-साधारण के घमने-फिरने की जगह कम्पनी बाग़। कहीं इधर-उधर से कोई सी० आई० डी० वाला सुनले, तो व्यर्थ, बैठे-बैठाये बला खोपड़ी पर सवार हो जाय। अच्छा जी, बुधआ का तो क़िस्सा खत्म हुआ, परन्तु उसकी बेटी का क्या हुआ? सुना था अघोड़ी मनुष्यानन्द ने, बुधुआ की बहादुरी से प्रसन्न होकर, उसे अपनी संरक्षता में ले लिया था।"

"अपनी संरक्षता में लिया था जरूर अघोड़ी ने; मगर, इस विश्वास पर लिया था, कि उनके कहने से, उनके हज़ारों काशी-वासी भक्तों में से कोई-न-कोई उस बच्ची को पाल लेगा। मगर, यह सच बात है कि उनके किसी भी भक्त ने उस लड़की का भार सँभालना स्वीकार नहीं किया। किसी ने भी नहीं।"

"फिर ?"

"सुना है, शहर के हिन्दुओं से निराश होकर उन्होंने उसे सिगरा के गिरजाघर के धर्माध्यक्ष पादरी जानसन की संरक्षता में रख दिया है।"

"ईसाई के यहाँ उस हिन्दू बालिका को अघोड़ी ने सौंप दिया ?" किसी चलते-पुरज़े हिन्दू ने कहा—"भाई यह तो ठीक नहीं हुआ।"

"क्या ठीक नहीं हुआ ? जब हिन्दू उसे अपने यहाँ आश्रय देने को तैयार ही नहीं हैं, तब बेचारे अघोड़ी के लिये दूसरा मार्ग ही कहाँ था ? ठीक नहीं हुआ, यह कहने वाले तो अनेक हिन्दू मिलेंगे मगर, उसे आश्रय देने वाला भी कोई है ?"

"अजी आश्रय देने वालों की कमी नहीं," एक-दूसरे महा-हिन्दू ने कहा—"बशर्ते कि किसी ऊँची जात की सन्तान हो। भला भंगी की बच्ची को कौन पालेगा ? अछूतों की सन्तान तो ऊँची जात वालों के लिए धोबी के कुत्ते की तरह हैं—न घर के और न घाट के।"

"मगर, तुमने सुना नहीं ? अघोड़ी ने यहाँ के हिन्दुओं के आगे भविष्यत वाणी की है कि मैं अपनी आँखों के आगे तुम्हें इन अछूतों के आगे 'ताथेई' नचाकर दम लूँगा। कर्मों में अक्सर महा नीच होते हुए भी तुम ढोंगी'ऊँचों'की सारी हेकड़ी निकाल दूँगा।"

"अभी उस युग की दिल्ली बहुत दूर है !" एक पण्डितराज ने मुस्करा कर उत्तर दिया।

"अरे बाबा! अघोड़ी-जैसे महापुरुषों के लिए किसी भी युग की दिल्ली या बम्बई दूर नहीं। वह सिद्ध हैं--सिद्ध!"

: २१ :

बारह बरस बाद

अब हमें बुधुआ की सज़ा होने के बारह बरस बाद से अपनी कहानी शुरू करनी है। इस पूरे एक युग के बीच में घटी हुई आवश्यक घटनाएँ, आवश्यकतानुसार, हम बता देंगे।

उस दिन से प्रातः ६॥ बजे इलाहाबाद से छोटी लाइन की जो गाड़ी बनारस कैंट स्टेशन पर आयी, उससे एक यात्री उतरा जो देखने में आबनूस की तरह काला था। उसके तन पर कोई दो-ढाई गज़ की एक मोटी और सुफेद लुंगी थी और वैसा ही एक दुपट्टा। उसकी मूँछ और दाढ़ी और सर के बाल धुएँ से सुफ़ेद थे। उसकी आँखें ज्योति-हीन-सी और दीन-सी दिखाई पड़ती थीं। उसका मुख अधिक आयु के पद चिन्हों—विविध रेखाओं और दुःख की मुहरों—झुर्रियों—से भरा था। उसकी कमर कुछ झुक-सी गयी थी।

गाड़ी से उतरते ही, अपने हाथ के डंडे के बल खड़े होकर, उसने एक बार स्टेशन की इमारतों, प्लेटफ़ार्म पर के आने-जाने वालों और रेल के डब्बों को बड़े ग़ौर से देखा। इसी समय किसी पंडे के दलाल ने आकर उससे सवाल किया—

"किसे ढूँढ़ रहे हो बुढ़ऊ? तीरथ करने आये हो क्या? साथ में औरत-बच्चे भी हैं? कौन है तुम्हारा पंडा?"

पंडे के दूत की ओर तीव्र दृष्टि से देखकर बुड्ढे ने कहा—

"हटो! मुझे तुम्हारी ज़रूरत नहीं।" मगर, फिर न जाने क्या सोच कर उस गमनोद्यत पंडा-चर को उसने रोका—"सुनो, एक बात बता सकते हो?"

"मेरी तो तुम्हें जरूरत ही नहीं थी," व्यंग से पंडे के दूत ने कहा—"अपने को बड़ा सयाना लगाता है बुड्ढे ?"

बुड्ढा ज़रा नम्र पड़ा—"नहीं भैया, मैंने यह ग़लत नहीं कहा था कि मुझे तुम्हारी ज़रूरत नहीं है। मैं भी यहीं का बाशिन्दा हूँ। मगर, आज बारह बरस बाद इस शहर का मुँह देखने का मौक़ा मिला है। मुझे एक बात जाननी है। तुम कीनाराम बाबा का अखाड़ा तो जानते होगे ?"

"हाँ जानता हूँ, मैं काशी की राई-रत्ती से वाकिफ़कारी रखता हूँ।"

"अच्छा भैया, उस अखाड़े में आजकल अघोड़ी बाबा हैं या नहीं ? तुम ने उनका नाम तो सुना होगा ? बड़े भारी देवता हैं वह।"

"कौन अघोड़ी ?" पंडे के दूत ने इसे व्यर्थ की बात समझ कर कहा—"कीनाराम के अखाड़े में एक-दो अघोड़ी हों, तो बताया भी जाय। वहाँ तो बावनगंडे हरामखोर, अघोड़ी और कनफट्टों का स्वाँग बनाये, पड़े ही रहते हैं।"

उस कलूटे और नाटे बुड्ढे को पण्डे के नौकर की बात अच्छी नहीं लगी। उसने कहा—

"अच्छा भैया जाओ ! तुम उन्हें नहीं जानते। इसी से ऐसी बातें कर रहे हो।"

धीरे-धीरे बुड्ढा प्लेटफ़ार्म से उस ओर बढ़ा जिधर टिकट इकट्ठे किये जा रहे थे।

स्टेशन के अहाते के बाहर आकर वह एक बार फिर चारों ओर आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगा। उसने ज़रा ज़ोर से कहा—"क्या मामला है ? अघोड़ी बाबा ने तो मुझ से वादा किया था कि वह स्टेशन ही पर मिलेंगे।"

इसी समय उसके पीछे-से आवाज़ आयी—

"बुधुआ—बुद्धू—बुधराम !"

बुड्ढे ने चौंक कर पीछे देखा। सचमुच वह अघोड़ी बाबा ही थे। कोपीन धारण किये और हाथ में खप्पर तथा चिमटा लिये वह उस बुड्ढे की ओर मुस्कराते हुए बढ़े आ रहे थे।

"अरे बुधुआ—अरे बुधराम !" आँखों में आँसू भरे हुए अपने चरणों पर बेतहाशा गिरते हुए बुधुआ भंगी को उठाते और छाती से लगाते हुए अघोड़ी ने पूछा—"तू तो उम्र में मुझसे कम होते हुए भी इस वक़्त मेरा बाप मालूम पड़ता है। तेरे बाल कैसे सफ़ेद हो गये ? तेरा शरीर कैसा जुलजुल हो गया ? मज़े में तो रहा न ?"

"अरे बाबा ! अरे स्वामी जी !!" ज़मीन पर बैठ कर अपने हाथों से अघोड़ी के चरण सहलाते हुए बुधुआ ने कहा—"जेल-खाना नरक भोगने की जगह है कि मज़े में रहने की। अट्ठारह बरस का जवान अगर सालभर जेल में रह जाये तो वह छूटने के वक़्त चालीस बरस का अधेड़ मालूम पड़ेगा। दुनिया में जेल ही नरक है स्वामी जी !"

"अच्छा बुद्धू !" उसके सिर पर प्रेम से हाथ फेरते हुए अघोड़ी ने पूछा—"तू अभी ही कैसे छूट गया ? सरकार ने ख़ुश होकर छोड़ दिया क्या ?"

"नहीं स्वामी ! मेरे छूटने की बड़ी लम्बी कहानी है। उसे फिर कभी सुनाऊँगा। अभी तो रधिया को देखना चाहता हूँ। चार बरस पहले आपने मुझसे नैनी जेल में भेंट कर कहा था, कि वह बड़ी होनहार छोकरी है। उसी वक़्त से मैं उसे देखने के लिये तड़प रहा हूँ। कहाँ है वह महाराज ? कितनी दूर है पादरी साहब का बँगला ? वह उसे मुझे लौटा देंगे न ? न लौटावेंगे, तो, मैं तो तबाह हो जाऊँगा। मेरी बुढ़ौती बिगड़ जायेगी।"

"लौटाएँगे क्यों नहीं, मगर उसको खिलाने-पिलाने के लिये

भी कुछ रखा है ? अब वह मामूली रधिया नहीं है। साहब के यहाँ पाली-पोसी गयी है। पूरी मेम साहब की छोकरी मालूम पड़ती है।"

"तब," बुधुआ ने कहा—"मेम की छोकरी को खिलानेभर को मुझ ग़रीब भंगी के पास पैसे कहाँ—मगर हाँ, अगर वह 'मेरी' रधिया की तरह रहेगी, तो, आपके चरणों की दया से, बहुत है। उस बेनिया बाग़वाले भंगी-टोले के एक कोने में हज़ार रुपये गाड़ कर छोड़ गया हूँ। वह सब मेरी बुढ़ौती और रधिया ही के लिये तो है।"

"अच्छी बात है।" अघोड़ी ने कहा—"आ, तुझे तेरी रधिया से मिला दूँ। चल, चलें। ज़्यादा दूर नहीं है यहां से पादरी जानसन का बँगला। मगर देख पहले तू ही रधिया के पास जाना। देखें वह तुझे कुछ पहचानती भी है।"

"भला वह बेचोरी क्या पहचानेगी" बुधुआ ने उत्तर दिया—"पहले मैं ही तो उसे पहचान लूँ। वह तो—उफ़! वह भी कैसा ज़माना गुज़र गया! मानो कोई भयानक सपना देखकर उठा हूँ! उस वक्त नन्ही-सी बच्ची थी। वह मुझे क्या पहचानेगी?"

"अरे ऐसा मत समझना" सिगरा की ओर बढ़ता हुआ अघोड़ी बोला—"वह बड़ी तेज़ छोकरी है। न देखने पर भी जब से उसने होश सँभाले हैं, तभी से, वह बराबर तुझे याद किया करती है।"

अघोड़ी की बात सुनकर बुधुआ की आँखें छलछला आयीं। उसने एक लम्बी साँस खींचकर कहा—

"हाय मेरी अभागिनी रधिया!"

: २२ :

अरे, वाह !

"अरे, वाह !" ज़रा दूर ही से, उस लड़की को देखकर जो तितली की तरह तेज़ी से नाच-नाचकर पादरी जानसन के नज़र बाग़ के गमलों और क्यारियों के पौधों को पानी दे रही थी, बुधुआ ने आश्चर्य चकित भाव से मन-ही-मन सोचा—"क्या यही मेरी रधिया है ? अरे इसने तो मेमों-सा कपड़ा पहन रखा है ! बाल किस तरह से सवारे हैं ! भला इसे देखकर कोई यह कह सकता है, कि यह मेरी लड़की है ? अरे इसे तो मैं ही नहीं पहचान पा रहा हूँ। मगर, नहीं, है रधिया ही। वह—उसकी गर्दन के नीचे वह दाग़ है। लड़कपन में, उस पागल सुकली की असावधानी से, बेचारी जल गई थी। उसी जलने की वह निशानी है। अहा हा ! धन्य हो भगवान ! धन्य हो अघोड़ी बाबा ! तुमने मेरी इस रानी को बचा लिया। नहीं तो, इस बुढ़ौती में मैं इसे कहाँ ख़ोजता—किस हालत में पाता !"

बुधुआ की आँखें सजल हो आईं। वह एक पेड़ की जड़ से उठँगकर, पुलकित बदन, अपनी सुन्दरी लड़की रधिया को देखने लगा। उसका हृदय, उसका मन और उसके प्राण, सभी उसकी मन्द-ज्योति आंखों में एकत्र होकर जैसे उस लड़की को निहारने लगे ! "मगर, हे भगवान जी !" बुधुआ पुनः विचारने लगा—"इतने बरसों तक तो इसने पादरी साहब के साथ इस सफ़ाई, इस शौक़ीनी और इज्ज़त की जिन्दगी बसर की, अब क्या यह फिर भंगी होना पसन्द करेगी ? क्या यह मुझ कुरूप, बुड्ढे और अपाहिज को उसी भक्ति-भाव से देखेगी जिस भक्ति-भाव से दूसरे बच्चे अपने सगों को देखते हैं ? बचपन से लेकर आज तक तो इसने दूसरों को प्यार देने और दूसरों से प्यार लेने का अभ्यास

किया है, अब एकाएक यह मेरी भुजाओं में कैसे आयेगी ? हे भगवान ! हे अघोड़ी बाबा ! मेरा दिल बैठा क्यों जा रहा है ! मेरा मन, ऐसे आनन्द के अवसर पर, मरा-सा क्यों जा रहा है।"

बुधुआ जिस पेड़ के सहारे खड़ा होकर विचार कर रहा था वह पादरी जानसन के कम्पाउण्ड का सुन्दर अशोक वृक्ष था। बागीचे में पानी देते-देते एकाएक रधिया की बड़ी-बड़ी चंचल आँखें उस बुड्ढे पर पड़ीं। बुधुआ ने भी उसे अपनी ओर ताकते देखा—अभागा मारे आनन्द और प्रेम के काँप उठा ! उस लड़की के मन में भी, इस बुड्ढे को देखकर, न जाने क्या-क्या विचार आये। वह पुष्प-पौधों को सींचने वाले हज़ारे को अपने हाथ में लिये हुई बुधुआ की ओर बढ़ी। बुधुआ ने उस ओर देखा। वह भी सतर्क होकर खड़ा होगया।

"कौन है तुम, बुड्ढा !" ईसाइयों के बीच में पली रधिया ने प्रश्न किया।

बुधुआ ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। वह अपनी आँखें पोंछ-पोंछ कर रधिया को निहारने लगा। रह-रह कर उसका जी करता था कि उसे गोद में उठा ले, कन्धे पर बैठा ले और पागलों की तरह उस कम्पाउण्ड के बाहर दौड़ पड़े। मगर, उसकी बुद्धि इस बात को जानती थी कि ऐसा करने से व्यर्थ ही, एक नाटक हो जायगा !

"बोलता काहे नहीं ?" रधिया ने आँखें तान और मुँह बिगाड़ कर प्रश्न किया—"तुम क्या माँगता है ?"

"हम तुमको माँगता है बेटी !" ग़रीब की तरह दाँत निकाल कर प्रेम से बुधुआ ने कहा।

"हमको ?" रधिया की दुष्ट आंखें चमक उठीं—"हमको—मुझको माँगता है ? नाः नाः तुम्हारे साथ मैं नहीं जायगा। अभी मेरा बाबा मुझको माँगने आयेगा। वह नैनी जेल में है।"

"नैनी जेल में है तुम्हारा बाबा !" बुधुआ ज़रा बनने और अपनी रधिया की बातें सुनने का सुख लेने लगा—"क्यों जेल में है बेटी ! क्या तुम्हारा बाबा डाका डालता था ? या चोर था ?—नाः नाः आँखें न तानो ! मुझे क्या मालूम कि तुम्हारा बाबा कौन था ? इसीसे तो पूछता हूँ—वह जेल में क्यों भेजा गया है ?"

"मैं नहीं जानती" रधिया ने ज़रा गम्भीर होकर कहा—"मैं नहीं जानती कि वह काहे को जेल में गया है, मगर हमारा अघोड़ी बाबा बोलता था, वह बहादुरी के लिये जेल गया है।"

"तो जाने दो अपने क़ैदी बाबा को," बुधुआ ने कहा—"चलो मेरे साथ। मैं भी तुम्हें अपनी बेटी की तरह रखूँगा। रख दो हज़ारे को ! चलो चलें।"

बुधुआ ने रधिया का कोमल, सुडौल और सुन्दर दाहिनी कलाई अपने रूखे पंजे से पकड़ कर खींची—

"चलो मेरे घर !"

"ओह ! नो-नो !! नहीं जायगा ! छोड़ दे मुझे। यू बीस्ट !!"

शायद रधिया ज़ोर से चिल्ला पड़ी। उसकी आवाज़, अपने स्टडी-रूम में बैठे, वृद्ध पादरी जानसन तक पहुँची। वह, मुँह में चुरूट लगाए, बँगले के बाहर घबराये-से निकल आये और रधिया की ओर देखकर उधर ही लपके।

"क्या मामला है ? तुम कौन है ? लड़की को काहे छेड़ता है ?" जानसन ने बुधुआ से पूछा।

"इसलिये छेड़ता है," एक ओर से आवाज़ आयी—"कि उसकी चीज़ उसे मिल जाय। पादरी जानसन, तुम इस बुड्ढे को नहीं पहचानते। यही इस लड़की का बाप बुधुआ भंगी है।"

दूसरे क्षण अघोड़ी उन सबके सामने खड़ा होकर मुस्करा रहा था। रधिया की आँखें नीचे की ओर झुक गई थीं।

अब बुधुआ ने झपटकर उसे छाती से लगा लिया। वह प्रेम

कातर होकर आनन्दाश्रु बहाने लगा।

मगर, रधिया सन्न थी! अपने बहादुर और क़ैदी बाबा को पाने की प्रसन्नता उसके होठों या कपोलों या भवों या आँखों पर नहीं थी!

शायद बुधुआ ने भी इस बात का अनुभव किया!

: २३ :

पादरी की राय

पादरी जानसन की, सिकुड़े चमड़े से आच्छादित, बड़ी-बड़ी आँखें उस समय सड़क के उस छोर की ओर देख रही थीं जहाँ पर कोई एक किराये की बग्घी चली जा रही थी।

"बस करिये जानसन महोदय," उन्हीं की बग़ल में खड़े और उनके मुख पर के भावों का ध्यान से अध्ययन करते हुए अघोढ़ी ने कहा—"अब आपकी मिस राधा अपने बाप के साथ हमारी आपकी मामूली आँखों से ओझल हो गयीं।"

"लेकिन," रूमाल से आँखें पोंछते हुए पादरी जानसन ने कहा—"विचित्र लड़की है मिस राधा। इधर एक ज़माने से उसको साथ रख कर, अब, मैं तो उसके बाप से भी बढ़कर हो गया हूँ। मेरा जी, अगर सच पूछिये, तो, यह नहीं चाहता था कि मैं राधा को उसके बाप के साथ जाने दूँ।"

"मगर," अघोड़ी ने मुस्कराते हुए बाधा दी—"आपने उसे जाने कहाँ दिया है। अभी-अभी आप ही ने तो उन बाप-बेटी दोनों ही को अपने यहाँ नौकर रख लिया है? सचमुच पादरी जानसन महोदय, आपने बुधुआ के साथ बड़ा भला सलूक किया है। अगर आपने उसे अपने यहाँ नौकर न रख लिया होता, तो, यह बनारस की पाजी पुलीस उसे तंग कर मारती। ज़्यादातर

पुलीस ही इन जाहिल-जपाट अछूतों और अपढ़ ग़रीबों को पाप की ओर झुकाती है।"

"मैं सब जनता हूँ, मैं सब जानता हूँ," पादरी ने उत्तर दिया-"मैं तो एक तरह से इन्हीं के बीच में रहता ही हूँ। तीस बरस से मेरा सम्बन्ध इन अछूतों और—आप हिन्दुओं के शब्दों में—पतितों और नीचों से है। मैंने भारत के प्रायः प्रत्येक प्रदेश की अछूत जातियों में काम किया है। उनतक प्रभु मसीह का सन्देशा पहुँचाने की कोशिश की है। मैं खूब जानता हूँ, इन अभागों की दुर्दशाओं को। पुलीस इनसे मिलकर चोरी कराती है, हिस्सा लेती है और फिर, इन बेचारों को जेल में भी धाँध देती है। पुलीस-विभाग के नीच-तबीयत वाले अनेक नौकर, प्रत्येक सूबे में, इन ग़रीबों की बहू-बेटियों को डरा-धमका कर नष्ट भी करते हैं और उनके पति और प्रियजनों को हज़ार तरह से तंग भी करते हैं। इसी लिये मैंने बुधुआ और उसकी लड़की को अपने यहाँ नौकर रख लिया है। मैं जानता हूँ, राधा सुन्दर है, आकर्षक है। यदि वह अपने अपढ़ और कमज़ोर और ग़रीब और समाज में बिलकुल नगण्य बाप के साथ, केवल उसी के सहारे रहेगी, तो बच न सकेगी। धीरे-धीरे बदमाश उसे बालिका से वेश्या और वेश्या से राक्षसी बना देंगे। इसी लिये मैंने बुधुआ और उसको अपने आश्रय में रख लिया है। राधा एक तरह से मेरी पुत्री ही है।"

"एक बात और है जानसन महोदय," अघोड़ी ने कहा—"यदि आपने ज़रा भी सतर्क दृष्टि से रधिया के मुख पर के भावों को देखा होगा, तो, वह आपको अपने पिता से अधिक ही मानती है, कम नहीं। अभी परसों की बात है, महीने भर तक घनघोर परिश्रम कर जब आप और चार दूसरे भले आदमियों की सहायता से दुर्गाकुण्ड ने पास एक छोटा-सा कच्चा मकान या झोपड़ी तैयार कर वह रधिया के पास आया, तब, संयोग से मैं भी उसके

साथ था। उस समय बुधुआ के इस प्रस्ताव पर कि—अब अपने नये घर में कब चलेगी ? रधिया रो पड़ी थी। कहने लगी, मेरा मन नहीं करता कि मैं 'पापा' को छोड़ कर जाऊँ। वह मुझे बहुत प्यारे हैं।"

"ओह !" एक ठंडी साँस खींचकर पादरी ने कहा—"जाने दीजिये। प्रभु का प्रत्येक प्रबन्ध मनुष्य के प्रबन्ध से सुन्दर होता है। उसकी इच्छा पूरी हो ! मगर, एक बात मुझे आप और उस बुधुआ से और भी बता देनी चाहिये, और वह बात यह है कि, राधा विचित्र प्रकृति की बालिका है। यदि उसके स्वभाव का विशेष ख़याल रखे बिना ही उसको विश्व-पथ पर दौड़ा दिया जायगा, तो, धोका भी हो सकता है।"

"क्या विचित्रता है उसके स्वभाव में ?" औघड़ ने दरियाफ़्त किया।

"पहली बात यह है," पादरी ने कहा—"राधा बड़ी ही भावुक लड़की है। मैं तो उसे लड़कपन से जानता हूँ। उसके भावों को छेड़ कर कोई उसका रूप किसी भी रंग में रँग सकता है। वह परिश्रमी खब है और व्यवहार में सच्ची भी खूब; मगर, यदि उसे यह मालूम हो जाय कि उसके साथ व्यवहार करने वाले दूसरे सच्चे नहीं हैं, तो, वह भयानक भी खूब ही है। मुझे उसकी एक छोटी-सी कहानी सुनाने दीजिये। छः महीने पहले की बात है। मेरे एक ईसाई मित्र हैं। उनका छोकरा डेविड मेरे यहाँ अक्सर आया-जाया करता था। उसकी और राधा की खूब पटती। दोनों साथ-ही-साथ खेलते भी, नाचते भी, कूदते भी ! एक दिन की बात है, डेविड अपने साथ कहीं से एक टिन अंग्रेजी मिठाई ले आया और राधा से बोला कि आओ, खाया जाय। दोनों बैठकर खाने लगे। उसी समय, राधा के मुँह में एक मिठाई डालने की प्रार्थना कर, डेविड ने उसे कुछ छेड़ दिया ! बस, वह तो आग हो

उठी ! उसने दसों थप्पड़ उस युवक के मुँह पर जमाये ! बड़े जोर से चिल्ला पड़ी। रोने लगी। इसने मेरी बेइज्जती क्यों की? इसने धोके से मुझे अपमानित क्यों किया ?"

"उसके मिजाज की यह तेजी," औघड़ ने उत्तर दिया—"उसके बाप से उस को मिली है। बुधुआ भी परलेसिरे का भावुक है।"

"एक बात और है," पादरी ने कहा—"राधा की प्रवृत्ति आनन्दों की ओर अधिक है। बचपन ही से वह खाने और पहनने की अच्छी-अच्छी चीजों को प्रेम और लालच की नजर से देखती है। इस ओर भी बुधुआ को सावधान रहना होगा। अब अगर, एकाएक, वह राधा को भंगिनों की तरह गन्दी और मजदूरिनों-सी रखना चाहेगा, तो, अनर्थ हो सकता है।"

"नहीं, नहीं," अघोरी ने कहा—"ऐसा होगा ही नहीं। बुधुआ स्वयं भंगी-जीवन से दूर रहना चाहता है। इसके लिये उसने कुछ पैसे भी इकट्ठा कर रखे हैं। आपसे तो सब कहा ही है। फिर जब वह दो-के-दोनों ही आपके यहाँ नौकर हैं, तब, मेरे लिये कोई विशेष चिन्ता की बात नहीं। आपकी दयादृष्टि से सब अच्छा ही होगा।"

"मगर," पादरी ने उत्तर दिया—"मेरा क्या ठिकाना। पैंसठ की उम्र हो गयी। मैं तो अब न जाने कब आपकी इस पुण्य-भूमि काशी के एक कोने की मिट्टी में छिपा कर सुला दिया जाऊँ। खैर, देखा जायगा! हमारा स्वर्गस्थ पिता सब अच्छा ही करेगा।"

थोड़ा रुककर पादरी जानसन ने आँखों पर से अपना चश्मा उतार कर उसे पोंछा, फिर, जरा चौंक कर बोले—

"इस बार तो आप ३-४ बरसों बाद बनारस आये हैं। क्यों? इधर कहाँ रहना होता है ?"

"किसी विशेष स्थान पर नहीं, कभी जङ्गल में और कभी,

समाज के शब्दों में, जङ्गलियों में।"

"याने?"

"इधर, एक इच्छा विशेष से, मैंने सम्पूर्ण भारत की दूसरी परिक्रमा की है।"

"आपकी वह इच्छा विशेष क्या थी? क्या आप मुझे भी उसे जानने का सौभाग्य दान दे सकते हैं?"

"क्यों नहीं, क्यों नहीं। आपको तो, यदि आप न पूछते, तो भी मैं बतलाता। मैं चाहता हूँ कि इस देश के अछूतों में किसी तरह जीवन का मन्त्र फूँका जाय। मैं बहुत दिनों से इन ग़रीबों के लिये कुछ-न-कुछ करने को सोच रहा था और सोच रहा हूँ। इधर जब से बुधुआ को जेल हुई तब से तो मैं एक धुन से किसी ऐसे मार्ग की खोज में हूँ, जिस पर चलाकर, परमात्मा के इन अपमानित बच्चों को सुखी कर सकूँ।"

"कोई उपाय सोचा आपने?" पादरी जानसन ने गम्भीर भाव से पूछा—

"उपाय तो बहुत दिनों से सोचे बैठा हूँ; मगर, समय की इन्तज़ारी थी। अब मेरे ख़याल से वह समय आ रहा है कि अछूतों को उठाया जाय। पिछले दस-बारह बरसों में भारत की सामाजिक और राजनीतिक अवस्थाओं में जो क्रान्ति हुई है, उसे आप ख़ूब जानते हैं। अब यही वक़्त है इन अछूतों को सँभाल देने का। इस समय यदि समाज के थोड़े-से जिम्मेदार ऊँच इन्हें उठायें, तो, बस, सब ठीक हो जाय। ये ६ करोड़ भूले-भटके भाई अपने स्थान पर आ जायें।"

"आप क्या सोचते हैं, इस समय, उसी समाज में, आपको ऐसे लोग मिल जायँगे जो अछूतों की सहायता के लिये तत्पर हों, जिस समाज में, आज से बारह बरस पहले, एक भी ऐसा प्राणी नहीं था जो उस अभागे बुधुआ की रधिया को पाल लेता?"

"मेरी तो ऐसी ही धारणा है पादरी साहब," अघोड़ी ने कहा— "कि आज हमें समाज से, ग़रीबों, पीड़ितों और अछूतों के कुछ सच्चे सेवक मिल जायँगे। और अगर न मिलें, तो भी कोई हानि नहीं, मैं चेष्टा करूँगा कि ये अछूत स्वयं सँभलें, स्वयं अपने को मनुष्य घोषित करें, स्वयं भयानक आग लगायें और अपनी कमज़ोरियों को भस्म कर डालें। आप इस प्रस्ताव पर अविश्वास न करें। मेरा ख़याल है कि अगर कोई सच्चा सेवक हो, तो, केवल— इन मूर्ख और घृणित किन्तु भोले—अछूतों को लेकर ग़दर करा सकता है। हाँ, हाँ—मुस्कराइये नहीं,—ग़दर करा सकता है।"

"अगर ऐसा हो सके! अगर ऐसा हो सके!"

"अगर नहीं," अघोड़ी ने उत्तर दिया—"ऐसा हो सकता है—ऐसा हो सकता।"

: २४ :

झूले वाली !

"बुज़ुर्ग लोग ऊपर थे क्या? सच्चरित्रता पर तुम्हारे पिताजी कोई लेक्चर दे रहे थे क्या? हाँ न। यही बात तो तुम्हारे मुख पर अपना साइनबोर्ड लगाये बैठी है। तुम स्वयं कुछ बोलो या न बोलो। ठहरो, इधर आओ! ज़रा पान खा लिया जाय। ए, अपने ख़याल में अलमस्त बाबू घनश्याम जी! ज़रा इधर मुड़ो यार! कहाँ चढ़े जा रहे हो? पान न खाओगे? ज़रा शोभा बढ़ा लो—अरे किसी से आँखें चार करनी हैं।"

"उहँ! छिः!" घनश्याम'जी ने अन्यमनस्क भाव से, नाक को सिकोड़ा।

"देखो," तर्जनी अँगुली दिखा कर गुलाबचन्द ने कहा,— "अगर यहीं से 'उहँ-छीः' का राग अलापोगे, तो, मैं आगे न

बढ़ूँगा। कैसे बढ़ सकता हूँ? तुम अभी से सारा मजा किरकिरा किये देते हो। अजी भंगिन है तो क्या; उसमें सत्य कितना है। सुन्दरता कितनी है। उसके पास जितना रूप और तेज है, उतना, बहुतक ऊँच कुमारियों के पास भी नहीं। आखिर वह भी तो आदमी ही है?"

"मैं उहँ-छिः इसलिये कह रहा हूँ," घनश्याम जी ने कहा—"कि यह दौड़-धूप फिजूल ही होगी। रधिया अगर क्षण भर हाहा-हूहू लायक़ हो भी, तो भी उससे खेलवाड़ करना ठीक न होगा। मैंने कई बार कहा, दुनिया पड़ी है। फिर ऐसा काम करने से फ़ायदा, जिसमें मजा मामूली और सजा दुनियाभर की मिले। अभी आज तो मेरे बाबू जी ही लानत-मलामत करके रह गये हैं, मगर, बात के जरा भी आगे बढ़ते ही समाज-का-समाज हमारे विरुद्ध हो सकता है। इसी से, कहता हूँ, जाने दो—उहँ छिः!"

"नहीं जी," गुलाब ने उत्तर दिया—"तुम दबते हो—व्यर्थ ही बाबू जी और समाज और दुनिया के भय के राग अलापते हो। रधिया भंगिन के लिये चारों ओर मजनू की तरह बदनामी ली जाय, इसे तो मैं भी ना-पसन्द करता हूँ। मगर, इसकी जरूरत ही न पड़ेगी। वह भंगिन की दरिद्र छोकरी है, हमारे सोना-चाँदी और रूप-विन्यास को देखते ही हम पर लट्टू हो जायगी—तुम तो हंसी समझते हो मेरी बात को—हँसी नहीं, लट्टू हो जायगी। फिरहरी की तरह नाच उठेगी। और एक बार जहाँ पंछी पिंजड़े में आयी कि फंसी। और जब फंसी तब अपना राज है, अपना रंग है, जबतक चाहेंगे छाती के सामने पिंजड़ा टाँगे रहेंगे—नहीं तो, फुर से उड़ा देंगे। कोई देखेगा; कोई नहीं देखेगा। इस प्रसंग का अर्थ किसी को कुछ बताया जायगा, किसी को कुछ। बढ़े कहाँ जा रहे हो—पहले चलो पान खाओ!"

गुलाब ने घनश्याम का हाथ पकड़ कर उसे तमोली की दूकान

की ओर बढ़ाया। अभी वह दस ही पाँच क़दम बढ़े होंगे कि सामने से दोनों का परिचित और स्कूल-मित्र बरकतुल्ला आता दिखाई पड़ा। उसे देख कर एक बार दोनों चमक उठे। घनश्याम ने गुलाब से कहा—

"वह बरकत आ रहा है। पहले उसे भी साथ ले लो, तब तमोली की ओर बढ़ो! जरा उससे भी पूछ लूँ कि वह रधिया के बारे में कहाँ तक और क्या जानता है?"

"आह! नहीं, नहीं।" तेजी से गुलाबचन्द ने कहा—"मैंने जो यह तुमसे कहा था कि रधिया बरकत के यहाँ कमाने जाती है, वह बिल्कुल ग़लत बात थी। तुम्हारा मत जानने के लिये, तुम्हें रधिया की ओर आकर्षित करने के लिये या अपने मौजी मन की इस यात्रा में किसी-न-किसी तरह तुम्हें भी हम-सफ़र बनाने के लिये मैंने बरकत के घरवाला क़िस्सा गढ़ दिया था। मुँह फैलाकर तअज्जुब से मेरी ओर ताकते क्या हो? क्या यह मेरी नयी ख़ता है, नयी आदत है? उधर न देखो! वह बरकत अगर तुम्हें देख लेगा, तो, फ़िजूल ही दाल-भात का मूसलचन्द हो जायगा। इधर आओ; इधर!"

गुलाबचन्द जबरदस्ती घनश्याम जी को तमोली की दूकान की ओर घसीट ले चला। पटरी के सन्निकट पहुँच कर उसने कहा—"क्या इसे तुम मामूली विद्या समझते हो? जब चाहता हूँ—और जिसके सामने चाहता हूँ—ऐसे का वैसा और वैसे का ऐसा क़िस्सा गढ़ देता हूँ, और अपना उल्लू (घनश्याम की ओर इशारा कर) सीधा कर लेता हूँ।"

घनश्याम जी ने अपने हाथ के बेंत से गुलाब की पीठ पर हल्की थपकी देते और मुस्कराते हुए कहा—"तुम मार खाने लायक़ पाजी आदमी हो गुलाब! मुझी से झूठ भी बोलते हो और मुझी को उल्लू भी बनाते हो?"

घनश्याम के हाथ में चार बनारसी, रसीले, पान देते हुए गुलाबचन्द ने कहा—"इन्हें लो, ज़रा मुँह का जोबन चमकाओ—उहँ ! चूक गये न ! जनम बीता बनारस में और पान खाने की तमीज़ न हुई। बीड़ों को इस तरह दबा कर पकड़ते हो ! अब मेरी ओर क्या ताकते हो ? बेवकूफ़ों की तरह बनारस के पान खाने चलोगे, तो धोती खराब न होगी ? लगा दो ज़रा-सा चूना उस पर, नहीं तो, धोती खराब ही हुई समझो !"

बातों के झोंक में ज़रा कड़ी अँगुलियों से पान पकड़ने के कारण सचमुच घनश्याम जी की धोती कत्थे के दाग़ से लाल हो हो उठी ! बेचारा खिझला उठा, मगर, लाचारी थी। तमोली से चूना माँग कर पान के दाग़ों पर लगाया और फिर दो-के-दोनों दुर्गाकुण्ड की ओर बढ़े !

"देखो" गुलाब ने कहा—"अब रधिया का क़िस्सा तुम्हें बतलाता हूँ। वह हर किसी के यहाँ झाड़ू देनेवाली मामूली भंगिन नहीं। अरे इस बारे में तो कुछ कहना ही व्यर्थ है, तुम स्वयं देखते ही समझ जाओगे। वह यहाँ के सिगरा के चर्च के पुराने पादरी जानसन के यहाँ बारह बरस तक पली है। उसका बाप और वह आज भी उन्हीं के यहाँ नौकर हैं। इसकी मुझे और भी फ़िक्र है। अगर हम लोग रधिया पर हाथ न फेर सकेंगे, तो, कोई-न-कोई किरण्टा ही ले मरेगा। हिन्दू के घर की चीज़ म्लेच्छों के मसरफ़ में आयेगी।"

"बड़े हिन्दू बनने वाले," घनश्याम जी ने उत्तर दिया—"अजी क्या तुम उससे विवाह का प्रस्ताव करने जा रहे हो ? नहीं। तुम तो उसे बाज़ार में बिकनेवाली मामूली फूल-माला की तरह कुछ पैसों में खरीदना, गले लगाना, मलना और आखीर में सब की आँखों से बचाकर फेंक देना चाहते हो ! भला इस से उस 'हिन्दू के घर की चीज़' की क्या रक्षा होगी ? वह तो फिर

भी किरंटों और बरकतुल्लों के पैरों के नीचे पड़ने और दली-मली जाने के लिए बाज़ार के पतित-कोने ही में रहेगी। इसी से कहता हूँ, कम-से-कम तुम तो हिन्दू या ईसाई का नाम न लो। सीधे से कहो कि किसी ग़रीब की यौवन-सम्पत्ति, रूप-निधि, देखकर मुँह में पानी आ रहा है, हम उसे लूटने की कोशिश करने चल रहे हैं। लूटने की कोशिश करने चल रहे हैं यह सोचकर कि कहीं हम से पहले दुनिया का कोई दूसरा डाकू उसे न लूट ले जाय। आयँ! यही वक्तव्य ठीक है न? हाँ। सच बोलो। साफ़ बोलकर जो करो, मैं तुम्हारे साथ हूँ। तुम यदि पतित हो, तो, मैं 'पतितन को सरकाज' हूँ।"

"ख़ैर, ख़ैर, ख़ैर," गुलाब ने कहा-"ज़रा जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाइये। शाम होने को आ रही है। देर हो जायगी, तो वह मिलेगी भी तो अँधेरे की ओढ़नी ओढ़े। वैसी हालत में—ए, ए, बाबू साहब! इधर मुड़िये। नाले की ओर नहीं। हमें नगवा नहीं जाना है। हम चल रहे हैं दुर्गाकुण्ड से थोड़ा आगे। वह—वह किस रानी की कोठी है? अँह उसका नाम ही नहीं याद आता—बड़हर, भिनगा—अजी कुछ होगा, उसी की कोठी की उस ओर बुधुआ की झोपड़ी है।"

दुर्गाकुंड से, बुधुआ की झोपड़ी तक का, कोई पाँच मिनट का रास्ता दोनों दोस्तों ने चुपचाप और कुछ-कुछ धड़कते कलेजे से तय किया। दूर ही से झोपड़ी की पहली झाँकी देखते ही गुलाब ने प्रसन्न होकर घनश्याम से कहा—

"यह आ गये! वह देखो! यही है हमारी रधिया। बाप रे बाप! आज तो फाँसी देने का सामान जुटा रखा है। झोपड़ी के सामने वाले उस आम के पेड़ पर झूला डालकर झूल रही है। अर्रर्रर्र! देखते हो?-देखते हो? किस तरह सन्न से झूल गयी! अरे, अरे! उस कुत्ते को देखो! वह किस उत्साह से उसके झूले

के साथ दौड़ता और पीछे लौटता है ! बापरे बाप ! देखते हो इसे ? इसे कह सकता है कोई बुधुआ भंगी की लड़की ?"

अभी तक उक्त बातें गुलाबचन्द रधिया की ओर देखता हुआ बोल रहा था। घनश्याम जी पर रधिया का क्या प्रभाव पड़ा यह देखने के लिए जो उसने अपने दोस्त की ओर देखा, तो, फ़ौरन ही ताड़ गया कि इस भंगिन की बेटी के हुस्न का जादू तेज़-तेज़ काम कर रहा है। उस समय घनश्याम जी एकटक उस झूलेवाली को देख रहे थे। मानो दुनिया में उन्हें और उस झूले वाली को छोड़ कर और तीसरा कोई था ही नहीं।

: २५ :

"सफाई"

बुधुआ की दुर्गाकुंडवाली, झोपड़ी को हम चाहें तो एक छोटा-सा, तीन कोठरियों का, कच्चा मकान कह सकते हैं। तीनों कोठरियाँ भी छोटी-छोटी ही थीं। उनमें से एक कोठरी में रधिया ने रसोई का सामान सजा रखा था और शेष दो अगल-बग़ल की कोठरियों में, बाप-बेटी सोया करती थीं। झोपड़ी का अगला हिस्सा रधिया या, अब, मिस राधा के इच्छानुसार चूने से पुता हुआ था। उसकी पिछली ओर, बुधुआ की राय थी कि दीवार के एक सिरे से दूसरे सिरे तक काँटे बिछा दिये जाए या काँटे-दार पौधे लगा दिये जायँ जिससे—यद्यपि वे ग़रीब थे, फिर भी, चोर लोग व्यर्थ ही उन्हें सताने की मूर्खता न कर सकें। मगर, राधा ने अपने पिता का इस विषय में विरोध किया और पादरी जानसन ने भी—सलाह ली जाने पर—उसी की राय पसन्द की।

राधा की राय थी झोपड़ी के पीछे काँटे बिछाने से या कँटीले पौधे लगाने से, उस स्थान का सौन्दर्य नष्ट हो जायगा। झोपड़ी

की चारोंओर आम के कई पेड़ थे। राधा का कहना था कि जब आम फलेंगे और आस-पास के लड़के उन कच्चे-पक्के फलों के लालच से इधर आवेंगे, तब, काँटे उन्हें कष्ट देंगे। और, लड़कों के आम खाने में बाधा पड़े, यह बात लड़कपन से भरे राधा के हृदय को स्वीकार न थी।

"मगर, राधा," बुधुआ ने अपनी बेटी से इस आम और लड़कों की बात चलने पर कहा था—"ये आम के पेड़ और इनके फल तो तुम्हारे नहीं है।"

"क्यों ?" 'क्यों' का स्वर जरा लम्बाकर राधा ने पूछा—"क्या पापा ने इन्हें भी नहीं खरीदा है ?"

"खरीदा तो है," उत्तर मिला—"मगर पापा ने खरीदा है, मैंने या तुमने नहीं। हम तो पादरी साहब की मिहरबानी से उनकी खरीदी हुई इस जमीन पर केवल एक झोपड़ी बना कर रह रहे हैं।"

"मगर, पापा ने" राधा ने कहा—"इन पेड़ों की देखभाल तुम्हारे सिपुर्द कर रखी है। है न ? फिर, तुम्हीं लड़कों को एक-दो आम खा लेने दिया करना। बेचारे कितनी दूर से इन आमों के लिए झुण्ड-के-झुण्ड आयेंगे। क्या उनके—उन प्यारे बच्चों के, इस आम-प्रेम पर तुम प्रसन्न नहीं होगे ?"

"मैं तो प्रसन्न हो जाऊँगा, पर, अगर पादरी नाराज हों—तब ? वैसी हालत में तो वह हम से भी यहाँ से हटने को कह बैठेंगे।"

"टट, टट, टट !" तालू से जबान सटाकर आवाज करती हुई राधा ने कहा—"नो-नो ! पापा ऐसे नहीं है। मैं उन्हें खूब जानती हूँ। वह तो एक दिन मुझसे कह रहे थे कि राधा, तू किसी से अपना व्याह कर ले, तो मैं वह जमीन हमेशा के लिए तुझे दे दूँ। अरे, फ़ादर...।" अक्सर, ईसाईयों के बीच में रहने के कारण

राधा बीच-बीच में अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग भी स्वाभाविक ढंग से कर बैठती थी—"अरे फ़ादर! पापा की फ़िक्र न करो। एक-न-एक दिन इस ज़मीन को वह हमें ही देंगे। और चोरों की फ़िक्र भी न करो। मेरा जो वह 'स्पाई' है, उसके रहते-रहते रात को चोर और दिन को अपरिचित हमें तंग न कर सकेंगे।"

जिस समय राधा ने अपने बाप से 'स्पाई'—याने वह कुत्ता जिसे गुलाब ने राधा के झूले के साथ दौड़ते देखा था—की चर्चा की, उस वक़्त वह उनसे थोड़ी दूर बैठा दो-तीन मक्खियों से लड़ रहा था। मक्खियाँ रह-रह कर उसकी नाक या आँख पर बैठना चाहती थीं और वह गुर्रा-गुर्रा कर, अपने मुँह को झटाझट फैला और फटाफट बन्द कर, उन्हें पकड़ने और उनकी गुस्ताखी की सज़ा देने की कोशिश कर रहा था। राधा के मुँह से अपना नाम सुनते ही सन्न से झपट कर वह उन दोनों के सामने आकर खड़ा हो गया और लगा दुम हिलाने और कौं-कौं कर राधा की ओर ताकने। राधा अपनी भाव-भरी आँखों को नचाकर और सुन्दर मुख को मटकाकर कुत्ते को डाटा—

"तू यहाँ क्यों आया? गो—गो एण्ड सिट देयर—वहाँ जाकर बैठ!"

स्पाई चुपचाप अपने पूर्व-स्थान की ओर लौट चला। राधा ने अपने बाप से कहा—"फ़ादर, स्पाई सभ्यता नहीं जानता।"

"सभ्यता क्या बेटी?" बुधुआ ने आँखें साफ़ करते हुए राधा से पूछा।

कान के पास, अपने बालों में अँगुली डाल कर, धीरे-धीरे खुजलाती हुई राधा सोचने लगी कि वह अपने बाप को 'सभ्यता क्या है' यह किस तरह समझाये। मगर, अन्त में उसे अनुभव हुआ कि यह कार्य उसके लिये साधारण नहीं था।

"सभ्यता क्या है," उसने कहा—"यह तो मैं भी ठीक-ठीक

नहीं बतला सकती। पापा जब किसी आदमी के साथ अकेले में बातें करते होते और मैं या कोई दूसरा लड़का उसके पास पहुँच जाता, तो, वह हम पर नाराज़ होते। कहते, यह शिष्टाचार, एटिकेट, के विरुद्ध है। दो में तीसरे को, बिना बुलाये, नहीं शामिल होना चाहिये। पापा की वही बात आज इस स्पाई के बिना बुलाये ही आ जाने पर मुझे याद आ गयी। मगर, वह देखो! वह फिर हमारी ओर आ रहा है। नाम भी लेना मुश्किल है इस दानव का! ज़रा-सा आहट पाया और बस माथे पर सवार। "यू-यू!" राधा ने स्पाई को पुनः डाँटा—"डोण्ट, डोण्ट! मत आओ! वहाँ जाकर बैठो!"

बेचारा स्पाई एक बार पुनः हताश हो कर लौट गया, एक बार पुनः पाजी मक्खियों ने उसकी नाक पर धावा बोल दिया।

बुधुआ को इस नई झोपड़ी में आने के पूर्व ही राधा ने स्पाई का इतिहास सुना दिया था। वह कहानी भी विचित्र है। उसने कहा था, कि एक दिन सवेरे, वह, सिगरा के बँगले के बाहर घूमने के लिये जा रही थी। जाड़े का प्रभात था। जिस समय वह बाहर हुई उस वक़्त भी चारों ओर कुहरा छाया हुआ था। मगर, प्रभात और सूर्य, पूर्ण बल से, कुहरों के नाश में लगे थे। बँगले से कोई दो-तीन फ़र्लांग दूर जाने पर उसे किसी जानवर के बच्चे का 'कों-कों'-स्वर सुनाई पड़ा। वह रुकी। ध्यान से चारों-ओर देखने पर उसने वहाँ जो कुछ पाया उससे एकबार तो वह सहम-सी गयी। उसने देखा एक सुन्दर-सी कुतिया बुरी तरह से दो टुकड़ों में कटी सड़क की एक ओर पड़ी है। शायद किसी अमीर की मोटर गाड़ी उस बेचारी की पीठ पर से निकल गयी थी। अभागिन गर्भवती भी थी; क्योंकि, उसके शव के पास दो मरे हुए बच्चे पड़े थे, और एक बच्चा, जिसकी आँखें अभी तक बन्द ही थीं, उन्हीं मुर्दों के पास कों-कों कर रहा था!

वह तमाशा देखकर राधा आगे न बढ़ सकी। उस समय वह भी बच्ची ही थी। रही होगी कोई नौ-दस बरस की। उसने डरते-डरते उस जीते बच्चे को उठा लिया और उसको सर्दी से बचाने के विचार से, अपने कपड़ों में छिपाकर, पादरी पापा के यहाँ ले गयी। संयोग से पादरी के घर की कुतिया ने भी उक्त घटना के दो-तीन दिन पूर्व बच्चे दिये थे। पादरी की राय से वह अनाथ बच्चा भी उसी कुतिया के बच्चों में मिलाकर रख दिया गया और पादरी की उस भले मानस—यदि कुतिया के लिये दुनिया के भले आदमी 'भलेमानस' शब्द का प्रयोग करने दें—कुतिया ने उस बच्चे को भी पाल लिया।

इसके बाद, जब वह बच्चा बड़ा हुआ, तो, उसकी विचित्रता देखकर पादरी जानसन और उनके दूसरे मित्र दंग रह गये। वह पूरा सवा दो फ़ीट ऊँचा, चितकबरे रंग का झबरा कुत्ता था। होश सँभालते ही वह—न जाने क्यों—राधा को प्राणों से भी बढ़कर प्यार करने लगा। राधा उसे जो सिखाती, वह जल्द-से-जल्द उसे सीख लेता। उसके इशारों और कुछ शब्दों को तो वह आदमियों की तरह समझ लेता था। पादरी जानसन के बँगले और बगीचे में, कहीं भी, राधा छिप जाती तो निःसन्देह वह अनाथ कुत्ता उसे ढूँढ़ निकालता। उसके इन्हीं गुणों पर मुग्ध होकर बनारस का एक बंगाली सी० आई० डी० आफ़िसर, पादरी जानसन से, उस कुत्ते को किसी भी दाम पर ख़रीदने को तैयार था। मगर, राधा या उसके पापा ने उसे बेचा नहीं। उसके इन्हीं गुणों पर मुग्ध होकर पादरी जानसन ने उसका नाम 'स्पाई' रखा था।

राधा जब पादरी के बँगले को छोड़ अपने ग़रीब बाप की झोंपड़ी में आयी तब अपने साथ अपने प्यारे सहचर 'स्पाई' को भी लेती आयी थी!

: २६ :

चारों खाने चित्त !

"कहिये !" मुग्ध घनश्याम का कन्धा पकड़कर झकझोरते हुये गुलाब ने भाव-भरा सवाल किया—"देखते ही हुस्न की बीमार आँखें हो गयीं ?"

"अरे यार !" हक्के-बक्के से घनश्याम ने कहा।

"अरे यार...?" गुलाब ने इशारे से कहा—"देखो कहता था न कि आफ़त है, ग़ज़ब है, सितम है, क़हर है, क़यामत है !"

"तुमने तो मुझे," घनश्यामजी ने मस्त आँखों से गुलाब की ओर देखा—"इसे भंगिन बताकर बुरी तरह डरा दिया था। मगर, कहाँ है यह भंगिन ? ओह ! ऐसी साफ़ और सुन्दर भंगिनें अगर पैदा होने लगें, तो, सारा क़िस्सा ही खत्म हो जाय। यह तो ईसाइन मिस मालूम पड़ती है।"

"सुना है, पादरी जानसन इसको बहुत प्यार करते हैं। ये दोनों—रधिया और उसका बाप बुधुआ—नाम मात्र के पादरी के नौकर हैं। लड़की बाग़ के फूलों को सुबह-शाम सींच दिया करती है, और बाप, दिन भर बँगले के फाटक के सामने बैठा बीड़ी सुलगाया करता है।"

"देखो न मोज़ा भी है और—चाहे ताज़ा पालिश न हो लेकिन—पैर में जूता भी है। नीचे वह—उसे क्या कहते हो जी, साया ?—विलायती घाँघरा—पहने है, और ऊपर से 'बाडी' पहनकर—उफ़ ! उफ़ !! क्या आफ़त का केसरिया चादर ओढ़े है ! तिस पर ये हरे-भरे आम के पेड़, यह सन्ध्या ! वाह गुलाब, तुम ने आज मुझे बहिश्त का एक कोना दिखा दिया। मेरे भैया !" एक बार राधा की ओर देखकर घनश्याम जी गुलाब से

लिपट गये !

"कैसे बेवकूफ़ आदमी हो ?"—गुलाब ने उसे अपने हृदय से दूर करने की व्यर्थ चेष्टा करते हुए कहा—"अरे हटो यार ! वह देख रही है । वह देखो हँस पड़ी ! उफ़, या परमात्मा ! यह हँसी है या नशे का दरिया उँडेल देना है !"

घनश्याम जी ने भी राधा की यह मोहिनी हँसी देख ली जो इन दोनों को आलिंगित होते देख सहसा उसके मुग्धावस्था-सुलभ यौवन-चंचल कपोलों पर नाच उठी थी । नशा का दरिया उसकी ओर भी आकर्षक तरङ्गें लेता हुआ दिखाई पड़ने लगा । अब दो-के-दोनों एकटक आँखें गड़ा कर, उस झूले वाली को देखने लगे । वह भी इन्हें देखकर कुछ अधिक कला से झूलने लगी । उधर मुड़कर, इधर मुड़कर, सामने सन्न से—आ हा हा हा !—निकल जाकर, लट्टू की तरह नाच कर—जितनी तरहों से उस चुलबुल छोकरी को झूला झूलना आता था उसने इन दोनों सुफ़ेद-पोशों को—न जाने क्यों—प्रसन्नता से दिखाये । एक बार सामने-सामने 'पटेंग' लेती हुई, एकाएक बीच ही में रुक कर, उसने आश्चर्य-नाट्य करने की चेष्टा की । इससे उसे कुछ ज़रा-सा धक्का लगा । मगर, उसने उस साधारण चोट की अनुभूति को अपने मुख पर ऐसे मसखरे ढंग से अदा किया कि ये दो-के-दोनों "आँख-बाज़" हँस पड़े । इस बार की उनकी हँसी, मुस्कराहट नहीं, किलकारी थी इसका अनुभव उस स्पाई ने भी किया ।

अभी तक राधा का दोस्त स्पाई अपनी उस सुन्दरी सखी या स्वामिनी को प्रसन्न करने ही में मशगूल था । उसने एक बार सड़क के उस कोने पर दो सुफ़ैद कपड़ेवालों को देखा तो था, पर, निरुत्साही नेत्रों से । वह तो उस समय अपनी सखी को खेला रहा था । उसका सुफ़ैदपोशों से क्या वास्ता ! मगर, इसबार

जो उधर से 'किलकारी' सुनाई पड़ी तो स्पाई चौंका! क्या कोई और भी उनके इस खूबसूरत तमाशे में शामिल है? वह अपने सामने के दोनों पैरों को ज़मीन पर टेक कर, 'हिज़मास्टर्स वायस' की तस्वीर की तरह, कान खड़े कर, क्रोधपूर्ण कौतूहल से उनकी ओर देखने लगा।

"भुः ; भु !"

वह गुर्राया। मानो, कौन हो तुम हमारे बीच में पड़ने वाले? सावधान! मेरा ग़ुस्सा बड़ा ख़राब है!

"कुत्ता भी पूरा ज़बरदस्त है," गुलाब ने कहा–"ख़ूबसूरत तो है ही; मज़बूत भी मालूम पड़ता है।"

"मगर यार, बड़ा भयानक है। गुर्रा कैसा रहा है। वह देखो, वह हम लोगों से कुछ कह...।"

"गो! बाबू गो!!" राधा ने ज़रा ऊँचे स्वर से इन दोनों से कहा–"सामने खड़े होकर इधर देख ने से स्पाई बुरा मानता है।"

उन दोनों ने राधा की ओर इस तरह देखा मानो उनके कानों तक उसकी उपरोक्त बातें पहुँची ही नहीं और आपस में बातें करने लगे—

"कैसा साफ़ बोलती है!"

"कैसा मीठा बोलती है!"

"जी करता है यहीं से फादूँ और ठीक सामने ही कूद कर हैरान की तरह खड़ा हो जाऊँ।"

"अरे, ऐसा झड़पान देगा उसका कुत्ता कि आशिक़ी की नस ढीली हो जायगी?"

"वह कुत्ते को हम पर आक्रमण करने से रोकेगी। तुम अविश्वास न करो, मैं कहता हूँ। चिड़िया जाल के पास आकर 'फुदुक' रही है!"

"चलो कुछ बातें करें। हाँ, इसमें हर्ज क्या है। यह तो ईसाइयों की तरह रहती है। इनके यहाँ तो पर्दा नहीं है।"

"मगर, बातें करोगे क्या ?"

"यही कि हम उसके बाप से मिलना चाहते हैं।"

"क्यों मिलना चाहते हैं ?"

"अहँ ! पहले चलो भी। वहाँ जैसी जरूरत होगी वैसी बातें की जायेंगी। हम सयाने हैं। इस छोकरी से बातें करने में हिचकिचाहट कैसी। आओ !"

दोनों एकाएक, राधा और उसके झूले और कुत्ते की ओर बढ़े। यह राधा ने भी देखा।

"नो ! नो ! डोण्ट कम ! डोण्ट कम ! बाबू—स्पाई काटेगा !'

वह फिर सन्न से झूल गयी, मुस्कराने लगी, आँखें नचाकर ज़मीन आसमान को एक करने लगी। स्पाई ने भी उसके साथ सन्नसे एक चक्कर लगाया। इधर, ये दोनों बाबू भी आगे ही बढ़ते गये।

अब राधा ने तीव्र स्वर में, मगर लीला से, कहा—

"नहीं आओ इधर ! हमारा बाबा मना करता है।"

"हम कुछ पूछेगा।" इन दोनों ने कहा।

"नहीं—नो-नो !"

मगर, ये रुके नहीं, क्रम-क्रम से—मचलते हुए—आगे बढ़ते ही गये। इस बार मानो राधा ने अन्तिम सूचना दी—

"बस ! आगे बढ़ोगे तो मैं तुम दोनों के सिर पर झूल जाऊँगी। ख़बरदार ! डोण्ट कम ! गो—गो !"

मगर, इनके सिर पर तो हज़रत इश्क़ सवार थे। ये अब इस लायक़ नहीं रह गये थे कि रुकने की बात पर दिमाग़ लड़ाते। वे और आगे बढ़े और, और आगे बढ़े ! वह—राधा ने इशारे से कहा—रुक जाओ; मैं झूल जाऊँगी ! मैं तुमसे डरने वाली

नहीं। वह—इनका पुनः बढ़ना ! वह—आ हा हा हा हा ! भूल गयी !!

उस दुष्ट लड़की ने—आह ताज्जुब !—सन्नसे भूल कर, बिजली की तरह तेज़ी से, घनश्यामजी की छाती पर अपने स-बूट चरणों का एक ख़ासा धक्का दिया। वह चारों-ख़ाने-चित्त ज़मीन पर गिर पड़ा ! टोपी छटक गयी, काकुल बिगड़ गया, घड़ी जेब के बाहर की मिट्टी सूँघने लगी।

क्षण भर बाद, तीर की तेज़ी से, अपने पूर्व -स्थान पर लौट कर राधा ने देखा, उसका प्यारा स्वाई, उस दूसरे आशिक़ मिज़ाज भले मानस की ख़ातिर कर रहा था !

: २७ :

पहली पंचायत

रात के आठ साढ़े आठ बजे होंगे। कबीर चौरा के भंगी-टोले में जो छोटा-सा म्युनिसिपैलिटी का बनाया हुआ भंगियों के लिये मकान है, उसी के सामने, उस भंगी टोले के प्रायः सभी बूढ़े-जवान भंगी, उनकी स्त्रियाँ और बच्चे एकत्र थे। एक जगह गोलाकार बनाकर दस-बारह बूढ़े भंगी बैठे थे, उनके पास ही, और प्रायः उतने ही, जवान भंगी भी थे। औरतें इधर-उधर छितरायी हुई बैठी थीं। कोई-कोई अपने काले-कलूटे प्रेताकार बच्चे को लेकर, और कोई—चुड़ैल की बहिन-सी—अपनी सखी से, विचित्र भाव-भंगियों के साथ, बातें करती हुई।

"ओरी बहन," एक ने अपनी सखी से पूछा—"कौन है यह अघोड़ी ? जंगली की माँ रजिया कल कहती थी बहन, कि, अघोड़ी बड़ा भारी ओझा है। जिसका चाहता है, छू-मंतर में, उसी का भूत और चुड़ैल उतार देता है। उसकी सूरत देखते ही बड़े-बड़े

जिन और पाजी से-पाजी नट भाग खड़े होते हैं। नट की याद आते ही मेरे रोंगटे खड़े हो गये! रेउड़ी तलाव के इस बरगद के पेड़ वाले नट ने मेरे भाई को हबुवाते-हबुवाते मार ही डाला था!"

"यह, अघोड़ी बाबा, बहन," दूसरी ने अपने बिखरे और गन्दे बालों को ज़ोर से खुजलाते हुए उत्तर दिया—"मेरी अम्मा कहती थी, सच्चा जोगी है, साधु है। इसी ने बुद्धू चौधरी को खून करने पर भी फाँसी से बचा लिया था। वह मन्तर मारा कि साहब-सूबा और जज-कलेट्टर की अक्किल ही गुम हो गयी। अघोड़ी ही की कृपा से वह हमारी ही जाति की रधिया—तूने देखा नहीं—मेम बनी फिरती है। हमें पहचानती ही नहीं। न जाने क्या गिटपिट-गिटपिट काबुली बोली बोलती है।"

"चुपरे! चुपरे!" गोलाकार बैठे हुए बूढ़ों में से एक ने इन दोनों को डाटा—"ये ससुरिनें एक पंचायत अलग ही कर रही हैं।"

"हाँ भैया फेकू," एक जवान भंगी को एक बूढ़े ने सम्बोधित किया—"अघोड़ी और बुद्धू चौधरी की बात गौर करने लायक़ है। अघोड़ी ने कल, बेनिया वाले हमारे भाइयों को समझाते हुए कहा था कि, अगर तुम अछूत अपनी कमजोरियों को दूर कर एक हो जाओ, तो, तुम भी संसार के अच्छे-से-अच्छे लोगों में आदर पाने लायक़ हो सकते हो। तुम अछूत बने हो अपनी ला-पर्वाही से। नहाते तुम नहीं, अपने शरीर को धोते तुम नहीं, हमेशा गन्दगी से तुम लिपटे रहते हो—ऐसी हालत में रहनेवाला समाज का अछूत समझा ही जायेगा। फिर चाहे वह संसार के किसी भी भाग में क्यों न पैदा हुआ हो।"

"अरे दादा," एक युवक ने कहा—"मैं तो ख़ुद ही कल के बेनिया के 'जुटाव' में था। ओ हो हो हो! ऐसी-ऐसी ज्ञान की

बातें अघोड़ी बाबा ने हमें बतायीं कि बस-रे-बस ! उन्होंने समझाया कि हमें नशा की चीजों को काम में लाना बन्द कर देना चाहिये, आपस में गाली-गलौज और रोज-रोज की लत्तम-जुत्तम फौरन रोकना चाहिये, चोरी करना और अपनी ही बिरादरी और महल्ले की परायी बहू-बेटियों पर बुरी नजर डालना बन्द कर देना चाहिये। बच्चों को, हजार उपाय करके भी, कोई हुनर—चाहे वह बेना या सूप या पंखा बनाना ही क्यों न हो—सिखाना चाहिये। बन पड़े, तो उन्हें पढ़ाना भी चाहिये; क्योंकि, अघोड़ी के शब्दों में, जनम-भर शहर के लोगों का पाखाना फेंक-कर गुजर करना तो नरक भोगने के बराबर है।"

"नरक तो है ही भैया," एक बूढ़े ने खाँसते हुए कहा—"सारी जिन्दगी, केवल लोगों का मैला फेंककर गुजर करना पूरा नरक-दण्ड है। सुबह-शाम जब, पैसे वाले अपने को 'ऊँच' लगाने वाले लोग, ईश्वरचिन्तन और हवा-खोरी की तैयारी करते हैं उस वक्त हम क्या करते हैं ? या तो कूड़ा-गाड़ी की गन्दी हवा से अपनी साँसों में जहर भरते हैं या पाखानों में झाड़ू देकर, अपने माथे पर मैले का मुकुट धारण कर, पतितों के सरदार की तस्वीर बनते हैं। और, इतना करने पर भी हम प्लेग या हैजा, खाँसी या बुखार से मरते रहें, कोई हमें पूछने वाला नहीं। कोई हमारी दवा-दारू की फिक्र करने वाला नहीं। यह नरक-भोग नहीं तो और क्या है ?"

"तब दादा !" एक ने दरियाफ्त किया—"इस नरक से बचने के लिये अघोड़ी ने कुछ उपाय भी बताया है ?"

"अभी वह और बुद्धू चौधरी और इसी बनारस शहर के कुछ 'ऊँचे' भलेमानस हमारी मुक्ति का उपाय सोच रहे हैं। जल्द ही हमें सब बातें बतायी जायँगी। मगर, अघोड़ी का कहना है कि केवल उपाय बताया जायगा, रास्ता दिखाया जायगा—

आगे बढ़ने और ऊँचे उठने का काम हमीं को करना होगा। और, यह काम तब तक हो नहीं सकता, जब तक हम इस ताड़ी और दारू, गांजा और अफीम को सलाम न कर दें। अपने ऊपर भारी मुसीबत समझकर, अपने भाइयों की खता को माफ कर, आपस में मिल न जायँ।"

"अघोड़ी बाबा तो चोरी भी छोड़ने को कहते हैं न ?" एक युवक ने दरियाफ़्त किया—"मगर, उससे पूछिये—उस फेकुआ से—वह तो आज ही रात को सेंध मारने जायगा।"

"चुप रे साले !" लाल-लाल आँखें दिखाकर फेकुआ ने डाटा—"भेद की बात इस तरह पंचायत में कहेगा, तो मारे डण्डों के सिर की गुद्दी गरम कर दूँगा। अघोड़ी होगा अपने घर का अघोड़ी; क्या उसके लिये हम अपना रोजगार छोड़ देंगे ?"

"ठीक फेकू भाई !" उसके एक साथी ने उसकी मदद की "सच कहते हो। यह चोरी तो हमारे धरम में लिखी है—करम में लिखी है। ऐसा कौन डोम होगा जिसके यहाँ 'सातो युग' और 'सात पुस्त' से यह काम न होता हो। भाई, मैंने तो आठ ही बरस की उमर से इस विद्या में अपने गुरू से कान फुकवाया है। इसे छोड़ दूँ तो भला जहुरनी की माई का सिंगार कैसे होगा ? उसके दाँतों की मिस्सी, माँग का सेंधुर, उसकी वह काली और पीली मारकीन की धोतियाँ और गुलाबी छींट और गहने—सब चोरी ही से तो आये हैं। सभी डोम चोरी करते हैं—चोरी न करेंगे तो भला मनुसपलटी के इस तीन 'रुपुल्ली' से काम चलेगा ?"

"मगर," किसी बूढ़े ने कहा—"अघोड़ी बाबा का कहना है कि पाप की कमाई में बरकत नहीं होती। उन्होंने बताया कि सैकड़ों डोमों और अछूत-जाति-के दूसरे लोगों ने उनसे अपनी-

अपनी चोरियों की और बड़ी-से-बड़ी चोरियों की कहानियाँ सुनाई हैं। लेकिन देखो तो, इतने रुपये चोरी से पाने पर भी उनमें से कोई सुखी नहीं था। कोई पैसे से बे-फ़िक्र नहीं था। सभी रोगी या दुखी या बन्दी थे ! फिर ? ऐसी चोरी से फ़ायदा जिससे न लोक बने और न परलोक ? इसलिये, अघोड़ी बाबा का कहना है कि -- हमें अपने पसीने की कमाई खानी चाहिये। पसीने की कमाई खाने वाले पर परमेश्वर खुश होते हैं। गृहस्थी में बरकत और परिवार में सुलह होती है। पसीने की कमाई खाने से, बे-कसूरों की आह, हमारे पीछे अपमान और तिरस्कार, रोग और बला बनकर नहीं लग सकेगी।"

इसी समय कबीर चौरा वाले म्युनिसिपल पाखाने के पास से आवाज़ आयी—

"अरे फेकुआ !"

"आया ! अरे आया !" आवाज़ लगाकर फेकुआ उठा और पुकारने वाले की ओर बढ़ा।

"किस मुहल्ले में 'काम' होगा बेटा !" मानो मुँह में पानी भर कर, एक बुड्ढे डोम ने पास के किसी जवान से पूछा।

"अरे मैं क्या जानूँ, भला अपना भेद कोई बताता है ? इस लौंडे ने जो अभी फेकुआ के 'काम' की बात सबके सामने कह दी है इससे यह बहुत नाराज़ होगा। इस नरेसवा को बिना दो-चार धौल जमाये छोड़ेगा नहीं।"

"ठेंग धौल जमायेगा साला फेकुआ !" दूर से नरेसवा नामक युवक भंगी ने उत्तर दिया—"मैं तो अघोड़ी बाबा का चेला हूँ। मैंने ताड़ी छोड़ दी है, दारू छोड़ दी है, कल परसों तक दो-चार चिलम और—'जिसने न पी गाँजे की कली, उस लड़के से लड़की भली' के—मज़े से फूक कर इसे भी छोड़ दूँगा। मैंने तो अघोड़ी बाबा से प्रतिज्ञा की है कि मैं, न खुद चोरी करूँगा

और न, भरसक, किसी को करने दूँगा। फेकुआ साला अभी पंचायत छोड़कर मुकबिर से बातें करने गया है। राम दोहाई! मैं सब जानता हूँ। सुबह होते ही अघोड़ी बाबा को खबर करूँगा।"

"मुकबिर क्या नरेसवा भैया?" किसी दस-बारह बरस के अज्ञान भंगी ने नरेसवा से पूछा—"मुकबिर किसे कहते हैं रे?"

"अरे घर के भेदिया को—विभीषण को! हम लोगों को पहले पैसों वाले या मालदारों के नजदीक रहने वाले माल का पता देते हैं। उन्हीं भेदियों या मुकबिरों के कहे मुताबिक हम सेंध लगाते हैं आमदनी में इन मुकबिरों का भी हिस्सा होता है।"

"अरे बेटा!" एक बुड्ढे ने कहा—"अब तो कलजुग है न। लोप हो गया लोप इस चोरी करने की विद्या का। नहीं तो, हमारा दादा झिनकू कहा करता था कि उसका ससुर कलपू डोम, दो कोड़ी गाँवों के चोरों का सरदार था। बड़े-बड़े ज़मीन्दार और दरोगा कलपू सरदार से डरा करते थे। क्योंकि, उसकी चोर-पलटन में तीन सौ और दो-बीस और पाँच चोर थे। कलपू चौधरी खुद चोरी नहीं करता था। वह तो दिन में अपनी कच्ची बखरी में बैठा ताड़ी और रोहू मछली उड़ाया करता और रात में मसान में मुर्दों की खोपड़ी जगाया करता था। अच्छत और सरसों और रोली और काले तिल से वह खोपड़ियाँ चेताता और फिर इन्हीं चीजों की एक-एक चुटकी, चोरी करने जाने के पहले, अपने सागिर्दों को देता। 'घर में सेंध लगाकर घुस जाने पर'—वह सागिर्दों को बताता—'इन चावलों और सरसों और तिलों को अन्धकार में फेंक देना। ये उसमें जुगनू की तरह चमक-चमक कर नाचने लगेंगे और जहाँ माल होगा वहीं जाकर स्थिर होंगे? बस चुपचाप रुपये कमाकर चले आना। ये, मन्त्रबल से, पुनः मेरे पास चले आवेंगे।' ऐसी थी यह चोरी की विद्या किसी

ज़माने में। जब चोरी के लिये मसाल जगाने वाले वीर चोर थे, तब, इस कला में बरकत होती थी, इज्ज़त मिलती थी। अब तो चोर नहीं रह गये, सब साले छिछोर हैं छिछोर!"

क़िस्से को समाप्त कर वह बूढ़ा डोम एक के बाद दूसरी और तीसरी और चौथी और पाँचवी डकार लेने लगा। उसके डकार लेने के ढंग से ऐसा मालूम होता था मानों उक्त क़िस्से को सुनाकर उसने कोई अनमोल बात अपने साथियों को बतलायी है। उसने मन-ही-मन अपनी स्मरण-शक्ति को आदर्श और कहानी कहने के ढंग को अद्वितीय समझा।

: २८ :

चोट लगी क्या?

"स्पाई, स्पाई! नहीं, नहीं! इधर आओ!!"

राधा ने उस दूसरे भले आदमी पर विपत्ति देख कुत्ते को डाटा और पुकारा। स्पाई ने खुद भी, बाबू गुलाबचन्द को आहत नहीं किया। केवल पछाड़कर छोड़ दिया। मगर, बाबू साहब के तो स्पाई के झपटते ही होश हिरन हो गये। छाती धक्-से बोल उठी, कलेजा मुँह में आ गया। क्षण भर में सारा शरीर पसीने-पसीने हो गया। स्पाई का वह भयंकर मुँह देखकर ही उन्हें निश्चय हो गया कि अब जान की खैर नहीं। वह धम्म से ज़मीन पर ढेर हो गये! ऐसी दम्मी साधी कि स्पाई भी एक बार चकरा कर दूर भाग गया!—आदमी है या मुर्दा??

दोनों आशिकों ने ज़रा सँभाला लेते ही पहले अपनी चारों-ओर नज़र दौड़ाया। किसी ने उनके इस पतन को देखा तो नहीं? मगर, अफ़सोस! फ़क़त किसी ही ने नहीं, कई आदमियों ने देखा! एक एक्कावान तो, पूरी सवारी रोककर, सामने खड़ा हो

गया और लोट-लोटकर हँसने लगा !

एक क्षण में दोनों उठकर खड़े हो गये। एक बार इधर हाथ मार कर कपड़ा झाड़ा, एक बार उधर। लपक कर टोपी और उसके आस-पास जो चीजें दिखाई पड़ीं उन्हें उठाकर यथा स्थान रखा; और फिर, बिना 'मोहनी' नायिका की ओर देखे ही, तीर की तरह, सड़क की ओर लपके। सड़क पर पहुँचने पर उन्होंने न उत्तर देखा और न दक्षिण, बस जिस ओर पैर बढ़े और रास्ता मिला, उधर ही वे बढ़ते और झपटते चले गये ! कुछ ही दूर जाने पर उन्हें मालूम हुआ कि वे दुर्गाकुण्ड की ओर नहीं, संकट मोचन की ओर चले जा रहे थे, जो, घर लौटने या चौक जाने की दृष्टि से, बिलकुल उल्टा रास्ता था।

पहले संकट मोचन से पहले पड़ने वाले—नाले वाले—पुल पर दोनों बैठ गये, और ज़रा सहूलियत से अपनी पोशाक के मुँह पर की मिट्टी पोंछने लगे।

"चोट लगी क्या ?" गुलाब ने घनश्याम से पूछा—"मैंने तो ऐसी दम्मी साधी कि वह कुत्ता पूरा गधा बनकर रह गया। हज़ार शिकारी हों बच्चू, पर मेरी चालाकी के आगे एक न चली। पर, तुम्हें शायद चोट लग गयी है। क्यों ? बोलते क्यों नहीं ?"

"चोट !" घनश्यामजी ने उत्तर दिया—"बाहर तो कुछ वैसी नहीं लगी है; मगर हाँ, भीतर पीड़ा का अनुभव होता है। तुमने देखा नहीं, उस खूबसूरत पाजी ने ठीक मेरी छाती पर, मेरे दिल पर, जूतों से मारा !"

"उफ़ ! अजीब माशूक़ है।"

"गज़ब है, गज़ब ! भंगी की लड़की की यह मजाल कि हमारी छाती पर जूते मारे !"

"मगर, सरकार !" गुलाब ने बनाने वाली चापलूसी की—

"मैंने पहले ही अर्ज़ किया था कि चाहे वह भंगी ही की लड़की क्यों न हो, मगर, पली है साहबों के बीच में—बल्कि, साहबों के गुरुओं या पुरोहितों के बीच में। वह भला हम काले हिन्दुस्तानियों को क्या समझेगी।"

गुलाब ने हज़ार समझाने की चेष्टा की लेकिन, घनश्यामजी का क्षोभ राधा पर से कम नहीं हुआ। वह रह-रह कर यही कहता कि—"इस भंगिन की बेटी ने मुझे जूतों से और साफ़ ललकार कर, मार दिया! इस आशिक़ी के फेर में आज नाक कट गयी मेरे ख़ानदान की! जी करता है इसका बदला लूँ—क्या ही अच्छा होता अगर वह छोकरी न होकर, भंगी का छोकरा हुई होती। जूतों से पिटवाता साले को! गुण्डों से नाक कटवा लेता, और तब, बतलाता कि नीच जात वालों को, ऊँचों से, सभ्यता पूर्वक और नम्र व्यवहार करना ही चाहिये।"

"मैं पूछता हूँ," गुलाब ने कहा—"अगर आशिक़ी में भी ऊँच-नीच का इतना ख़याल था, तो, तुम गये ही क्यों उस नीच जाति की छोकरी के नज़दीक? और, अगर गये, तो, अब रोओ मत। उसका जो कुछ परिणाम हुआ भोगो! यह तो 'प्रेम को पंथ है,' 'तरवार की धार पै धावनो है'। अभी जूते ही देखकर घबरा गये! चलो, लौटा जाय। घबराओ मत, अब मैं खुद भी दुर्गाकुण्ड की ओर से नहीं लौटूँगा। गोकि, अँधेरा गाढ़ा हुआ जा रहा है, फिर भी, हम लौटें उस नाले की तरफ़ से—ज़रा और आगे बढ़कर। अब, कम-से-कम आज तो, उस छोकरी से फिर आँखें मिलानी, मुझ जैसे मर्द के लिये, ग़ैर नामुमकिन है। हाँ, ज़रा घड़ी में देखो तो, कितने बजे हैं?"

मगर, यह क्या! घनश्यामजी की जेब में उनकी घड़ी ही नदारद!

"अरे यार!" खिन्न भाव से माथे पर शिकन देकर घनश्याम

ने कहा—"कई चीजें उस दुष्ट के पास ही छूट गयीं। मेरी जेब में तो घड़ी ही नहीं है ?"

"घड़ी वहीं छोड़ आये! ताज्जुब! बड़े डरपोक आदमी हो। मुझसे कहते तो मैं ही रुक कर सब चीजों को ढूंढ़ और सहेज लेता। और भी कुछ छोड़ा है कि केवल घड़ी ही ?"

"कई चीजें जेब में नहीं हैं, शायद एक चिट्ठी भी वहीं छूट गयी, पेन्सिल भी,—उफ़! उफ़!!"

"क्यों? उफ़, उफ़, क्यों कर रहे हो? क्या कलेजे में दर्द हो रहा है? चोट ज्यादा लगी है?"

"अजी, चोट के लिये उफ़ नहीं कर रहा हूँ," उत्तर मिला—"वे सब, मुफ्त ही में उसने अपमान कितना किया। मिला कुछ भी नहीं, आँखें भी मजे में न सिंक सकीं, और अपमान और बेइज्जती और नुकसान हुआ दुनिया भर का। ऐसा गुस्सा आता है उस लड़की पर कि अगर वह इस वक्त दिखाई पड़े तो, मारे थप्पड़ों के उसका मुँह लाल कर दूँ।"

"औरत पर हाथ छोड़ोगे? नः, नः—यह वीरों के लिये शोभा की बात नहीं।" गुलाब ने सूखी मुस्कराहट से कहा—"कम-से-कम मैं तो ऐसा, इस जनम में नहीं कर सकता।"

"अजी फ़िजूल की बातें बघारते हो!" घनश्याम जी चिढ़ा—"अगर औरतें मर्दों पर जूते चलायेंगी, तो, मर्द क्या औरतों से कम हैं? वह भी जरूर, जरूर, हाथ छोड़ेंगे। मैं पहले ही तुम से कह रहा था कि किस गन्दे स्थान पर चल रहे हो। मगर, तुम तो कमअक़्लों और जल्दबाजों के सरदार हो। आख़िर खुद भी बेइज्जत हुए और साथ ही मुझे भी ले डूबे!"

"कलपते क्यों हो? बहुत रंज है, तो, जाओ घड़ी माँग लाओ!"

"चलो!" घनश्याम ने उत्तेजित रूप से उठते हुए कहा।

"नाः !" गुलाब ने उत्तर दिया—"मैं नहीं जाने का। मैं तो इतनी बेइज्ज़ती को कुछ बहुत बड़ी हतकइज़्ज़ती भी नहीं समझता। माशूक़ चुलबुल और शरारती होते ही हैं; और आशिक़ी के रास्ते की दोनों ओर लात-जूतों और अपमानों की खेती हमेशा लहराया ही करती है। घड़ी और चीज़ें तो मुनाफ़े में छूटी हैं। जैसे हम इश्क़ का बयाना घड़ी के रूप में दे आये हैं। जैसे इस ठोकर और धक्के के रूप में हमें उन चीज़ों की रसीद मिली है। चलो, अब चलें। छोड़ो घड़ी का मोह। थी कितने वाली ? वही जिसको तुमने फ़ौव्वारे वाली दूकान से अस्सी रुपये में ख़रीदा था ? उहँ ! तुम लखपती हो। रधिया जैसी 'चीज़' पर आज अस्सी न्यौछावर हो गये तो क्या हुआ।"

"उफ़ ! गुलाब !" घनश्याम जी कुछ कहते-कहते चुप हो गया !

"अब आज ही से इस 'उफ़' और 'आह' की झड़ी लगाने की ज़रूरत नहीं है। चलो, उठो !"

घनश्याम जी लड़खड़ाता-सा उठा और गुलाब के गले में हाथ डालकर, ठण्डी साँसें खींचता और गुनगुनाता हुआ, आगे बढ़ा—

मेह्र की तुझसे तवक़्क़ा थी
सितमगर निकला,
मोम समझे थे तेरे दिल को
सो पत्थर निकला !

"बाबू, ओ बाबू !" दोनों के पीछे से किसी की बाँसुरी-सी आवाज़ सुनाई पड़ी। दोनों ने रुक कर पीछे की ओर देखा।

"ओहोहो !" गुलाब ने खिलकर कहा—"यह तो वही है ! इधर ही आ रही है—बापरे बाप ! घनश्याम, अब लात खाने का पुरस्कार मिलेगा। ठहरो !"

"वह हाथ में मेरी घड़ी और दूसरी चीज़ें लिये हुए है। कुछ

झोपी भी है—उफ़! ठहर जाओ!"

दोनों, पुल से थोड़ा आगे, बीच सड़क पर रुक कर, गुदगुदी-भरी हवा की तरह आती हुई, उस खूबसूरत भंगिन को देखने लगे!

: २६ :

दूसरी पंचायत

वहाँ के सुधारवादियों और अघोड़ी मनुष्यानन्द का तेज पाकर उत्साहित, अपढ़, पीड़ित, तिरस्कृत बेचारे भंगियों की दूसरी पंचायत अलईपुर मुहल्ले के एक चौड़े मैदान में हुई। इस बार की दलितों की भीड़ पहली पंचायत से, कहीं गाढ़ी थी। कोई पाँच सौ भंगी, कई सौ मेहतर और पचासों उक्त जातियों की स्त्रियाँ और बच्चे भी इस बार उपस्थित थे। इस पंचायत के लिये बनारस के कुछ सच्चे अछूत सेवकों ने वह भी खासा किया था जिसे अंग्रेजी में 'प्रोपेगैण्डा' या हिन्दी में 'प्रचार' कहा जाता है।

शहर के 'पवित्रों' में यह बात फैल रही थी कि प्रचण्ड योगी मनस्वी मनुष्यानन्द इन दिनों अभागे 'पतितों' के उत्थान के लिये जी-जान से जुट पड़े हैं। उन्हें कोई पचास नवयुवक 'ऊँच' ऐसे मिल गये हैं जो उग्र विचारों से पूर्णतया सहयोग करते हैं। और सत्य के सम्मुख, मनुष्यता के सम्मुख, न्याय के सम्मुख इस ढोंगी समाज को तृण बराबर भी महत्व नहीं देते। पुलीस के दफ़्तर में तो यहाँ तक खबर पहुँची थी कि ये युवक बिना किसी संकोच या सिहर के इन 'नीचों' के टोलों में चले जाते हैं। जैसे कोई अपने परिवार के साथ बैठकर दुख-सुख, कहे-सुने, वैसे ही उनसे दुख-सुख कहते-सुनते हैं। उनकी ठण्डी साँसों को, कष्ट-

कित होकर सुनते हैं—उनकी निस्तेज, निराश आँखों को सजल-भाव से देखते हैं। उनसे जीवन के उन प्रश्नों पर गम्भीरता से विचार करने को कहते हैं जिनका भीतर की पवित्रता से सम्बन्ध है। उन्हें स्वच्छ रहने का मन्त्र भी देते हैं और—जरूरत पड़ने पर—पैसे भी।

बुधुआ का नाम भी शहर के कुछ हिस्सों में, भंगियों के नेता-रूप में ख्याति प्राप्ति कर रहा था। उसके बारे में लोगों का कहना था कि अघोड़ी मनुष्यानन्द के प्रसाद से वह पत्थर से पारस हो गया है। अघोड़ी ही के कारण वह फाँसी से बचा, अघोड़ी ही के कारण अपनी छबीली लड़की के साथ पादरी जानसन के यहाँ आराम की नौकरी कर रहा है, अघोड़ी ही के कारण पादरी ने उसे और उसकी लड़की को दुर्गाकुण्ड के पास वह जमीन खरीद कर दे दी है, और अब, उसी अघोड़ी ही के कारण वह अपनी जाति का नेता बना जा रहा है। वह साफ़ और पवित्र तो ऐसा रहता है कि लोग उसे देखकर दंग रह जाते हैं। इधर उसने, दृढ़ प्रतिज्ञा करके, माँस आदि खाना तो छोड़ ही दिया था, अब, बीड़ी तक नहीं छूता। केवल बनारस के नहीं, आस-पास के अनेक कस्बों, देहातों और शहरों के दलितों में बुधुआ साधु की तरह मशहूर हो गया। इस बार की पंचायत के लिए जो इतने भंगी इकट्ठे हुए, उसमें बुधराम चौधरी के प्रभाव का खासा हाथ था।

सन्ध्या के साढ़े छः या सात बजे, जब बुधुआ आ गया तब, पंचायत शुरू हुई। महीने के कृष्णपक्ष का चौथा या पाँचवाँ दिन था, और बेचारे ग़रीबों के पास आधुनिक सभाओं के संयोजकों की तरह चन्दे के पैसों की भरमार नहीं थी, कि गैस-बत्ती आदि की व्यवस्था करते। अस्तु, दुनिया के अन्धकार में भटकने वालों की सभा अन्धकार ही में आरम्भ हुई। सभा आरम्भ होते-होते

वह भीड़ कुछ और बड़ी हो गई। अब कुल मिलाकर हज़ार से कम दलित वहाँ पर न एकत्र रहे होंगे।

सबसे पहले बुधुआ ने अपना भाषण आरम्भ किया। वह उस जमात के बीच में खड़ा होकर बोला—"भाइयो, आज की पंचायत में अघोड़ी बाबा भी आने वाले थे, मगर, जब मैं उन्हें बुलाने के लिए उनकी तलाश में गया तब मालूम हुआ, कि वह कहीं और चले गये हैं।" इस पर एक ओर से आवाज़ आयी कि—"बुधराम चौधरी, हम बीस आदमी तो यहाँ से बीस कोस दूर से आये हैं, और आये हैं केवल बाबा साहब की बातें सुनने, जिनसे वह हमारा बेड़ा पार लगाना चाहते हैं।" मगर, बीच ही में रोकने वाले इस परदेशी वक्ता को दूसरे भंगियों ने डाटकर चुप कर दिया–"ठहरो, पहले बुधराम चौधरी की सब बातें तो सुन लो। यह वही बोलते हैं जो अघोड़ी बाबा इन्हें बतलाते और समझाते हैं।" बुधुआ आगे बढ़ा–"भाई, अघोड़ी बाबा के दर्शन यदि ईश्वर की कृपा हुई तो, तुम्हें जरूर मिलेंगे, और आज ही मिलेंगे। तब तक, थोड़े में, मैं आपको यह बतलाना चाहता हूँ कि क्या करने से इस सामाजिक नरक से हमारा उद्धार होगा। हमारे लिए सबसे ज़रूरी बात यह है कि हम सब तरह की गन्दगियों को छोड़कर सफ़ाई का जीवन बिताना सीखें। आप कहेंगे—अघोड़ी बाबा के साथ रहकर बुधुआ बढ़-बढ़ कर बात हाँकने लगा है। भला, ज़्यादा-से-जयादा पाँच, सात या दस रुपये महीने कमाने वाला ग़रीब परिवारी किस तरह उस सफ़ाई का जीवन बिता सकता है, जिसे केवल अपनी ही सम्पत्ति समझकर अपने को 'ऊँच' कहने और समझने वाले हमें 'नीच' और अपवित्र कहते हैं। मगर नहीं, आपका ऐसा सोचना व्यर्थ भी होगा और आप के हितों का घातक भी। सफ़ाई का सम्बन्ध, पैसे से अधिक मन से है। एक धोती, एक कुरता और एक ही अँगोछा रखनेवाला प्राणी

भी—अगर ज़रा सा हाथ-पैर हिलाने में आलस्य न करे तो—साफ़ और ख़ूब साफ रह सकता है।" भीड़ में से कुछ उत्सुकों ने सवाल किया—"कैसे चौधरी? कैसे सरदार? ज़रा हमें भी बताओ कि एक ही धोती और कुरता-अँगोछा वाला ग़रीब किस तरह साफ़ रह सकता है?" बुधुआ ने उत्तर दिया—"इस सवाल का जवाब तो यहाँ पर इकट्ठे सभी लोगों को मालूम है। अगर इस वक़्त यहाँ पर स्त्री और बच्चों को छोड़कर नौ सौ दलित भी हैं, तो यह निश्चय है कि उनमें से आठ सौ से ऊपर लोग ज़रूर ही एक या एक से अधिक बार सरकारी नरकों—जेलों—की सैर किये हुए होंगे। क्या मुझे उन लोगों को यह बताना होगा कि जेलों में भी अभागे कैदियों को उतने ही कपड़े मिलते हैं जितने की चर्चा मैंने अभी की है। और क्या यह भी मुझे बताना होगा कि वहाँ उतने ही कपड़े किस सफ़ाई से रखे और व्यवहार में लाये जाते हैं। कपड़े तो अगर रोज़ पानी ही से ज़रा ध्यान पूर्वक साफ़ कर लिए जायँ, तो, गन्दे नहीं रह सकते। साबुन और धोबियों का ज़माना तो अब बढ़ा है। पहले तो सब लोग अपनी सफ़ाई स्वयं ही कर लेते थे। मेरा तो कहना है, कि अगर, अपने काम निपटा कर, हम लोग रोज़ स्नान कर लिया करें और अपने तथा अपने बच्चों के कपड़ों को कचार लिया करें, तो, हमारी गन्दगी एकदम दूर हो जाय।"

इस पर किसी ने पूछा—"चौधरी, हमारे पास कचारने लायक कपड़े ही कहाँ होते हैं। हम तो शहर और गाँव के लोगों के पुराने-धुराने उतारे हुए कपड़ों से अपना गुज़र करते हैं। वे कपड़े ऐसे थोड़ी ही होते हैं कि रोज़-रोज़ कचारे जा सकें। हमारे शहरी भाइयों के पास तो, फिर भी, 'कपड़े' कहलाने लायक कुछ चीजें होती हैं, क्योंकि, वे शहर में रहते हैं। मगर, देहाती दलितों के पास एक लँगोटी छोड़कर और होता ही क्या है कि वे

उसे कचारें और साफ़ रखेंगे ?"

दूसरे कोने से खड़ा होकर कोई महा कलूटा और कमर में एक चिथड़ा मात्र लपेटे हुए राक्षसाकृति डोम कहने लगा—"हज़ूर, हमें तो देहात वाले कुरता पहनने ही नहीं देते। कहते हैं, ससुर भंगी की जात और पहनोगे ऊँचों की तरह कुरते! अगर हम लङ्गोटी छोड़कर घुटने इतनी ऊँची धोती भी पहनें, तो, हम पर बिना मार और गालियों की वर्षा किये देहाती 'ऊँच' न मानें। ऐसी हालत में अगर हम सफ़ाई से रहना शुरू करेंगे, तो लात भी खायँगे और अपनी लगी-लगायी रोजी से भी हाथ धो बैठेंगे।"

देहाती भंगी की बातों ने बुधुआ को उत्तेजित कर दिया—"नाश हो ऐसे देहाती या शहराती पापी ऊँचों का! जो हमसे नीच-से-नीच काम कराकर भी हमें आदमी की तरह खाने और पहनने नहीं देते। ऐसों ही के होश ठिकाने लाने के लिये तो बाबा अघोड़ी और शहर के कुछ भले आदमी और हम उद्योग कर रहे हैं। एक बार हमें आपस में एकता कर इन ऊँचों की अक़ल ठिकाने करनी होगी। एक बार उन्हें यह अच्छी तरह से समझा देना होगा, कि जिस तरह हम तुम्हारे आश्रित हैं, उसी तरह तुम भी हमारे आश्रित हो। इसलिये, छोड़ो इस झूठी हेकड़ी को और इस बात को अच्छी तरह समझ लो, कि दोनों हाथों के संयोग बिना, किसी तरह भी, ताली शुद्ध नहीं बज सकती। अब बहुत दिन हो गये तुम अज्ञानी ऊँचों को हमपर ज़ुल्म करते हुए। अब हम भी, अपने को चीन्हने लगे हैं। अब समाज की मशीन प्रेम और सहयोग ही से चलाने से चलेगी, भय और शासन और अत्याचार से नहीं।"

इसी समय एक ओर से, पेड़ों के झुरमुट को प्रकाश से नहलाती हुई, द्विजराज की रजत किरणें भी, दलितों के उस दल में आकर नाचने लगीं। उदार प्रकृति ने, उन बेचारों के लाभार्थ,

आकाश के एक कोने में, ठण्डा और शान्तिप्रद एक दिव्य दीपक जला दिया।

इसी समय अनेक दलित-बन्धुओं के साथ औघड़ राज भी सभा की ओर आते हुए दिखाई पड़े। उनकी आहट मिलते ही चारों ओर सन्नाटा व्याप उठा। उनके स्वागत के लिये, उत्साह से उमड़कर, दलित-मण्डली खड़ी हो गयी!

: ३० :

समर्थक

बुधुआ के कथनानुसार, भंगियों ने सभा के आरम्भ ही में, उस मैदान के एक कोने में पड़े, एक बड़े चट्टानको उठा लाकर सभा के सिरे पर रख छोड़ा था। वही अघोड़ी राज के लिए आसन था। सभा में आते ही वह उस चट्टान पर जाकर खड़े हो गये। शहर के शरीफ़ स्वयंसेवक—जिनमें ऊँची कही जानेवाली सभी जातियों के युवक और अधेड़ थे और जिनकी संख्या पचीस से कम न थी—उनके अगल-बगल प्रसन्न-वदन खड़े हो गये। अघोड़ी के पीछे पेड़ों का झुरमुट था और उस झुरमुट के माथे पर चन्द्रमा था। और, उसके सम्मुख, अछूतों का दरिद्र दल था। चन्द्रमा के मन्द प्रकाश की कृपा से अब उन दलितों की शोभा और भी सम्पूर्ण हो गयी थी। उस दल का अधिकांश काला, कलूटा, रूखा, भयानक और वस्त्र-हीन था। चन्द्रमा और पेड़ों के 'बैक ग्राउण्ड' के साथ, खप्पर और चिमटाधारी भयानक अघोड़ी, उस मजलिस में ऐसा मालूम पड़ता था मानो भूतनाथ शंकर अपने दल-बल के साथ शोभायमान हों।

एकबार सारी सभा पर दृष्टि दौड़ा कर, अपने जलद गम्भीर स्वर से, अघोड़ीराज बोले—"सबसे पहले मैं बाहर से आये हुए

तथा स्थानीय दूसरे मुहल्लों के भाइयों की कष्ट-कहानी सुनना चाहता हूँ। तुममें से जिसके ऊपर जो विपत्ति हो वह, बारी-बारी से, मेरे सामने आकर बताये जिससे मैं, उस भाई के छुटकारे की यथाशक्ति चेष्टा कर सकूँ।" उनकी उक्त बात सुनकर पहले तो सभा में थोड़ा कोलाहल मचा, फिर, एक बुढ़िया अपने एक काले और सींककी तरह दुबले-पतले छोटे बच्चे को लेकर आगे बढ़ी—

"बाबा महाराज," वह हाथ जोड़ और दाँत निकाल कर बोली—"यह जो आपके चरन की कृपा से पैदा हुआ मेरा नाती है, इसे राजघाट टेसन के उत्तर ओर वाले उस बड़े ताड़ में रहने वाला नट बहुत सता रहा है। ज़रा देखिये इसकी सूरत! आँखें बैठ गयी हैं, देह पर एक परत चमड़ा और मुट्ठी भर हड्डियों को छोड़ और कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता। यह हमेशा ही बीमार रहता है। और, इस तरह, न तो मुझे ही मिहनत-मजूरी कर कमाने खाने देता है और न अपनी माँ—मेरी बेटी रजनी ही—को। इसे किसी तरह अच्छा कर दो मेरे भगवान! मैं आपके चरनों पर पड़ती हूँ।"

अघोड़ी ने उस बच्चे का हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा। यद्यपि उसकी अवस्था १०-११ वर्षों से कम की न रही होगी, फिर भी भयानक अघोड़ी के कर-स्पर्श से वह आपादमस्तक काँप उठा। अपनी बूढ़ी नानी की ओर भय-कातर दृष्टि से निहार कर रो पड़ा।

"चुप! रो नहीं!" अघोड़ी ने उसे चुप कराया—"डरता क्यों है बच्चे! मैं अभी तेरे रोग अच्छे किये देता हूँ।"

इसके बाद उन्होंने उस लड़के की आँखें जाचीं, पेट को दबाकर पता लगाया कि प्लीहा आदि तो नहीं है, नाड़ी का अनुसन्धान भी किया और फिर बूढ़ी से बोला—

"तू व्यर्थ ही कहती है माँ, कि इसे नट या भूत लगा हुआ है। इसकी बीमारी मेरी समझ में आ गयी है। इसे मन्दाग्नि हो गयी है। यह जो कुछ खाता-पीता है, उसे अच्छी तरह हजम नहीं कर सकता। यह रोग तो मेरी दवा से एक ही सप्ताह में अच्छा हो जायगा। ले जा आज इसे—तू कहाँ रहती है?"

"इसी अलईपुर में महाराज," बूढ़ी ने उत्तर दिया—"आप तो दो बार यहाँ के भंगी टोले में आ चुके हैं। वहीं मैं रहती हूँ।"

"अच्छा, कल वहीं आकर मैं तुझे इसके लिये दवा दूँगा।"

इसके बाद एक वृद्ध भंगी आया। उसकी कमर धनुष की तरह टेढ़ी हो गयी थी, उसके बाल धुए की तरह सुफेद हो गये थे, उसकी आँखें खुली हुई अवश्य थीं, पर, वह उनसे काम भी ले सकता था या नहीं इसमें सन्देह है। उसने अघोड़ी के आगे आकर रोते-रोते कहा—

"बाबा साहेब, आप मुझे कोई ऐसी दवा दें, जिससे मैं जल्द से-जल्द मर जाऊँ और जीवन के परदे में छिपी इन नारकीय यन्त्रणाओं से छुटकारा पाऊँ। बाबा साहेब, दोहाई आपके चरणों की! मैं रात-दिन परमेश्वर से मरने की प्रार्थना किया करता हूँ। मगर, न जाने कहाँ मेरा पुरजा गुम हो गया है। वह मेरी खबर लेते ही नहीं।"

"तुझे क्या कष्ट है भाई?" सजल-भाव से औघड़ ने दरियाफ़्त किया—"तू क्यों दुनिया से भागने की फ़िक्र में है?"

"बाबा साहेब," वह बोला—"मेरी उम्र अस्सी बरस और पाँच बरस है। इतने दिनों में मैंने दुनिया के उन-उन कष्टों के मुख देखे हैं जिनका मैं वर्णन भी नहीं कर सकता। मैंने पेट के लिये दूसरों के मल साफ़ किये, पाखाने फेंके, चोरी की, जेल के कष्ट झेले, विविध रोगों का शिकार बना—क्या-क्या नहीं किया। मगर फिर भी, मुझे बराबर दो महीने तक, कभी भर पेट इच्छा-भोजन नहीं

मिला। आज भी मेरे तन पर समूचा कपड़ा नहीं है। तिस पर अभी परसों मेरा एक मात्र बेटा 'सुधना,' पाजी पुलीस की बद्-माशी से, जेल भेज दिया गया है।"

सुधना की याद आने से—बूढ़े भंगी का गला भर आया! उसकी आँखों के आँसू धारा-प्रवाह उसके कपोलों पर बह चले—

"बाबा साहेब! मेरी दुख भरी जिन्दगी में वह सुधना ही सुख की एक रेखा था। और, इस बुढ़ौती में तो वह पूरा सहारा ही था। मगर, उसे अब पुलीस ने दो बरसों के लिए जेल भेज दिया है। बिना कुसूर भेजा है स्वामी जी, झूठ नहीं बोलता। झूठ बोलने वाले की आँखें फूट जायँ। अभी कहीं चोरी हुई थी जिसकी तलाशी हमारे भंगी-टोले में आयी थी। कुछ माल गोबर-धना भंगी की झोपड़ी में निकला, जो मेरे सुधना का संगी था। बस, संगी होने ही से वह भी पकड़ लिया गया और बेकुसूर जेल में ठेल दिया गया है। हम भंगी बेकुसूर भी जेलों में भेजे जाते हैं। जेल वाले बाहरी अफ़सरों को लिखकर हमें माँगते हैं, जेल के पाख़ाने साफ़ करने के लिए। क्योंकि, दूसरी जात वाले मुश्किल से यह काम करते हैं। इसलिए, जब तक ये जेलें हैं तब तक, हम भंगियों का उनमें रहना ज़रूरी है। फिर चाहे हम कुसूर करें या न करें। चार दिन हुए उसे जेल गये। चार दिन से मैंने एक दाना भी नहीं खाया है। मेरा अब कोई खोजलेवा नहीं। दुनिया का मल फेंकने का मुझे यह पुरस्कार मिला है। आज मुझ-सा दुखी कोई नहीं। मुझे मौत भी नहीं पूछती। नहीं छूती। ऐसा अछूत हूँ मैं स्वामी जी—अघोड़ी बाबा!"

बूढ़ा फूट-फूट कर कलपने लगा। अघोड़ी ने उसके रूखे बाल सहलाकर, उसकी पीठ पर हाथ फेरकर उसे आश्वासन दिया—
"घबराव नहीं बूढ़े बाबा! घबराने वाले को दुनिया और भी भयानक हो जाती है। तुम्हारा लड़का जेल गया, यह दुख की

बात है। अगर वह बेकुसूर गया है—और जहाँ तक मुझे तुम लोगों के प्रति पुलीस के व्यवहार का पता है जरूर बेकुसूर ही गया होगा—तो, यह बहुत बुरी बात है। इन्हीं जुल्मों के रोकने के लिए ही तो मैं तुम लोगों के बीच काम करने को आया हूँ। अगर एक बार तुम सब एक होकर अपने को उठाते, तो, बस, सब दुःख छूमन्तर हो जाते। तुम चलो बैठो। कल से तुम्हारे खाने-पहनने और शान्ति से रहने का प्रबन्ध मैं करूँगा।"

इसके बाद और भी अनेक दलितों ने अपनी-अपनी कष्ट-कथा अघोड़ी को सुनायी और उसने सबकी उचित व्यवस्था की। अन्त में वह बोला—

"अब मैं तुम लोगों से, आज के सभा का कारण बताना चाहता हूँ और वह कारण और कुछ नहीं, तुम्हारे असंख्य कष्ट ही हैं। हमारी हार्दिक इच्छा है कि, तुम लोग अपने वर्तमान जीवन से छुटकारा पाओ। मगर, इन कष्टों से तुम्हारा उद्धार तब तक नहीं हो सकता जब तक स्वयं तुम अपने पापों से युद्ध करने को तैयार न हो जाओ। मैं, कई महीने से, कोई आन्दोलन खड़ा कर तुम्हारी आर्थिक समस्या हल करना चाहता हूँ। क्योंकि, आज कल के संसार की सबसे बड़ी समस्या यही पैसों की समस्या है। प्रायः सभी के जीवन का पहला सवाल आजकल पैसा ही है। इस पैसे के प्रश्न को हल करने के लिए तुम्हें सबसे पहले आपस में एका करना चाहिए। अपना एक संघ-बनाना चाहिए, पंच चुनने चाहिये और उनकी आज्ञाओं को मानकर सब काम करना चाहिए। ज्योंही तुम संघ-बद्ध होकर काम करोगे त्योंही समाज तुम्हारे सामने झुक जायगा। लोग समझने लगेंगे कि तुम्हारा भी कोई अस्तित्व है और आवश्यक अस्तित्व है।

"अभी तुममें से अनेकों ने अपनी बुरी आदतें छोड़ने की ओर गम्भीरता से ध्यान नहीं दिया है। अभी भंगी-टोलों में व्यर्थ

ही युद्ध और कलह और शराबखोरी और सब प्रकार की नशे-बाज़ियों का बाजार गर्म रहता है। अभी तुमने सफ़ाई पर ध्यान नहीं दिया है। अभी तुम चोरी करने से नहीं हिचकते। अभी तुम्हारे मुख से बात-बात में गन्दी बातें निकला करती हैं। पर, मेरे भाइयो ! अब तुम्हें इन बातों से दूर रहकर, एक और दल-बद्ध होना चाहिये। नहीं तो, ये ऊँची जात वाले, जन्म भर तुम्हें गुलाम और नरक के कीड़े ही बनाये रखेंगे। आदमी स्वभाव ही से बड़ा पाजी होता है। अपने सुख के लिए वह बुरा-से-बुरा काम करता है और उसके समर्थन में भला-से-भला प्रमाण पेश करता है। ऐसी पाजी जाति से लड़ने के लिए तुम्हें दृढ़ और चरित्रवान और संयमी होना पड़ेगा।

"पहले तुम सब यह बताओ कि हमारे पीछे चलने को तुम तैयार हो ? यदि हाँ, तो स्वागत है तुम्हारे इस पवित्र निश्चय का। ये, शहर के अनेक भले आदमी, तुम्हारी सहायता करने के लिये उत्सुक हैं। ये भी उन्हीं की सन्तान हैं जो तुम्हें युगों से नरक में धकेलते चले आ रहे हैं। मगर, ये अपने पूर्वजों के पापों का प्रायश्चित्त तुम्हारे उत्थान में सहायक होकर, तुम्हारी सेवाएं कर, करना चाहते हैं। हम, शीघ्र ही, तुम अछूतों के लिये कोई कार-खाना या रोजगार खोलना चाहते हैं। तुम्हारे बच्चों के लिये विद्यालय खोलना चाहते हैं। इन कामों के लिये, गुप्त और उदार दाताओं ने, हमें रुपये भी काफी दिये हैं। मगर, तब तक हम इस काम में हाथ नहीं लगाते जब तक तुम स्वयं अपने भले के लिये आगे बढ़ना स्वीकार नहीं करते। आज तुम्हें इस बात की प्रतिज्ञा या निश्चय करना होगा कि तुम अब अपनी सभी बुराइयों को धीरे-धीरे त्याग दोगे, और, हमारे बताये हुए पथ पर निर्भय-भाव से चलोगे। बोलो, तुम लोग तैयार हो ?"

"तैयार हैं स्वामी जी ! तैयार हैं बाबा जी !! हम चोरी

छोड़ देंगे राम दोहाई ! हम शराब, गाँजा, ताड़ी वगैरह भी न छूएँगे, लड़ें-झगड़ेंगे भी नहीं और साफ़ और एक होकर रहेंगे— दोहाई औघड़ बाबा की ! हमारा उद्धार कीजिये इस नरक से।"

: ३१ :

गुदगुदी

"बाबू," दोनों के सामने आकर मिस राधा ने चटपटे संकोच और लज्जा से कहा—"मुझको माफ़ कर दो बाबू! ये अपनी चीजें लो, मेरी वह बहुत बड़ी भूल थी जो मैंने आप भले आदमियों को इस तरह गिरा कर अपमानित किया। आप ज़रूर मुझे माफ़ कर दें।"

घनश्याम जी और गुलाबचन्द, बिना कुछ उत्तर दिये ही, एक टक, बुधुआ की उस अनोखी लड़की को देखते रहे। यद्यपि अब अन्धेरा गाढ़ा हो चला था, फिर भी, बिलकुल सामने खड़ी राधा के सौन्दर्य में उससे कुछ भी कमी न पड़ सकी। बल्कि प्रकृति के उस बारीक परदे से कुछ अस्पष्ट होकर वह रूप और भी मादक हो उठा था। यद्यपि यह ठीक है कि घनश्याम जी ने यह बात गुलाब पर प्रकट नहीं की थी, फिर भी, राधा को इतना सन्निकट पाकर उनका उबलता और मुग्ध मन, रह-रह कर यही चाहता था कि उस यौवन और उन्माद और रूप की प्रतिमा को वह बरबस भुजाओं में कस लेते, हृदय से लगा लेते और प्रेम के उन गर्म-गर्म चिह्नों से उसके कपोल को, कंठ को, माथे को, जुल्फों को ढक देते जिसे संसार के प्रेमी और ज़िन्दादिल और साहित्यिक 'चुम्बन' कहकर पुकारते हैं।

"आप लोग ज्योंही मेरे मकान के सामने से इस ओर चले आये," दोनों को चुप देखकर निडर राधा ने पुनः आरम्भ किया—

"त्योंही मेरे पापा और फ़ादर आये। प्रायः त्योंही मैंने ज़मीन पर आपकी यह घड़ी और दूसरी चीज़ें पड़ी देखीं। अभी मैं उन्हें उठाकर सँभाल भी न सकी थी कि दोनों मेरे पास आकर अनेक सवाल करने लगे। किसकी चीज़ें हैं ? यहाँ गिरीं कैसे ? आदि, आदि। मैंने भी बिना संकोच के, सच-सच, सभी बातें बता दीं। मैं झूठ नहीं बोलती। लड़कपन ही से पापा ने मुझे झूठ बोलने को मना किया है।"

"अच्छा, अच्छा !" घनश्याम जी ने कहा—"फिर आपके पापा ने क्या कहा ? कौन हैं आपके पापा ? पापा तो फ़ादर ही को अंग्रेज़ी में कहते हैं न ? फिर आपके पापा और फ़ादर दो क्यों हैं ?"

"मेरे पापा हैं," राधा बोली—"सिगरा चर्च के प्रधान, फ़ादर जानसन। और मैं बुधराम चौधरी की, जो जात का भंगी है, लड़की हूँ। बुधराम चौधरी मेरा फ़ादर है, और पादरी साहब पापा। जब मेरा फ़ादर बहादुरी के लिये जेल में गया था, तब पापा ही ने मुझे पाला-पोसा, कुछ पढ़ाया-लिखाया और इतना बड़ा किया था। मैं और फ़ादर उन्हीं के नौकर हैं। यह ज़मीन जिस पर मेरी झोपड़ी है, पापा की ज़मीन है।"

"ओहो !" धूर्ताकृति बनाकर गुलाब ने कहा—"तब तो आपके पापा और फ़ादर देखने लायक़ आदमी हैं।"

"देखने लायक़ आदमी तो हैं," राधा बोली—"पर फ़ादर भंगी जो हैं। आप लोग तो ऊँची जात के भले आदमी, यहाँ के रईस, मालूम पड़ते हैं। भला आप मेरे फ़ादर से कैसे मिलेंगे ? आप अपवित्र नहीं हो जायेंगे ? शहर के लोग मालूम होने पर, आप पर नाराज़ नहीं होंगे ?"

"ना ना ना !" विचित्र मुँह बनाकर गुलाब ने उत्तर दिया—"अब ज़माना बदल रहा है। अब धीरे-धीरे इस देश से अछूत

रोग उठा जा रहा है। कहाँ लिखा है आपकी देह में कि आप अछूत हैं? आप तो, अगर उनके बीच में बैठा दी जायँ, तो, किसी भी ऊँची जाति की लड़की कही जा सकती हैं। ऐसी साफ़ आप, ऐसी सुन्दर आप, ऐसी शरीफ़ आप, भला ऐसा कौन बेवकूफ़ होगा जो आप या आपके फ़ादर से परिचय करने में हिचकेगा।"

इसी समय संकट मोचन की ओर से किसी की मोटर आती हुई दिखाई पड़ी। "इधर चली आइये," राधा का हाथ कोमलता से पकड़ कर उसे पुल के चबूतरे की ओर बढ़ाता हुआ घनश्याम जी ने कहा—"मोटर आ रही है। सड़क से दूर खड़े होकर बातें करें।"

"नो, नो!" राधा ने आँखें नचाकर, मगर घनश्याम जी के इच्छानुसार चबूतरे की ओर बढ़ती हुई उत्तर दिया—"फ़ादर और पापा मेरे आसरे बैठे होंगे। आपने उन्हें देखा नहीं? वह इधर ही से तो गये हैं। उन्होंने आप लोगों को शायद पुल पर देखा था। तभी तो, सारी बातें सुनकर, उन्होंने मुझे आप से माफ़ी माँगने के लिये इधर ही भेजा है।"

इसके बाद उसने घनश्याम जी की सारी चीज़ें उनके वासना-विकम्पित हाथों पर रख दीं, एक बार उन दोनों की ओर देखकर निश्छल भाव से मुस्करायी और गमनोद्यत भाव दिखाती हुई बोली—

"मैं पापा से बोल दूँगी कि आप लोगों ने मुझे क्षमा कर दिया।"

"ओहो!" आकर्षक उदारता के भाव से घनश्याम ने कहा—"इसमें क्षमा करने की क्या बात है। फिर भी, आप अपने पापा से निस्संकोच जो चाहें कह सकती हैं। मैं आज की घटना को अपना सौभाग्य ही समझूँगा। अगर आप हमें जल्द ही भूल न

जायँगी तो। इसी बहाने भला आप से परिचय तो हो गया।"

बात काट कर गुलाब ने कहा—"अब आते-जाते देखकर आप हमें पहचानेंगी तो! यही सौभाग्य कहाँ का कम है? इसी के लिये तो......।"

उद्दण्ड गुलाब कुछ कहना ही चाहता था कि आँखों-ही-आँखों घनश्याम ने उसे रोक दिया। मगर राधा कुछ-कुछ समझ-सी गयी—

"हाँ," उसने पूछा—"एक बात पूछना तो मैं भूल ही गयी थी। आप लोग मेरे घर पर क्यों गये थे? क्या कोई प्रयोजन था? आप से इस प्रश्न का उत्तर लेने के लिये भी पापा ने कहा है।"

"इसलिये," घनश्याम ने कहा—"पापा से मेरी ओर से धन्यवाद देते हुए कहियेगा कि हमारा कोई विशेष प्रयोजन तो नहीं था, हाँ, यह सुनकर कि बुधराम चौधरी अघोड़ी मनुष्यानन्द के उद्योग से शहर में अछूतों का कोई आन्दोलन होने वाला है, हम यह जानने के लिए आये थे कि यह बात कहाँ तक सत्य है।"

"बिलकुल सत्य है," राधा ने लौटते-लौटते उत्तर दिया—"ज़रूर आन्दोलन होगा; मगर, अभी उसकी तैयारी हो रही है। हमारी जाति और परिस्थिति के लोग, अघोड़ी बाबा कहते थे, इतने 'बैकवर्ड' हैं कि वह दृढ़ता से कोई आन्दोलन अपने अत्याचारियों के ख़िलाफ़ जल्द चला ही नहीं सकते।"

और बस। वह उन दोनों से मुस्कराहटों में विदा ले, धीरे-धीरे सड़क की दोनों ओर के पेड़ों की घनीभूत छाया में विलीन हो गयी। जैसे बिजली की परछाईं काले बादलों की छाती में विलीन हो जाती है।

उसके चले जाने पर दोनों आशिक़-मिज़ाज कोई १० मिनट

तक स्तब्ध खड़े रहे। न इनको उनकी फ़िक्र और न उनको इनकी। इसके बाद एकाएक कुछ सोच और चमक कर घनश्यामजी ने गुलाब से कहा—

"अब चलोगे भी, या अभी कोई और कर्म होना बाक़ी है?"

"चलो," गुलाब ने कहा—"आजकी प्रेम-कथा यहीं समाप्त होना ठीक है। कोई घाटे में नहीं रहे हम लोग। अब तो देख भी चुके, लात भी खा चुके, हाथ छू चुके, नजदीक से रूप-रस-पान भी कर चुके। बाक़ी बातें भी, अगर मेरी सलाह से काम लोगे तो, जल्द ही पूरी हो जायँगी। अब तो किसी दिन भी हम इससे लात मारने का बदला ले सकते हैं, और ऐसी ख़ूबसूरती से ले सकते हैं कि यह भी जन्म भर याद रखेगी कि किसी बनारसी से कभी पाला पड़ा था।"

"मगर नहीं," घनश्याम ने कहा—"मेरी ओर से तो यह कथा यहीं समाप्त हो गयी। अब मैं कभी इस फेर में, इस ओर न आऊँगा। अरे बाबा, अंग्रेज़ों की इस लाड़ली से कौन उलझे। ज़रा भी कुछ यह-वह हो जाय, तो लेने के देने पड़ जायँ। नाः, नाः। यह ख़ूबसूरत है तो क्या, जवान है तो क्या—जिसके पास पैसे हैं उसके लिये ऐसी ख़ूबसूरती और ऐसी जवानी, इस बाज़ार में, मनों पड़ी है। फिर ऐसी ख़तरनाक मुहब्बत से दूर ही रहना अच्छा।"

गुलाब ने ताने से कहा—"बस! उतर गया नशा? हो बिलकुल कच्चे आशिक़! मेरी तो चाहे जो भी दुर्दशा हो, मगर, मौक़ा पाने पर मैं इसे बिना अपनाये छोड़ूँगा नहीं।"

दोनों संकट मोचन की ओर बढ़े। यद्यपि घनश्याम ने गुलाब से, इस भंगिन से अधिक रब्त-ज़ब्त बढ़ाने की चर्चा में, उपेक्षा ही दिखलाई थी, पर उनके मन की राय कुछ और ही थी। वह तो धूर्तराज गुलाब को भी ठगना और राधा का सारा सुख

स्वयं लेना चाहता था। घनश्याम ने गुलाब से यह झूठ कहा था कि वह अब इस विषय में आगे न बढ़ेगा। उसके मनमें तो वह लड़की गुदगुदी की तरह बस गयी थी, वह उसे चाहता था—मगर, केवल अपने लिये!

औरत के बीच में आ जाने से, पुरुष-पुरुष की पुरानी से पुरानी मित्रता भी, झंझावात के बीच में पड़ी हुई रुई की तरह, न जाने कैसे, न जाने क्यों, न जाने किस ओर उड़ जाती है!

: ३२ :

विरोधी

अगर आप हमारी सलाह मानें, तो, बनारस की प्रत्येक ज़रूरी घटना पर वहाँ की मध्य-श्रेणी के लोगों की राय जानने के लिये वहाँ के कम्पनी बाग़ का चक्कर ज़रूर लगावें। यद्यपि वहाँ के सार्वजनिक पुस्तकालयों और कुछ गप्प-पसन्द दूकानदारों की दूकानें भी लोकमत के ग्रामोफ़ोन का काम करती हैं; पर, कम्पनी बाग़ की बहसों में जो आनन्द आता है वह और जगह कहाँ। अस्तु, उस दिन भंगियों और उनके अधिकारों को लेकर जो विवाद उक्त स्थान पर हुआ उसका कुछ वर्णन करना भी अनावश्यक न होगा। इस बार बहस का अड्डा कम्पनी बाग़ का फ़ौव्वारा था जिसकी चारों ओर बहुत-सी पत्थरी-बेंचें पड़ी हुई हैं और जिसके 'बेसिन' के चतुर्दिक के चबूतरे पर भी आनन्दी लोग बैठ कर गप्पे हाँका करते हैं।

रात आठ बजे का वक्त था। आकाश में चन्द्रमा का और पृथ्वी पर ज्योत्स्ना का बोलबाला था। मन्द-मन्द पवन, कम्पनी बाग़ के अनेक सुगन्धित पुष्पों की भीनी-भीनी गन्ध लेकर, मस्ती से बह रहा था। फ़ौव्वारे के पश्चिम ओर की दो बेंचों पर बैठे

कोई आठ सज्जन और उनके सामने खड़े कोई एक दर्जन दूसरे लोग जोर-जोर से बहस कर रहे थे। उनकी वह बहस क्या थी पूरी लड़ाई मालूम पड़ती थी। कभी-कभी कोई-कोई बक्की तो ऐसा गर्जता और तड़पता था मानों इस वाद-विवाद का अन्त बिना धर-पटक के होगा ही नहीं।

बहस का आरम्भ वहीं के, कर्णघण्टा मुहल्ले के, किसी ब्राह्मण देवता ने किया। अपने चन्द परिचितों के एकत्र होते ही उन्होंने पूछा—

"आप लोगों के घर में उठौवा पाखाना है या बहौवा?"

"क्यों? क्यों गुरु? आज आपकी तबीयत पाखाने पर क्यों आई? नई म्युनिसपैलिटी से कोई नया ठेका-वेका लिया है क्या?"

"अहँ!" उन्होंने अपने उस मजाकिये मित्र की ओर खीझ-भरी नजरों से देखा—"दिल्लगी न करो। मैं गम्भीर होकर प्रश्न कर रहा हूँ।"

"हम तो पक्के मुहाल में रहते नहीं," किसी एक ने कहा—"हमारा तो मुहल्ले-का-मुहल्ला उठौवा पाखानों से भरा है। तभी तो, परसों, हमारे मुहल्ले के भंगियों ने हमें धमकाया है।"

"यह बात!" पण्डितजी बोले—"अब आये रास्ते पर। अच्छा क्या धमकी दी है उन्होंने?"

"वह कहते हैं, हमारी तनख्वाह बढ़ाओ; म्युनिसपैलिटी और सरकार और समाज से लड़कर हमारे रहने के लिये महल नहीं, तो, साफ़-सुथरी मिट्टी-फूस की झोपड़ी ही का प्रबन्ध कराओ; और, अगर एक महीने के भीतर उक्त बातों का सन्तोषजनक फ़ैसला नहीं होगा, तो, हम सब, एक स्वर से हड़ताल बोल देंगे।"

"इतना ही नहीं भैया," सामने खड़े एक डण्डाधारी हरमुष्टक

और गुण्डाकृति व्यक्ति ने कहा—"यहाँ तक भी किसी तरह ग़नीमत है। हमारे मुहल्ले में झाड़ू देने वाला रमैया भंगी तो यहाँ तक कह रहा था कि, हमारे लिये देव-मन्दिरों के द्वार खोल दो! जरूर हमें झाड़ू और टोकरी और विष्ठा के साथ मन्दिरों में न जाने देना, क्योंकि, वैसे तो कोई नहीं जाने पाता या जाता, पर जब हम नहा-धो और साफ़-सुथरे होकर, हिन्दू के नाते, भक्त के नाते और मनुष्य के नाते भगवान के दर्शन करने जायँ तब हमें अवश्य जाने दिया जाय।"

"तब?" एक ने पूछा—"तुम्हीं बताओ गुरु, भंगियों, चमारों चाण्डालों को मन्दिरों में जाने दोगे? देवताओं के दर्शन-शृंगार और उनकी पूजा अछूतों द्वारा होने दोगे?"

"अरे भैया की बातें!" घृणा और उपेक्षा और 'हम जबर्दस्त हैं' के भाव से नाक सिकोड़ कर दण्डधरजी बोले—"ई सारे दुनिया का ग़लीज़ साफ़ करने वाले पतित देव-मन्दिर में जायँगे! छिः!! मारे डण्डों के खोपड़ी की कलई खोल दी जायगी। मुँह भुरकुस कर डाला जायगा।"

नये विचारों के किसी युवक ने धीरे से कहा—"मगर, महाराज, अब पतितों और मजूरों और अछूतों का युग आ रहा है। अब, समाज की मशीन को शुद्ध-रूप से चलती रहने देने के लिये पुरानी बातों और प्रणालियों में रद्दो-बदल करना होगा। आपने शायद सुना नहीं, शहर के अनेक शरीफ़ युवक और योगिराज मनुष्यानन्द भी इन अछूतों और भंगियों की मदद पर हैं! अब यह, धारा दण्डों और ज़बरदस्तियों से न रुक सकेगी।"

"न कैसे रुक सकेगी जी, अभी छोकरे हो, नातजर्बेकार हो"—गुण्डा जी ने नहीं पण्डित जी ने कहा—"चार अक्षर अंग्रेजी पढ़कर ही तमाम व्यवस्थाओं के अद्वितीय विवेचक नहीं हो गये।

समाज की मशीन युगों से जिस तरह चलती आ रही है वैसे ही चलती रहेगी। जो जहाँ पर युगों से है वहीं रहे। पवित्र अपने स्थान पर, अपवित्र अपने। इसमें यदि कोई पक्ष आगे बढ़ने या बदमाशी करने की कोशिश करेगा, तो, जरूर वह पीटा और शुद्ध किया जायगा। कौन है मनुष्यानन्द? ऐसे न जाने कितने मनुष्यानन्द आये और चले गये। यह वही बनारस है जहाँ आर्यों का दयानन्द भी लुलुआ कर निकाल दिया गया था। यह बनारस सारे भारत और सारे विश्व की पवित्रता और धार्मिकता का केन्द्र है। यहाँ प्रतिवर्ष न जाने कितने योगी और यती पैदा होते हैं और मर जाते हैं। यहाँ पर किसी की बे-पेंदी की बातें और औंधी राय नहीं मानी जाती—नहीं मानी जा सकती—नहीं मानी जा सकेगी।"

"तब होगा क्या?" एक ने पूछा—"क्या आपका अनुमान यही है कि भङ्गियों की यह सब धमकियाँ सूखे बादलों का गर्जन मात्र है? अपने आप ही सबकी अक़ल कुछ दिनों में ठिकाने आ जायगी।"

"और नहीं तो क्या," पण्डित जी ने गर्व से उत्तर दिया—कभी यह सम्भव हो सकता है कि द्विजातियों के साथ अछूत भी बैठकर वेदपाठ करें, गंगा स्नान करें, देवमन्दिरों में जायँ और सारा भेदभाव दूर होकर सब एकाकार हो जाय! नाः, नाः। यह असम्भव है।"

"जरूर यह असम्भव है।" कइयों ने एक साथ कहा—"ऐसी ईसाइयत हमारे देश और हमारी काशी में नहीं फैल सकती। हम लोग प्राण दे देंगे, पर, अछूतों को सर पर न चढ़ने देंगे।"

: ३३ :

गुड ईवनिङ्ग मिस

घनश्याम जी सुन्दर था, हृष्ट-पुष्ट था—चाहे बली भले ही न रहा हो—आकर्षक था और परम मृदुभाषी था। इस बात का पता मिस राधा को तब लगा जब वह उसकी चीजें उसे देकर अपने घर की ओर लौटी। उसके उद्दण्ड मन ने उस समय इस बात का अनुभव किया कि जैसा व्यवहार उसने उन भले आदमियों के साथ किया था वह किसी प्रकार क्षम्य और सज्जनोचित नहीं था। उसने उन्हें लात से मार दिया था, एक तरह से उन पर कुत्ता दौड़ा दिया था—और क्यों?—बिना किसी अपराध के, अपनी शैतानी प्रकृति की मूर्खता या झक के फेर में पड़ कर। ऐसे ही कामों से बचने के लिये तो पापा मने करते हैं, इन्हीं पाजीपनों ही के लिये तो वह कई बार मुझ पर प्रेमपूर्ण असन्तोष प्रकट कर चुके हैं। फिर मैंने ऐसा क्यों किया? छिः! छिः!! भला वे बेचारे भले आदमी—जो सूरत और पौशाक से रईस भी मालूम पड़ते थे—मेरे विषय में अपने मन में क्या सोचते होंगे? छिः! छिः!!

घर पर लौटने पर पादरी और बुधुआ ने भी उससे अनेक प्रश्न किये—

"मिले थे कि नहीं?" पादरी ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते-फेरते दरियाफ़्त किया—"क्या वे तुझ पर बिगड़े थे? तूने सच-मुच उनसे बड़ा ही भद्दा व्यवहार किया था। क्षमा माँग ली या नहीं? क्या वे तुझ पर बहुत बिगड़े थे?"

"राम, राम," बुधुआ ने कहा—"कहाँ तो हम लोग उनसे न्याय और अधिकार की भीख माँग रहे हैं और कहाँ तूने उनके साथ ऐसा व्यवहार किया! वे अपने मन में क्या सोचेंगे? यही न कि अछूत की छोकरी है, साफ़ कपड़े पहने है तो क्या, अलग

घर में रहती है तो क्या—असभ्य है। इनके रग-रेशे में असभ्यता भर गई है। ये नीम हैं, मीठे हो ही नहीं सकते। ये बबूल हैं, दुर्गुण-कण्टकों से भरे हैं ये। कारी कामरी है, इन पर दूजो रङ्ग चढ़ ही नहीं सकता।"

पादरी और बुधुआ ने रधिया की इस बेवकूफी को इतना महत्व दिया, उसका ऐसा उदास खाका खींचा, उसे इसके लिये इतना ऊंचा-नीचा सुनाया कि राधा उस रात में, प्रायः पिछले पहर तक, जागती और सायंकाल की घटनाओं पर विचार करती रही। उसने मन-ही-मन यह तय किया कि यदि अब कभी वह भले आदमी फिर दिखाई पड़ेंगे, तो, वह एक बार आँखें झुकाकर, उनमें आँसू भरकर, परम विनीत भाव से उनसे क्षमा-प्रार्थना करेगी। ज़रूर करेगी। वह सभ्यता और सभ्यों को, अपने पापा की कृपा से, समझती है और प्यार भी करती है। वह इसका विचार भी नहीं कर सकती कि दुनिया के भले और आकर्षक और 'सुखों के खिलौने' उसे 'भंगिन की बेटी' समझ कर घृणा या उपेक्षा की दृष्टि से देखें।

दूसरे दिन तो नहीं, और तीसरे दिन भी नहीं। शायद चौथे दिन बाबू श्यामजी मिस राधा को दूसरी बार दिखाई पड़े। कैसे विचित्र ढङ्ग की वह दूसरी भेंट थी। राधा की तो, इस बार घनश्याम को इस भाव में देखकर, छाती सिहर उठी।

वह पादरी के बँगले से, पैदल, प्रायः रोज दुर्गाकुण्ड जाया करती थी। अक्सर उसके साथ उसका फ़ादर या बुधुआ भी रहा करता और कभी-कभी वृद्ध और उदास जानसन स्वयं, अपनी गाड़ी पर बैठाकर, उसे पहुँचा देते। मगर, अधिकतर उसे अकेली ही आना पड़ता था। उस दिन भी वह अकेली ही, सिगरा से दुर्गाकुण्ड की ओर, जा रही थी। भेलूपुरा के अस्पताल के आगे अभी वह बढ़ी ही थी कि पीछे से घोड़ों की टाप और बग्घी की

घण्टी की घनघनाहट सुनायी पड़ी। मुड़कर पीछे देखने पर पहले तो कोई विशेष बात नहीं, पर, जब गाड़ी पास आ गयी, तो ठाट-बाट और जवानी से लिपटे बाबू घनश्यामजी बैठे और राधा की ओर देखकर मर्म-भरी मुस्कराहट बिखेरते दिखाई पड़े। एक बार तो वह सहम कर खड़ी हो गयी। उसकी ओर देखने लगी।

उसने देखा, उसके साथ ही वह बग्घी भी खड़ी हो गयी। भीतर से आवाज़ आयी—

"कोई हर्ज न हो, तो आइये, आपको पहुँचा दूँ। मैं भी सङ्कट मोचन महावीर के दर्शनों को जा रहा हूँ। रास्ते ही में तो आपका वह घर है?"

वह, फ़ौरन, गाड़ी से उतर पड़ा और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही राधा को हाथों का अंग्रेज़ी सहारा देकर उसने गाड़ी पर बैठा लिया। वह बेवकूफ़ छोकरी, गाड़ी पर बैठ जाने पर भी और उसके चल पड़ने पर भी, बहुत देर तक यह निश्चय न कर सकी कि उसे ऐसा काम करना चाहिये या नहीं। वह चुपचाप घनश्याम की ओर देखने लगी। उसके होठ काँप रहे थे, उसकी छाती काँप रही थी, उसके कण्टकित रोम न जाने क्यों काँप रहे थे। मगर, उस कँपकँपी में कोई व्यथा नहीं थी, पीड़ा नहीं थी, भय नहीं था। बल्कि, न जाने क्या था, न जाने क्या था!!

घनश्याम ने लम्बी छलांग ली। उसकी समझ में बात आ गयी कि उसका जादू चल सकता है, चल रहा है, चल जायगा। वह 'आप' से, 'तुम' पर, बिना अधिक इन्तज़ार किये ही, आ गया।

"तुम रोज़, इतनी दूर से पैदल ही आती हो?"

"हाँ," बड़ी-बड़ी बरौनियों वाली बोलती आँखें नीचे झुका कर राधा ने कहा—"दूर तो दुर्गाकुण्ड अवश्य है सिगरा से, मगर, पापा कहते हैं, अभी तो मैं बच्ची हूँ, मुझे तो रोज़ दोनों वक़्त

इतना 'वाक' करना चाहिये।"

"ठीक कहते हैं. तुम्हारे पापा," उत्तर मिला—"मगर, अगर, तुम बुरा न मानो, तो, शाम को एक बार रोज़ मैं तुम्हें वहाँ से दुर्गाकुण्ड तक पहुँचा दिया करूँ। मुझे कोई असुविधा न होगी। मैं तो इसी वक़्त रोज़ ही घूमने निकलता हूँ। और, मुझको उधर ही घूमना ज़्यादा अच्छा मालूम पड़ता है, बुरा न मानना, जिधर तुम्हारा मकान है।"

घनश्याम मुस्करा पड़ा, अपनी ही बातों पर, भाव से। राधा ने अपनी आँखों की, ओठों की, कपोलों की मुस्कराहट को भीतर-ही-भीतर हलाल कर डाला—भाव से।

उसके घर के पास, आमों की बारी के पास, प्रथम दर्शन और प्रथम चरण-स्पर्श के उस उन्मादक तीर्थ के पास पहुँचकर घन-श्याम ने कोचवान को आवाज़ दी—"गाड़ी रोको!" वह रुकी, मगर, साईस,—द्वार खोलने को—उतर कर सामने नहीं आया। राधा स्वयं आधी खड़ी होकर बग्घी का दरवाज़ा खोलने लगी।

इसी बीच में तो, शिकारी घनश्याम ने, उसे गोद में उठाकर, बरबस, नीचे खड़ी कर दिया। मगर, इस उठाने में, उसने दुष्टता ज़रा भी नहीं की। वाहरे उसकी हिम्मत!

ज़मीन पर पाँव टिकाकर पुलकित राधा, घनश्याम की ओर 'यह तुम ने क्या किया' भाव से ताकने लगी। घनश्याम ने सदय प्रेम से कहा—

"मगर पापा कहते हैं, अभी तो मैं बच्ची हूँ—क्यों?" वह मुस्करा पड़ा। वह भी भाव-भरी खीझ से मुस्करा पड़ी। हुक्म हुआ—"गाड़ी बढ़ाओ; गुड ईवनिंग मिस!"

: ३४ :

प्रेम अन्धा होता है

उस दिन की घटना के बाद, पहले तो, दो-दो एक-एक दिन का नागा कर, और फिर बराबर, घनश्याम जी राधा को उसके घर पर पहुँचाने के 'तार' में अपनी बग्घी और कोचवान के साथ रहने लगा। अक्सर उनकी गाड़ी, पाँच-साढ़े-पाँच बजे, पादरी जानसन के बँगले से थोड़ी दूर पर ही रुकी रहती, सधी-बधी की तरह राधा पादरी से विदा लेकर घर जाने के लिए आती, और सधे-बधे की तरह उसका वह प्रेमी उसे गाड़ी पर बैठाता और दुर्गा-कुण्ड तक पहुँचा देता। अब राधा का मन उस गाड़ी से अधिक गाड़ी वाले की ओर आकृष्ट होने लगा। अब वह रास्ते में धीरे-धीरे निस्संकोच भाव से मुस्कराने, सिहरने, भाव से ताकने, खुल कर बातें करने लगी। रास्ते में वह घनश्याम से कभी इस विषय पर बातें करती, कभी उस विषय पर। अब यदि कभी घनश्याम की गाड़ी उसके आसरे खड़ी न दिखाई पड़ती तो उसे बुरा भी मालूम पड़ता और वह कुछ—न जाने क्यों—उदासी का भी अनुभव करती। अब उसने अपने बहादुर फ़ादर से कुछ झूठ बोलना भी आरम्भ कर दिया और वह इस लिए कि बुधुआ उसे अपने साथ ही दुर्गाकुण्ड की ओर ले जाने की चेष्टा न करे।

बुधुआ ने और पादरी जानसन ने भी इधर राधा की गति-विधि में कुछ परिवर्तन का अनुभव किया। उसकी वह बाल-सुलभ-चंचलता कुछ कम-सी होने लगी। वह कभी-कभी कुछ विचारती-सी दिखाई पड़ती। कभी-कभी तो, फूलों को सींचती-सींचती, वह सनकियों की तरह हाथ में हजारा लिए, फूलों की ओर देखती ही खड़ी रह जाती। वैसे तो दिन भर वह उदास-सी दिखाई पड़ती, मगर, सन्ध्या के समीप आते ही उसकी प्रस-

न्नता प्रस्फुटित होने लगती। कई बार पादरी ने उसको अकेले में बुलाकर पूछा भी कि—"बच्ची, आजकल तू कुछ भूली-सी क्यों रहती है ?" मगर, उसके पास सिवा इसके कि—"नहीं तो, मुझे तो अपने में कोई परिवर्तन नहीं मालूम पड़ता।"—कोई उत्तर नहीं।

धीरे-धीरे राधा, मन-ही-मन, यह भी विचारने लगी कि—आहा ! कैसे अच्छे आदमी हैं घनश्याम ! कितने प्रेम से बोलते हैं। कैसा निश्छल व्यवहार करते हैं। कैसा खिला हुआ है उनका रूप। कैसे प्रतिष्ठित और सम्पत्तिशाली हैं वह। क्या ही अच्छा होता अगर हममें कोई संबन्ध होता ! सम्बन्ध ? कैसा सम्बन्ध ? किस तरह का सम्बन्ध ? मैं भंगिन की बेटी, वह रईसजादे—हम में मेल—सम्बन्ध—कैसे हो सकता है ? वह तो—यद्यपि मुझ पर प्रकट नहीं होने देते तथापि मैंने इसका अनुभव किया है—मुझे गाड़ी पर चढ़ाने और उतारने के पहले सावधानी से चारों ओर देखते हैं। शायद इसीलिए कि कोई उन्हें—मुझ छोटी जात-वाली के साथ देखकर—बदनाम न करे ! ऐसी हालत में हमारा सम्बन्ध कैसे हो सकता है ? मगर, अगर ऐसा होता—अगर......

उधर घनश्याम की अल्हड़ जवानी अपनी इस चालाकी नाम्नी सफलता पर फूली न समाती थी। उन्होंने अपने मित्र गुलाबचन्द को तो इस सुख से बिलकुल अलग कर दिया। उसे समझा दिया कि मैं अब उस पाजी नीच कुमारी के पास कभी न जाऊँगा। क्योंकि मेरी कुलीनता है जिसका मुँह दाल की मंडी में नहीं अशुद्ध होता, मगर, रधिया के यहाँ हो जायगा। मेरे खानदान का यश है जो चौपट हो जायगा।

गुलाब स्वयं तो परले सिरे का धूर्त था, मगर, घनश्याम को 'भुग्गा' या उल्लू समझता था। उसे ऐसा विश्वास ही नहीं था कि घनश्याम, राधा को लूटने के लिए, उससे भी बड़ा काइयाँ बन

सकता है। वह उसकी बातों में आ गया और एक बार भूल ही गया रधिया को और उसके सरस आकर्षणों को !

एक दिन की बात है, जब राधा घनश्याम की गाड़ी में आकर बैठ गयी तब उसने कहा—

"अभी तो आज पाँच ही बजे हैं। तुम्हें तो साढ़े छः बजे तक घर पहुँचना चाहिए। अभी बहुत वक़्त है! चलो, आज तुम्हें अपना बाग़ दिखलाऊँ। बहुत दूर नहीं है वह यहाँ से। कैन्टून-मेण्ट स्टेशन के पास ही है।"

राधा चुप रही। और उसका प्रेमी उसे लेकर बाग़ की ओर चल पड़ा। वहाँ पहुँचने पर बग़ीचे के माली ने बिना किसी आश्चर्य के, मानो पहले ही से सधा-बधा हो, दोनों का स्वागत किया। बँगले का दरवाज़ा खोल दिया गया। दो कुर्सियाँ और मेज़ बाहर बारहदरी में सजा दी गयीं। कुछ सुन्दर-सुन्दर फूल माली ने अपने मालिक को दिये और मालिक ने अपनी उस ख़ूब-सूरत दिल्लगी को। घनश्याम ने घूम-घूमकर राधा को विविध पुष्पों, लताओं और कुंजों का परिचय दिया।

सूर्य की अन्तिम स्वर्ण-किरणें उस समय मालती कुञ्जकी मधु-मदिर-गन्ध भरी छाया की छाती पर चमक रही थीं। उसके पास जाकर घनश्याम रुक गये। न जाने क्या विचार उसके मन में आया। उसके कपोल एकाएक सुर्ख़ हो उठे। उसने राधा से कहा—

"यह बड़ा ही सुखद क़ुञ्ज है, बैठोगी इसके भीतर चलकर ?"

"देर तो हो रही है," बिना कुछ सोचने-समझने की चेष्टा किये ही, घनश्याम-प्रवाह में बहती हुई राधा ने कहा—"मगर, चलिये ज़रा देखूँ। ऐसी कोई भी लता पापा के गार्डेन में नहीं है। क्या नाम है इसका ?"

"मालती," घनश्याम ने कहा और उसका हाथ पकड़ कर

भीतर घुसा। "इसकी गन्ध बड़ी मधुर और मादक होती है। भौंरे, मालती सुमनबालिकाको अथक भाव से चूमा और रस लिया करते हैं।"

उस कुञ्ज में बैठने की कोई जगह नहीं थी। दोनों उसके भीतर जाकर आमने-सामने खड़े हो गये। पवन ने एक थपकी देकर दोनों के दिमाग़ों को सुगन्ध और उन्माद से भर दिया। उस एक ही थपकी में दोनों सिहर उठे और प्रकृति के न जाने किस मन्त्र के वश होकर एक दूसरे की ओर—मूक किन्तु सार्थक दृष्टि से—देखने लगे। दोनों की साँसें तीव्र हो चलीं।

घनश्याम ने उसे अपनी छाती के पास खींच कर कहा—"प्रिये! क्षमा करना, मैं इस कुञ्ज में तुम्हें चूमना चाहता हूँ। जैसे किरणें इन हरित दलों को चूम रही हैं, भौंरे इन चन्द्रिका-धवल मालतियों को चूम रहे हैं।"

राधा निष्क्रिय और निरुत्तर रही। उसके प्रेमी ने उसकी ठुड्ढी पकड़ कर उसका मुख ऊपर उठाया और उन्माद से उछल-कर चूम लिया उसके अछूते, अमोल, भावुक, कोमल, सरस सुन्दर ओष्ठाधरों को। वह कम्पित होकर और कण्टकित होकर लिपट पड़ी उससे।

उस दिन राधा ने अनुभव किया कि घनश्याम के चुम्बनों से बढ़कर न तो पापा का सरल दयार्द्र हृदय है और न फ़ादर का निश्छल, वात्सल्य-भाव-भरित मन। उसके सारे भाव, उन्मत्त होकर, घनश्याम और उसके प्रेमोपचारों और चुम्बनों की ओर दौड़ने लगे। और, उसी दिन से, वह बराबर आँखें मूँद कर, उस विश्व विख्यात अन्धे—प्रेम—की अँगुलियों पर नाचने लगी!

: ३५ :

राधा ला पता !

ज्यों-ज्यों मिस राधा पर प्रेम के मूक रहस्य खुलने लगे, ज्यों-ज्यों घनश्याम की सम्पत्ति और जवानी और मिष्ठभाषिता का प्रभाव उसके अनुभव-हीन हृदय पर पड़ने लगा, त्यों-त्यों वह अपने पापा और फ़ादर से दूर और घनश्याम से, अधिक-से-अधिक, निकट रहने की चेष्टा करने लगी। थोड़े ही दिनों में यह नौबत आ गयी कि, कभी-कभी वह कोई बहाना निकाल कर तीन या चार ही बजे पादरी के बँगले से बाहर निकल आती। बाहर, थोड़ी दूर पर, घनश्याम या उनकी गाड़ी उसके इन्तज़ार में खड़ी रहती और वह उस पर बैठ कर उसके बग़ीचे में जा पहुँचती। बग़ीचे में, राधा को प्रसन्न रखने के लिये, घनश्याम जो कुछ भी आवश्यक समझता मँगा रखता। फल, फूल, इत्र, रूमाल, आइने, फ़ोनोग्राफ़, हारमोनियम और भिन्न-भिन्न रंग के रेशमी सामानों से, उन दिनों, उसने उस बग़ीचे के बँगले को भर रखा था। राधा अपने घर से तो देशी ईसाइन की पोशाक पहन कर आती, मगर, अक्सर बगीचे में, कुछ तो घनश्याम के आग्रह से और कुछ अपने को अधिक मोहक और आकर्षक बनाने की इच्छा से, वह हिन्दुस्तानी ढंग से भी अपना शृङ्गार करती। सुन्दर, रेशमी, बनारसी काम की साड़ी पहन कर जब वह घनश्याम के सामने आती तब वह चकाचौंध-सा हो जाता। उसे मालूम पड़ता मानो स्वर्ग की अप्सरा उतर आयी हो।

अक्सर घनश्याम उसे यह या वह अमूल्य चीज़ प्रेमोपहार की तरह देने का आग्रह करता, मगर, वह यह कहकर उन्हें अस्वीकार कर देती कि अगर पापा या फ़ादर पूछेंगे कि ये चीज़ें किसने दीं, तो, मैं उन्हें क्या जवाब दूँगी ? मगर, उसका मन उन

चीज़ों को अपनाने और उन्हें पहन कर घनश्याम से अलग की दुनिया की आँखें चकाचौंध करने के लिये—तड़प कर रह जाता। कभी-कभी, घनश्यामजी ने उसे छेड़ कर, विवाह के विषय पर उसकी राय जानने की चेष्टा भी की और वह मुहँ से कुछ न कह कर भी घनश्याम से—जिसने उसके सम्मुख अपने को अविवाहित घोषित कर रखा था—विवाह करने को तैयार थी। मगर, घनश्याम का यह कहना था कि यदि वह अपने बाप और पापा से बिल्कुल अलग हो जाय, तो किसी तरकीब से ऐसा किया जा सकता है। लेकिन वह ऐसा करने को तैयार नहीं थी। यह ठीक है कि घनश्याम उसका प्रियतम था, फिर भी, बेचारे फ़ादर और दयालु पापा को छोड़ना उसके मन ने किसी तरह भी स्वीकार नहीं किया।

पर घनश्याम इस बात पर तुला था कि, राधा को उसके घर से अलग करेगा। वह अपने प्रत्येक भाव से यही व्यक्त करता कि, यदि तुम मुझे प्यार करती हो, तो, छोड़ो दुर्गाकुंड और सिगरा के रिश्तेदारों को, आओ मेरे बग़ीचे में, और फिर, हम गले-से-गला बाँध कर प्रेम की सुखद नदी में गोते लगायें। ऐसी बातें घनश्याम उससे तभी करते जब यह देख लेते कि वह प्रेम या वासना के पूर्ण आवेग में है। उदाहरण के लिये एक दिन की घटना यहाँ लिख देना अनुचित न होगा। उस दिन ज्योंही राधा और वह उस उद्यान में आये, मेघ घिर आये और देखते-देखते वृष्टि होने लगी। पहले तो दोनों अलग-अलग कुर्सियों पर बैठे थे, मगर वृष्टि ने उन्हें एक दूसरे के निकट रहने के लिये रोमाञ्चित कर, पुलकित कर, गुदगुदा कर, विवश कर दिया। घनश्याम ने अपनी पगली प्रियतमा की ओर रस-भरी आँखों से देखा—

"ज़रा सुनो!"

राधा उनके पास जाकर कुर्सी की भुजा पर, उनके गले में

हाथ डालकर, बैठ गयी। उन्होंने उसे खींच कर छाती पर ले लिया, हृदय से चिपका लिया और लिपट कर गर्म साँसें लेने लगे। राधा भी सब कुछ भूलकर जोंक की तरह उनसे सट गयी। मानो उस पावस, उस प्रेम और उस जवानी को सफल करने में तन्मय हो गयी। इसी समय, एकाएक, उसके प्रेमी ने अपनी भुजाओं के बन्धन को, एक साँस लेकर, शिथिल कर दिया—

"राधा, अपनी जगह पर जाकर बैठो। मेरी वह भूल थी जो मैंने तुम्हें यहाँ बुलाया। तुम्हें पास पाकर मैं पागल हो जाता हूँ। मगर, मुझे वैसा होना नहीं चाहिये। क्योंकि तुम मेरी जो नहीं हो।"

उक्त बातें सुनकर राधा का कलेजा सन्न हो गया। कहाँ वह गर्म आलिङ्गन, कहाँ यह ठण्डी बातें! उसे ऐसा मालूम पड़ने लगा मानों घनश्याम की रूखी बातों ने उसके कलेजे में घाव कर दिया हो। मगर, वह अपने प्राणों के प्राण से ऐसी बातें नहीं सुनना चाहती। वह सब कुछ त्याग सकती है उसके लिये। फिर वह हमेशा ही ऐसी बातें क्यों करता है? उसे जी खोल कर प्यार क्यों नहीं करता? उसके प्यासे प्रश्नों का सरस उत्तर क्यों नहीं देता?

"तुम ऐसी बातें क्यों करते हो?" उसने खेद से पूछा—"आखिर तुम क्या चाहते हो?"

"मैं चाहता हूँ कि, तुम शीघ्र-से-शीघ्र दुर्गाकुण्ड की सोसायिटी छोड़ दो। मेरे साथ यहाँ रहना शुरू कर दो। मेरी हो जाओ। बस, तब मैं कुछ न कहा करूँगा। अरे! तुम्हारी आँखों में आँसू आ गये! पगली कहीं की।"

घनश्याम ने उसे फिर छाती से लगा लिया और उसके अश्रु-सिक्त कपोलों को चूमने लगे।

मानो उस दिन के वे बादल भी इसीलिये इतना तूफ़ान मचा

रहे थे कि राधा अब अपने बाप को भूले और प्रियतम को छोड़कर फिर दुर्गाकुण्ड की ओर न जाय। वृष्टि घोर से घोरतर हो चली। अँधेरा ऐसा बढ़ा कि यह पता लगाना मुश्किल हो गया कि अभी दिन भी है या रात हो गयी।

न जाने क्या-क्या उलटा-सीधा समझा-बुझाकर उस दिन घनश्याम ने उसे वहीं रोक रखा। प्राय उसकी इच्छा के विरुद्ध। इसके बाद तीन दिनों तक वृष्टि का वह झड़ रुका नहीं। तब तक घनश्याम और राधा, दुनिया को भूलकर, आठों पहर उसी बगीचे में रहे और प्रेम के विविध नाटक खेलते रहे।

अब राधा ने यह तय कर लिया कि वह अपने प्यारे घनश्याम को छोड़कर पापा या फ़ादर या स्पाई किसी के यहाँ न जायगी। उसको, जब तक घनश्याम हैं, संसार की और किसी भी चीज़ की चाह या ज़रूरत नहीं।

हाय री उन्मत्त जवानी!

❀ ❀ ❀ ❀

उस दिन बुधुआ जब अपनी जाति-बिरादरी वालों से मिल-जुलकर, कोई छः बजे, दुर्गाकुण्ड लौटा, तो, सदा की तरह इसी आशा में था कि उसकी मोहिनी राधा उसके लिये खाना तैयार करती होगी और स्पाई उसके पास बैठा प्रेम से दुम हिलाता होगा। पर, जब उसने दूर ही से देखा कि घर में ज्यों-का-त्यों, ताला पड़ा हुआ है और स्पाई वीर भाव से बैठकर उसकी रखवाली कर रहा है तब उसे एक प्रकार की विचित्र निराशा-सी हुई। उसका बूढ़ा हृदय, रधिया पर सौ जान से मुग्ध था। दुर्गाकुण्ड वाला घर तो, जब राधा वहाँ न होती, उसे सूना-सूना मालूम पड़ता।

"वह आयी क्यों नहीं अभी तक?" बुधुआ मन-ही-मन विचारने लगा—"आज तो वह मेरे सामने ही और रोज़ से कुछ सवेरे ही सिगरा से चल पड़ी थी। कहाँ रुक गयी वह? क्यों रुक

गयी वह ? अरे ! यह बादल तो बड़े जोरों से घिरे आ रहे हैं। घनघोर वर्षा होने की सम्भावना है। यह—बूँदें भी पड़ने लगीं। कौन कह सकता है कि इस वृष्टि का दम कब टूटेगा। कहाँ है मेरी प्यारी रधिया ऐसे भयानक समय में ?"

वह अपने मकान के सामने खड़ा होकर यही सोच रहा था। अभी तक उसने ताला भी नहीं खोला था। क्या करता ताला खोल कर। जब उसकी राधा ही नहीं, तब मकान खुलकर ही क्या होगा।

जब बूँदें ज़रा और बढ़ीं तब वह घबराया और सड़क पर आकर दूर तक नज़र दौड़ाकर यह देखने लगा कि कहीं वह आ तो नहीं रही है। मगर, वह कहाँ थी। फिर वह सोचने लगा—हो-न-हो वह, किसी काम से, पुनः पादरी के बँगले पर लौट गयी हो और अब भी वहीं हो। अगर वह वहाँ है, तो कोई चिन्ता की बात नहीं। मगर, यदि यह अनुमान असत्य हो—तब ? तब कहाँ होगी मेरी सुकुमार कली इस अंधड़ और झड़ और गर्जन और प्रलयङ्कर वर्षण में ?

सचमुच, देखते-देखते, वृष्टि सुन्दरी के सजल-भाव उन्मत्त रूप धारण करने लगे। देखते-देखते सामने की सड़क पङ्किल हो चली। बटोहियों का आवागमन कम हो चला। चारोंओर की अप्राकृतिक चहल-पहल शान्त हो चली और चारोंओर प्राकृतिक कोलाहल गर्जने लगा। अब ? वह बूढ़ा, कमज़ोर, सन्तान वत्सल, बेचारा बुधुआ क्या करे ? उसे कहीं ढूंढ़ने जाय, तो कैसे जाय ? कहाँ जाय ?

इसी समय वह स्पाई उसके निकट आकर कों-कों करने, दुम हिलाने, अपने पंजों से ज़मीन खरोचने और सार्थक दृष्टि से उसकी ओर ताकने लगा। मानो—आज तुम अकेले ही यहाँ कैसे हो मालिक ? मेरी वह...मेरी वह...जिसका मैं नाम भी नहीं बता

सकता, कहाँ है ? बुधुआ समझ गया उस मूक प्रेमी के भावों को। उसने उसको चुमकारते हुए और थपकते हुए कहा—मैं भी तो ताज्जुब में हूँ 'सिपाही'—न जाने आज वह कहाँ रुक रही ! तुम भूखे हो क्या ?

स्पाई, जिसे बुधुआ शुद्ध-शुद्ध न पुकार कर 'सिपाही' कहा करता था, मानो समझ गया उसके भाव को। वह पुनः दुम हिलाने लगा। याने—हाँ, भूखा तो कभी से हूँ; मगर, कहाँ है वह हमारी सुन्दरी अन्नदात्री ?

अन्त में उस अभागे बूढ़े बाप से न रहा गया। उसने मकान खोलकर अपना छाता बाहर निकाला और फिर, ज्यों-का-त्यों ताला लगा कर, राधा की तलाश में सिगरा की ओर, उस घोर वृष्टि में, काँपता और लड़खड़ाता हुआ, बढ़ चला। इस बार—न जाने क्या सोचकर—स्पाई भी उसके पीछे हो लिया।

मगर, पादरी के बँगले पर पहुँचने पर उसे वही मालूम हुआ जिसका भय था। वहाँ भी वह नहीं मिली ! अब ? कहाँ ढूढ़े वह अपनी राधा को ? वृष्टि तो बढ़ती ही जा रही है। पादरी ने कहा—तुम जल्दी में चले आए चौधरी। वह अब आ गई होगी तुम्हारे घर। मगर, ठहरो; अभी नहीं जाओ। वहा से यहाँ तक ऐसी वृष्टि में आकर ही तुमने ग़ज़ब किया है। अब अगर भींगते ही लौटोगे, तो बीमार पड़ जाओगे। मगर बुधुआ ठहरा नहीं। वह ज़रा दाँतनिपोर कर और यह कहकर कि बिना राधा को देखे वह वहाँ नहीं रुक सकता—पुनः लौट पड़ा !

इस बार उसे दुर्गाकुण्ड लौटते-लौटते ज्वर चढ़ आया। उसका साथी स्पाई भी काँपने लगा। मगर, फिर भी, मकान सूना ही था ! अब बुधुआ का धीरज—न जाने किस भीषण विचार से—छूट गया। वह ताला खोलकर घर में घुस गया। खाट पर पड़ गया और क्लान्ति, ज्वर और मानसिक कष्ट से व्यग्र होकर

रोने लगा। उस समय कितनी रात बीत गयी थी यह, बादल और अन्धकार के कारण, समझना मुश्किल था; मगर, फिर भी, रात भयानक और युवती और घोर काली थी। मानो अर्ध-रात्रि का समय हो गया था।

दूसरे दिन सवेरे तक बुधुआ के दरवाज़े खुले रहे। दूसरे दिन सवेरे तक, ज्वराक्रान्त होने पर भी, वह एकटक रधिया के आने की प्रतीक्षा, धड़कते कलेजे से, करता रहा। दूसरे दिन सवेरे तक न उसने और न रपाई ने ही एक भी दाना छुआ। आह! कहाँ गयी उनकी राधा!

३६

स्वार्थी घनश्याम

एक दिन, दो दिन, एक सप्ताह, दो सप्ताह—धीरे-धीरे इतना समय बीत गया और इस बीच में कई बार सच्चे हृदय से राधा की इच्छा अपने फ़ादर और पापा के पास लौट जाने की हुई। मगर, घनश्याम ने उसे फिर अपने बाग़ के बाहर न जाने दिया—न जाने दिया। जब-जब वह इस तरह का प्रस्ताव करती तब-तब वह ऐसी-ऐसी बातें सुनाता, ऐसी-ऐसी माया पसारता कि बेचारी भोली बाला निरुत्तर हो जाती। एक दिन जब घनश्याम ने भूल से उससे यह कह दिया कि—मैंने पता लगाया है, पादरी और तुम्हारे फ़ादर तुम्हारे लिये बहुत परेशान हैं। पुलिस में हुलिया तक कराया गया है। तब तो, राधा व्यग्र होकर रो पड़ी। बोली—तुम्हें मेरी क़सम! तुम आज ही मुझे फ़ादर के यहाँ पहुँचा दो। मैं उनसे हाथ जोड़ कर, पापा से चिरौरी कर, यह वचन ले लूंगी कि वह हमारे प्रेम या विवाह में बाधा न डालेंगे। मगर घनश्याम का तो मंसूबा ही और था। इस समस्या पर उसके तर्क और ही थे।

वह बड़ी नम्रता और प्रेम से लथ-पथ भाव से कहता--प्यारी राधा, तुम नहीं जानती। यद्यपि मैं तुम्हें अपनी आँखों की पुतली समझता हूँ, यद्यपि मेरे सामने तुम्हें कोई अछूत की नज़र से देखे, तो मैं उसकी पुतलियाँ निकाल लूँ। मगर, फिर भी, इस काशी में प्रकट रूप से वैवाहिक जीवन हम नहीं व्यतीत कर सकते। यह पुराने विचार वालों का सर्व-श्रेष्ठ अड्डा है। यहाँ चुपके-चुपके चाहे जो किया जाय, पर, समाज की रुचि के विरुद्ध खुले आम 'अलिफ़' से 'बे' भी नहीं किया जा सकता। अस्तु, मैं तो अपने पिता से झगड़ कर अलग होने की भूमिका बाँध ही रहा हूँ। बहुत कारबार है हमारा—कुछ भी नहीं तो लाखों रुपये मुझे मिलेंगे। पिता मुझ से बहुत दिनों से नाराज़ भी रहते हैं और मुझे अलग भी कर देना चाहते हैं—मगर, इसमें समय लगेगा। अधिक नहीं, कुल छ महीने में काम हो जायगा और तब मैं तुम्हें लेकर यहाँ से कहीं दूर चला चलूँगा। जहाँ न तो मुझे कोई ऊँच समझेगा और न तुम्हें—मेरी जान!—नीच। बस वहीं हम दूध-पानी की तरह बस जायँगे। तब तक ज़रा शान्ति से यहीं रहो न। अरे लड़कियाँ पतियों की होती हैं, फ़ादरों की नहीं। हर तरह से तुम पहले मेरी हो—फिर अपने पिता या पापा की। मैंने माना, आरम्भ में तुम्हें और तुम्हारे पापा को भी, इस वियोग से कुछ कष्ट होगा, पर, फिर सबकुछ भूल जायगा। आदमी की यही प्रकृति होती है। वह एक ही अवस्था में बहुत दिनों तक रहने से ऊब उठता है। कुछ दिनों में आप-ही-आप सब ठीक हो जायगा। और, अगर तुम जल्दबाजी से काम लोगी, तो—सच मानना—मैं तुम्हारे हाथ के बाहर हो जाऊँगा। हमारा समाज किसी तरह भी हमें मिलने नहीं देगा। फिर चाहे मुझे तुम्हारे लिये आत्महत्या ही क्यों न करनी पड़े।

जब-जब ऐसा प्रकरण आता तब-तब ऐसी ही बातें कर घन-

श्याम ऐसा भाव बनाता और मुँह लटका कर कुर्सी पर लेट जाता मानो राधा अपने पिता के यहाँ जाने का प्रस्ताव कर उसके प्रेम का निरादर कर रही है। बेचारी वह इस नाटक में भूल जाती अपने भविष्य को और फिर उनकी अँगुलियों पर नाचने लगती। इसी तरह पहला महीना बीत गया और दूसरा भी बीत चला। वह रोज़ ही एक बार कुछ समय के लिये शहर जाता और फिर वहाँ से अनेक आकर्षक भोग्य-सामग्री लेकर लौट आता। शहर में, और मित्रों में और घर में उन्होंने यह मशहूर कर रखा था कि आजकल वह दुनिया और ऐय्याशी से ऊब गया है! एकान्त ही अब उसे पसन्द आता है, और वह भी, ऐसा एकान्त जहाँ उसके भावों को देखने वाला और कोई भी न हो। उसके पिता ने यह समझा कि लड़का अब सुधर रहा है। मित्रों ने यह समझा कि नालायक़ बना कर निकाल दिये जाने के डर से घनश्याम अब अपने खूसट बाप के सामने झुक गया।

और वह राधा? उस पगली ने तो उस पर अपना सर्वस्व निछावर कर दिया। वह उसके प्रलोभनों में बुरी तरह फँस गयी। सामाजिक या दुनिया के ढंग से विवाह न होने पर भी वह उसकी भार्या का पार्ट खेलने लगी। अब वह उसे इतना प्यारा हो गया कि बिना उसके उसका एक-एक पल युगों-सा बीतता। पर, उसकी उपस्थिति में घंटे और दिन और हफ़्ते और महीने इस तरह बीत जाते जैसे एक पल—और वह भी छोटा-से-छोटा!

घनश्याम दोनों हाथों से उस भोली बालिका की अछूती जवानी, उसके सुन्दर ओष्ठों का स्वर्गीय रस, उसकी छाती की अलौकिक गर्मी, उसकी अज्ञान हँसी का अनुपम उन्माद लूटने लगा। उसे केवल, जल्द-से-जल्द समय में, अधिक-से-अधिक सुख लूट लेने की फ़िक्र थी। उसका बस चलता तो वह एक ही घूँट में, सौन्दर्य की उस अनुपम सुरा-भरी सजीव सुराही को—घट-घट

पी जाता !

साथ ही उस बेवकूफ़ लड़की का बस चलता, तो, वह भी एक ही घूँट में, अपने प्रियतम के कण्ठ के नीचे, अपने सर्वस्व को—आगे-पीछे की चिन्ता किये बिना ही—उँडेल देती !

हाय रे प्रेम का पागलपन !

: ३७ :

हड़ताल

महीनों तक राधा का पता न चलने के कारण बेचारा बुधुआ पागल हो गया होता, अगर, उसकी पीठ पर अघोड़ी मनुष्यानन्द न होते। फिर भी, उसके ग़ायब होने के बाद, कोई डेढ़ महीने तक लगातार वह बीमार रहा। ज्वर और सर्दी दोनों ने उसके जर्जर शरीर पर ऐसा भयानक धावा बोल दिया कि बेचारे का बधिया बैठ गया। अघोड़ी ने उस समय उसके उसी घर में प्रायः टिककर दया से भरपूर सेवा-सुश्रूषा की और अन्त में उसे चंगा करके ही छोड़ा। किन्तु राधा के बिछुड़ने की बात, अच्छा हो जाने पर भी, बुधुआ की छाती में हमेशा धुकधुकी की तरह गूँजा करती थी। इसके लिये अघोड़ी ने उसे यह कहकर धैर्य दिया था कि—राधा को जीवन के रहस्य समझने के लिये, आरम्भ में, कड़ी ठोकरों की ज़रूरत है। मैं जानता हूँ, वह बड़ी भाग्यशालिनी बालिका है। वह ज़रूर सुख पावेगी, मगर, समय आने पर। अभी कुछ दिन उसके ग्रह ख़राब हैं, यह मैं बहुत पहले से जानता हूँ। तुम्हें बताया इसलिये नहीं था कि जो होने ही वाला है उसे मनुष्य—उलटे लटककर भी—नहीं रोक सकता। तुम व्यर्थ ही घबरा उठते हो। अतः छोड़ो उसकी चिन्ता, उठो और देखो ! अपनी दलित जाति। और उस जाति की अनेक राधाएँ तुम्हारी ओर करुण दृष्टि से निहार रही हैं। तुमने उनके उद्धार का जो आन्दोलन उठाया

है, वह घोर परिश्रम करने और भयानक कष्ट सहन करने ही पर सफल होगा। तुम्हारी बीमारी से—बुधराम चौधरी—तुम्हारी जाति वालों का हौसला कुछ ढीला पड़ा जा रहा है। उठो, और समय रहते ही उन्हें सँभालो! मैं तो यहाँ तक कह सकता हूँ कि यदि तुम अपनी जाति के लिए एक बार लड़कर सुख और शान्ति ढूँढ़ लो, तो, बस मिल गयी तुम्हें तुम्हारी प्यारी राधा। आज यदि तुम दुनिया की दृष्टि में पतित और दरिद्र और अज्ञान और अबल न होते, तो, कौन कह सकता है कि तुम्हारी राधा को इस तरह तुम्हारा साथ छोड़ना पड़ता?

अघोड़ी की उक्त बातें भावुक बुधुआ की समझ में आ गयीं। उसने एक बार कोशिश कर अपने को अपने से ऊँचे उठाया और राधा-प्राप्ति की लालसा को, बेचारे दलित भाइयों के लिये सफलता प्राप्ति की कामना के रूप में, बदल दिया।

शहर के सामाजिक तानाशाहों पर—जिनसे इस देश की एक-एक गली भरी पड़ी है—कुछ दिनपूर्व की भंगियों की धमकी का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा था। बहुतों ने तो उनकी बातों पर कान ही नहीं दिये और बहुतों ने धमकी के विरुद्ध महा-धमकी देकर कुछ भङ्गियों को डरा भी दिया। कहा जाता है एक किसी 'पवित्र' कायस्थ ने अपने भंगी की बातें सुन उसे सैंकड़ों गालियाँ दीं उसके इस धृष्ट प्रस्ताव के लिये और कुछ बाता-बाती बढ़ जाने पर उसे पटककर मारा भी। कुछ अमीरों की अँगुलियों पर, रुपयों की खनखन आवाज़ पर नाचने वाली पुलिस के कठपुतलों ने भी अलग-अलग बुलाकर भङ्गियों को गालियाँ और धमकियाँ दीं,—"साले के बच्चे!" उन्होंने अपना मन्त्र सुनाया उन्हें—"शामत सवार है तेरी खोपड़ी पर? क्यों लोगों को हड़ताल की धमकी देता है? भले आदमियों का पाखाना नहीं साफ़ करेगा, तो क्या करेगा? कलेक्टरी, थानेदारी, सुपरण्डएटी? सुअर

कहीं का ! अब अगर ऐसी बातें सुनायी पड़ीं, तो मारे जूतों के सिर के बालों की खेती साफ़ कर दी जायेगी। पाख़ाना नहीं साफ़ करेंगे तो डाका डालेंगे ससुरे भँगी !"

इधर शहर के दलितोद्धार संघ के सदस्यों ने भी इस आन्दोलन पर कमर कस ली थी। धीरे-धीरे उनके मन में यह निश्चय हो गया कि बिना टेढ़ी और कड़ी अँगुली किये जिस दुनिया के पात्रों में से घी भी बाहर नहीं निकल सकता है भला फिर उसी दुनिया के लोग सीधी तरह से दलितों को सामाजिक स्वतन्त्रता और अधिकार कैसे देंगे? किसी बड़े अमीर ने, अघोड़ी मनुष्यानन्द के प्रभाव और चरित्र और तेज से मुग्ध होकर, कुछ शर्तों पर, इन दलित-बन्धुओं को पूरे एक लाख रुपये दिये थे और यह इच्छा प्रकट की थी कि उस धन की सहायता से सबसे पहले इस पवित्र पुरी काशी के अपवित्रों ही को पवित्रता का मन्त्र दिया जाय। रुपये किस तरह खर्च किये जायँगे, इसका मसविदा भी तैयार कर लिया गया।

उसी के अनुसार, बुधुआ के स्वस्थ होते ही, एक दूसरे उदार दानी और अमीर की ज़मीन पर, जो अलईपुर में है, एक बड़ा-अछूताश्रम खोला गया। वह आश्रम क्या था पूरा गाँव था। पहले उसमें पाँच सौ भंगियों के रहने योग्य फूस की अनेक झोंपड़ियाँ डाली गयीं। एक कच्चा मकान—साफ़ और खुला—उनके विद्यालय के लिये बनवाया गया और उसमें कताई-बिनाई का काम सिखाने और चलाने के लिये करघे आदि बैठाये गये। पादरी जानसन ने अघोड़ी के आग्रह से अपने बँगले पर कई सौ मज़बूत और हलके चलने वाले चरखे तैयार कराये। उन्होंने कई ऐसे ईसाई लुहार और बढ़ई भी अछूताश्रम में काम करने के लिये बुलाये जो पहले किसी दलित-जाति के परिवारी थे। शहर के दूसरे, कोई दो दर्जन पढ़े-लिखे स्वयं-सेवकों ने भी आश्रम में रहने

और दलितों को लिखाने-पढ़ाने, संयमी बनाने, तथा हस्तकौशल-कला सिखाने की प्रतिज्ञा की। अघोड़ी मनुष्यानन्द और भीतर-ही-भीतर पादरी जानसन ने भी आश्रम को हर तरह से सफल बनाने तथा अछूतों को एक बार धूर्त 'छूतों' से लड़ा देने का निश्चय किया।

फिर क्या था। इस आन्दोलन के नेता चौधरी बुधराम के आज्ञानुसार एक दिन सारे बनारस के भंगी-टोले खाली हो गये। और सब-के-सब भंगी अपने बीबी-बच्चों के साथ, अछूताश्रम की झोंपड़ियों में आ बसे!

इसके दूसरे ही दिन से तो शहर में हड़ताल हो जाने की चर्चा फैल गयी और अमीर, ग़रीब, पण्डे-पुरोहित, बाबू-भैया सभी एक बार उत्सुक और कुछ चिन्तित हो उठे। अरे! इतनी हिम्मत इन पाजियों की! अरे! इनका यह आश्रम एकाएक कहाँ से तैयार हो गया! अरे! इन्हें इतने रुपये कहाँ से मिले! अरे! अरे!!

: ३८ :

धोका!

अरे यह क्या? अरे यह क्या??—कोई छः महीने तक घनश्याम जी की 'रसीली' रहने के बाद उस बेवकूफ लड़की ने मन-ही-मन अनुभव किया—अब उनका प्रेम ठण्डा-सा क्यों हुआ जा रहा है? अब उनकी आँखों की मस्ती हलकी, उनके प्रेम-सम्भाषण रूखे और उनका आलिङ्गन-पाश शिथिल-सा क्यों मालूम पड़ता है? अब वह शहर में इतना अधिक क्यों रहने लगे? कभी-कभी तो दिन-दिन भर रह जाते हैं और पूछने पर बुद्धिमानी का राग अलापते हैं। कहते हैं—तुम्हें तो केवल शृंगार

और खिस-खिसाना चाहिये। क्योंकि तुम स्त्री हो और केवल इन्हीं निस्सार कामों के लिये बनी हो। मगर, मुझे और भी कुछ करना है। काम-धन्धे देखना है। तुम्हारे शृंगारों और खिसखिसों के लिये उस चीज़ का प्रबन्ध करना है जिसे तुम ख़ूब पहचानती हो—पैसा!—ऐसा तो वह आरम्भ में नहीं करते थे। अब यह एकाएक उनको क्या हो गया?

अरे! अब तो वह रात-रात भर ग़ायब रहने लगे! पिता जी ने नहीं आने दिया, करता क्या? बिरादरी में काम था, आता कैसे? आख़िर तुम इतनी घबराती क्यों हो? तुम्हें कमी किस बात की है? बड़ी बेवकूफ़ हो। खाना तुम्हारे पास, कपड़े तुम्हारे पास, पैसे तुम्हारे पास, नौकर तुम्हारे पास—फिर, मेरे लिये इतना परेशान क्यों रहती हो? मैं क्यों परेशान रहती हूँ यह कैसे समझाऊँ उन्हें? क्या यह परेशानी कुछ नयी है? एक दिन तो वही मुझे अपने लिये परेशान रखना चाहते थे और आज जब मैं सचमुच परेशान रहती हूँ तब पूछते हैं कि—ऐसा क्यों करती हो? अब तो वह विवाह की बातें भी नहीं करते और जब मैं उठाती हूँ उस प्रसंग को तब न जाने कैसा अनाकर्षक मुख बनाकर उड़ा देते हैं उस विषय को। अब वह रात में अक्सर मेरे साथ ही सोने का—और लिपटकर, छाती की धड़कन से छाती की धड़कन मिलाकर सोने का—आग्रह क्यों नहीं करते? आते भी हैं, तो मानो मेरी प्रसन्नता का उन्हें ध्यान ही नहीं रहता? अब वह लम्बी-चौड़ी बेसींग-पूछ की बातें कहाँ ग़ायब हो गयीं??

उस दिन घनश्याम को कुछ प्रसन्न देखकर वह उनकी कुर्सी के पास चली गयी और बोली—

"चुप क्यों हो?"

"क्या बोलूँ, जब कुछ बोलने को बाक़ी ही नहीं रह गया

है ? कहो तो बगीचे में घूम-घूम कर कौवे उड़ाऊँ और इसी बहाने तुम्हें खुश रखने के लिये बोलता रहूँ ?"

"अहँ ! प्यारे ! तुम चिड़चिड़े क्यों हुए जा रहे हो ? मैं वैसा करने को तुमसे कब कहती हूँ !"

"तब चलो, हटो ! उधर चलकर बैठो । मैं रोजगार की बातें सोच रहा हूँ ।"

"बुरा न मानो प्राण !" उसकी आँखों से आँखें मिलाकर उसने कहा—"मैं तुमसे कुछ पूछना चाहती हूँ । छ: महीने तो बीत गये । अब...अब...यहाँ से कहीं और कब चलोगे ? हमारा सम्बन्ध—व्याह...!"

वह संकुचित होकर आँख नीची कर चुप रह गयी । आगे कुछ भी न कह सकी ।

"बस—तुम्हें हमेशा वही एक ही बात याद रहती है—व्याह, व्याह । अरे प्यारी !" वह जरा नम्र बना—"हमारा व्याह तो हुआ ही है । रही कहीं चलने की बात, सो उसी की तैयारी में तो आज कल जी-जान से जुटा हूँ । घबराती क्यों हो इतना ?"

यद्यपि घनश्याम ने इस तरह बातें बनाकर उस दिन उसे चुप कर दिया, पर अब वह धीरे-धीरे—न जाने किस आन्तरिक प्रेरणा से—उससे कुछ सहमने लगी । वह न जाने क्यों अब अपने फ़ादर और पापा के लिये कुछ व्याकुलता का अनुभव करने लगी । उसका हृदय मानों यों धिक्कारने लगा कि इस तरह अपने स्वजनों को छोड़कर उसने कोई भला काम नहीं किया । लेकिन फिर भी, उसकी सारी आशाओं का अवसान नहीं हुआ था । अब भी वह अपने प्राण प्यारे घनश्याम पर अविश्वास करने को तैयार नहीं थी ।

उस दिन घनश्याम जी जो सुबह नहा-धो कर शहर की ओर गया, तो दिन भर नहीं लौटा । उस दिन राधा का जी भी बहुत

उदास था। उदास तो वह इधर महीनों से रहती थी, पर, उस दिन की उदासी मृत्यु की उदासी-सी सूनी और भयावनी थी। शाम तक जब घनश्याम का पता न चला तब नौकर ने आकर उससे भोजन कर लेने का आग्रह किया। पर, उसने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि जब तक वह नहीं आवेंगे, आज भोजन न करूँगी। कोई हर्ज नहीं, कुछ तबीयत भी भारी है।

नौकर चला गया और वह चुपचाप एक आराम कुर्सी पर बैठकर 'उनके' आने की प्रतीक्षा करने लगी! रह-रह कर उसका ध्यान बग़ीचे से सटे सड़क की ओर जाता—उनकी गाड़ी तो नहीं आयी। आह! आख़िर वह आही तो नहीं गये! मगर, नौ बजे, दस बजे, ग्यारह और बारह भी बजे, पर उनका पता न चला। खेद और जागरण और क्षुधा से उसकी आँखें ढँपने लगीं। लेकिन वह कुर्सी से उठी नहीं। आख़िर बँगले के क्लाक ने, टन्न से एक बार बजकर, साढ़े बारह बजने की सूचना दी। यह जानने के लिए कि यह घंटी साढ़े बारह की है या एककी वह ज्योंही कुर्सी से उठी त्योंही बग़ीचे के फाटक पर गाड़ी के पहिये की खड़खड़ाहट सुनायी पड़ी। वह रुक गयी। उसने नज़र दौड़ाकर फाटक और गाड़ीकी ओर देखा। रात अंधेरी थी, इसलिये सिवा गाड़ी के प्रकाश और कुछ नर-मुण्डों और उनकी कंठ-ध्वनि के उसे कुछ भी दिखाई-सुनाई न पड़ा। पर, यह क्या! वह लोग किसे उठाकर इधर ही ला रहे हैं! हैं! हैं! इस आधीरात में यह कौन लोग आ रहे हैं?

क्षण भर बाद कई सुफ़ैदपोश युवक और बग़ीचे का माली तथा नौकर घनश्याम को लादकर उसके समाने ले आये। यह दृश्य देखकर उसकी छाती धड़क उठी। उसने इस बात का अनुभव भी किया कि सभी सु दपोश शराब के नशेमें चूर थे और उसका प्राणप्यारा तो बिलकुल बेहोश था। वह चमक कर आगे

बढ़ी—पलँग पर घनश्याम को सुलाते हुए उन आदमियों की ओर; पर—आह ! यह कौन ? उसने देखा उस भीड़ में कोई सुन्दरी और युवती स्त्री भी ! शायद वह भी नशे में थी। उसके वस्त्र यथा स्थान नहीं थे। उसके बाल खूबसूरती से बिखरे हुये थे और उसके कपोल शायद ताम्बूलराग रंजित थे।

अभी वह भौचकी-सी यह तमाशा देख ही रही थी कि उनमें से एक व्यक्ति उसकी ओर लड़खड़ाता हुआ बढ़ा—

"ओहो ! मिस राधा !!" आश्चर्य से उसने कहा—"तुम यहाँ हो ? घनश्याम के साथ ? अरे ! तब उसने मुझे धोका दिया था ? तुम्हें घर से फुसलाकर यहाँ मौज ले रहा था और हमसे कह रखा था कि—एकान्तवास कर रहा हूँ ! बापरे ? ऐसा पाजी निकला घनश्याम !"

वह राधा को गुरेरने लगा—

"ताकती क्या हो, मेरा नाम गुलाबचन्द है। मैं वही हूँ जिसे तुमने उस दिन देखा था, अपने इस धोखेबाज़ छबीले के साथ। ओह ! तुम तो आज पूरी औरत और मज़ेदार हो गयी हो ! बड़े मज़े लिये इस पाजी ने ! मुझ को ठग लिया। ख़ैर—तो आज ही सही—प्यारी ! मेरी जान ! मैं भी तुम पर मरना चाहता हूँ।"

उन्मत्त गुलाबने झपट कर परेशान राधा को जबरदस्ती छाती से लगा लिया और सँभलते-न-सँभलते उसके मुख पर चुम्बनों की झड़ी लगा दी उस मदहोश ने ! मगर, तुरन्त ही राधा सँभली और बड़े ज़ोर से धक्का मार कर उसने उस बे-सुध कामी को पृथ्वी पर गिरा दिया—हुङ्कार उठी क्रोध से—और उस पतित पर लगी लगातार चरण प्रहार करने।

"डैम ! डेविल !" वह रो और चिल्ला पड़ी—"ऐसी हिम्मत तेरी ! तू आदमी है या सूअर का बच्चा !"

बाग़ के माली और नौकर ने ठुकराकर गुलाब को वहाँ से दूर

धकेल दिया, दूसरे युवक तो आश्चर्य से काठमारे-से हो रहे। उनकी समझ में वह पहेली कुछ भी न आयी। हाँ, वह दूसरी स्त्री इस नाटक पर खिलखिला कर हँस पड़ी—

"घनश्याम बाबू बग़ीचे में भी मेरी एक सौत रखे हैं। अच्छा! जब होश में आवेंगे और आवेंगे किसी दिन मेरे कोठे पर, तब मैं पूछूँगी उनसे...।"

नफ़रत से राधा की ओर देखकर वह स्त्री और ताज्जुब से उसकी ओर घूरकर शराबी, घनश्याम को वहीं छोड़, बग़ीचे के बाहर चले गये।

: ३६ :

युद्ध होगा

सन्ध्या समय मैदाकिन की चौमुहानी से आरम्भ कर सीधे अस्सीघाट मुहल्ले के अन्त तक, स्थान-स्थान पर 'पवित्रों' की छोटी-बड़ी टोलियाँ खड़ी होकर सड़कों और गलियों के गन्दे शृङ्गार को नाक बन्द किये देख रही थीं। साथ ही आपस में बातें कर रही थीं—

"उफ़, उफ़! आज पन्द्रहवाँ दिन है साले भंगियों की इस हड़ताल का! अब तो सारी काशी मलाकीर्ण हो गयी है। जिधर निकलो, उधर ही दुर्गन्ध—साँस लेना मुश्किल हो रहा है।"

"अरे मुहल्ले-के-मुहल्ले 'बंपुलिस' का साज सजाये—महँक रहे हैं। लोगों के घरों पर मक्खी और गोबरैले इस तरह क़ब्ज़ा किये बैठे हैं जिस तरह संसार के ग़रीब-देशों पर अँगरेज़।"

"अगर एक हफ़्ता यह हड़ताल और चली, तो शहर में हैज़ा फैल जायगा।"

"फैल जायगा कहते हो अभी? अरे फैल रहा है। कल मदन

पुरे में तीन मुसलमानों की मृत्यु हुई है।"

"उस मुहल्ले में हैज़ा? क्यों वहाँ तो ड्रेन से भंगी का काम लिया जाता है?"

"पर सबके घरोंमें अभी ड्रेन थोड़े ही घुस सकी है। ड्रेन-पाखाने तो अमीरों की शोभा हैं—ग़रीबों के घर पर तो मेहतर ही अपना नरक भोगा करते थे—उफ़! जो हो भाई! अब कुछ-कुछ पता चल रहा है कि भंगी का काम कितना घृणित और नारकीय होता है। मेरे घर का पाख़ाना तो घोर गन्दगी से बजबजा रहा है। हे मेरे भगवान्! जी नहीं करता घुसने को। इसीलिये बहुत से पुरुष निपटने वालों के दल में मिल कर उस पार या मैदानों में जाने लगे हैं। पर बेचारी औरतें कहाँ जायँ? बीमार कहाँ जायँ? बच्चे कहाँ जायँ? उन्हें तो, उस नरक के सिवा और कोई जगह नहीं। कुछ अक़ल काम नहीं कर रही है।"

चौक के पास एक तम्बोली की दूकान के पास कुछ लोग बातें कर रहे थे—

"अब क्या होगा?"

"म्युनिसिपैलटी पर दबाव डाला जाय।"

"वह कुछ नहीं कर सकती। शहर के भंगी तो अछूताश्रम में दाख़िल हो गये और किसी भी धमकी या भय से वे दबते ही नहीं। रहे बाहर के, सो पहले तो बाहर वाले यहाँ की हालत सुन कर आने पर राज़ी ही नहीं होते, और अगर कहीं से कुछ भोले-भाले आते भी हैं, तो, अछूतोद्धारक और वह अघोड़ी और उस घुघुआ साले का दल ऐसे-ऐसे मन्त्र उनके कानों में भरते हैं कि वे झाड़ू रख देते हैं—टोकरी फेंक देते हैं।"

"सुनते हैं उस अछूताश्रम में रहने वाले दलितों को और उनकी स्त्रियों को चरखा कातना, रुई धुनना, चरखे बनाना और बढ़ई के अन्य काम तथा सूप, पंखे, मेज़, कुर्सी आदि तैयार

करना बड़े धड़ल्ले से सिखाया जा रहा है। उनके बच्चों को पढ़ाया-लिखाया तथा स्वच्छता-प्रेमी बनाया जा रहा है। सुनते हैं बड़ा उत्साह और बड़ा जोश है उन भूखे पतितों में।"

"मैंने सुना है कल पुलीस सुप्रेण्टेण्डेण्ट और कोतवाल और कलेक्टर भी अछूताश्रम में गये थे।"

"अरे केवल गये ही नहीं थे—वहाँ से अपना-सा मुँह लेकर चले भी आये थे। अघोड़ी मनुष्यानन्द और उनके साथ-साथ पादरी जानसन ने ऐसी-ऐसी फटकारें बतायीं—मनुष्यता के उन वैध-लुटेरों को, कि वे स्तब्ध रह गये। गये थे धमकाने कि ऐसा आश्रम और ऐसी व्यवस्था ग़ैर-कानूनी है, पर, ऐसी कड़ी कनेठी मिली उन्हें उन अछूत प्रेमियों से कि तिलमिला कर, बिलबिलाकर, भाग आये।"

"तो अब साहब-सूबा और म्युनिसिपैलिटी भी कुछ नहीं कर सकती? फिर क्या होगा? क्या सारा शहर इसी तरह गन्दा रहेगा?"

"लक्षण तो, फ़िलहाल, ऐसे ही दिखाई पड़ते हैं। अब सिवा इसके कि अपने हाथ से पाखाने और घर और सड़कें साफ़ की जायँ दूसरा कोई उपाय नहीं। औरङ्गाबाद मुहल्ले के कुछ पवित्र-स्वयं-सेवकों ने तो बहुत से स्थानों पर स्वयं झाड़ू फेरा है। पर, पाख़ाने साफ़ करने की हिम्मत उनमें भी नहीं। छिः! मैं तो इस की कल्पना ही से कंटकित हो उठता हूँ!"

तमोली ने कहा—"भैया, सुना है पुलीस वाले भंगियों पर ज़ोर-ज़ुल्म करने की सोच रहे हैं, अफ़सरों के इशारे पर। सुना है, सीधी तरह से काम न होगा, तो, डण्डे और बन्दूकों की सहायता ली जायगी। स्वयंसेवक और अछूत और अघोड़ी तक पकड़े जायँगे।"

एक जगह पुराने, नये दोनों विचारों के लोगों की मंडली भी

उक्त प्रकरण पर निम्न तर्क-वितर्क कर रही थी—

नये—बेशक, उनकी पुकार न सुनकर हमेशा से हम उन पर अत्याचार करते आये हैं। इन पददलितों को क्रान्ति करने का, बलवा करने का और युद्ध करने का जन्मसिद्ध अधिकार है। हमें उनकी ईमानदारी से भरी माँगों के आगे झुकना चाहिये।

पुराने—अरे चलो! बड़े झुकाने वाले! इस अघोड़ी ने इस घटना को इतना महत्व दे रखा है, नहीं तो अब तक मारे जूतों के सालों के होश ठिकाने कर दिये गये होते। इनकी यह हिम्मत।

नये—शर्म कीजिये महाराज! वे बेचारे भरपेट रोटी माँगते हैं और आप उन्हें—ऐसे धार्मिक और ज्ञानी होकर भी—जूते देने को तैयार हैं! उनकी इच्छा—वे नहीं चाहते समाज की वर्त्तमान शर्तों पर उसका नरक धोना। आप कौन हैं उनके साथ ज़बरदस्ती करने वाले? वे आपके ज़रख़रीद ग़ुलाम नहीं। कर लीजिये अपने घर अपने हाथों साफ़। न:—नहीं कर सकते आप! घृणा मालूम होती है—क्यों? जो काम ख़ुद नहीं कर सकते वही दूसरों से ज़बरदस्ती कराते रहने का आपको क्या हक़ है? सावधान! यह बीसवीं सदी है। इसमें किसी की ज़ोर-ज़बरदस्ती की गाड़ी कभी नहीं चल सकेगी। मनुष्य जाग रहा है—ग़रीब आँखें फाड़-फाड़ कर ज्ञान और मुक्ति की ओर देख रहे हैं।

"तब क्या होगा?" किसी दूसरे पुराने ने पूछा—"क्या हमीं को अब पाख़ाने साफ़ करने होंगे?"

"नहीं। आप उनकी शर्तें स्वीकारिये," नये मतों के समर्थक ने कहा—"सरकार से उन्हें पीसने के लिये, जो कहते हैं उसे रोकिये और उनके उत्थान और सुधार का रास्ता साफ़ कीजिये। पहले आप उनकी मुक्ति का पथ साफ़ कीजिये; फिर वह परम कृतज्ञ भाव से आपकी मुक्ति का पथ साफ़ करेंगे। उनके बच्चों के लिये पढ़ने की व्यवस्था कीजिये। उन्हें पाख़ानों के परे की कला का भी

परिचय दीजिये। उन्हें, यदि आपको धर्म प्यारा हो, तो, धार्मिक और सच्चा धार्मिक बनाइये! मन्दिरों के द्वार खोलिये—भङ्किये नहीं! पवित्रों के लिये नहीं, पूँजीपति सर्व-शक्तिमानों के लिये नहीं, चमार, डोम, या भंगियों के लिये भी नहीं—मनुष्य के लिये, सारी मनुष्य जाति के लिये। मन्दिरों के पवित्र फाटकों पर से 'आर्यधर्मेतराणां प्रवेशो निषिद्धः' के संकुचित और अन्यायी साइनबोर्ड को हटाइये और उसके स्थान पर प्रसन्नवदन होकर, दूसरा साइनबोर्ड लगाइये जिस पर स्वर्णाक्षरों में खुदा हो—हरि को भजे सो हरिका होई।"

"यह पागलों की बातें और कल्पनाएँ हैं," पुराने विचारकों के महाराज ने सगर्व उत्तर दिया—"जरूरत पड़ने पर हम और सब तरह की स्वतन्त्रता इन अछूतों को दे सकते हैं—शायद दे दें—मगर, मन्दिरों में कैसे, क्यों, जाने देंगे? ये नीच हैं, पतित हैं, चांडाल हैं—दो पैर के मनुष्य रूपधारी प्राणी हैं तो क्या हुआ। यदि कभी मन्दिरों के विषय में दस्तन्दाजी करेंगे तो—याद रखिये—सारी काशी इनके साथ 'डाटे पै नव नीच' सिद्धान्तानुसार व्यवहार करेगी।"

"ठीक यही बात मुझे भी" एक ओर से नये विचार वाले किसी युवक की आवाज़ आयी—"कुछ परिवर्त्तनों के साथ कहनी है। ये पुराने विचार के पवित्र-पशु यदि अब अधिक इन सार्वजनिक देवताओं और मन्दिरों के विषय में दस्तन्दाज़ी करेंगे तो—याद रखिये—सारी काशी और उसके ग़रीब-मनुष्यता-प्रेमी पोगों के साथ 'डाटेपै नव नीच' सिद्धान्तानुसार व्यवहार करेंगे। समझे कूपमंडूक जी!"

इस पर उस भीड़ में बड़ा हो-हल्ला मचा। वह कूपमंडूक जी लगे तलाशने उस उद्दण्ड वक्ता को। चारोंओर और दोनों पक्ष से ले-दे की आवाजें आने लगीं। यह तो कहिये पुलीस ने समय पर

पधार कर उन्हें तितर-बितर कर दिया। फिर भी, पवित्र सनातनी लोग अछूत समर्थकों की मा-बहनों को वेद-विहित मन्त्रों के साथ स्मरण करते हुए और यह कहते हुए इधर-उधर चिल्ल-पों मचाने लगे कि—मारो इन साले भंगी समर्थकों को। अब बिना युद्ध किये हमारे धर्म और जाति और मन्दिरों का कल्याण नहीं।

: ४० :

राइट का पत्र

उस दिन अपने बँगले पर औघड़राज के आते ही पादरी जानसन ने पूछा—

"कोई नई खबर है?"

"नयी ख़बर क्या, अभी दोनों दल अपने-अपने स्थान पर अड़े हैं। न हमीं लोग झुकने के लिये तैयार हैं और न यहाँ का दुष्ट समाज और उसकी समर्थक सरकार ही।"

"शहर की सफ़ाई की क्या व्यवस्था हुई है?"

"अभी तक कुछ भी नहीं। सड़कें ज्यों-की-त्यों गन्दी हैं। कहीं-कहीं पर अमीर और रोज़गारी और अधिकारी दूसरे ग़रीबों याने नौकरों की सहायता से सफ़ाई करा रहे हैं; मगर, केवल छोटी-छोटी जगहों—दफ्तरों, थानों और दूकानों की। सड़कें और पाख़ाने तो ज्यों-के-त्यों हैं।"

"इधर दो-तीन दिनों से बुधराम का कोई पता नहीं। क्या वह प्रचार के लिए कहीं बाहर गया हुआ है?"

"नहीं—वह बहुत बीमार है। मालूम पड़ता है, अब उसका समय पूरा हो चला है। शक्ति रहने पर ज़रूर वह तपस्वियों की तरह अपनी जाति के हितार्थ उद्योग और परिश्रम करता है, पर, राधा के लापता हो जाने से मानों उसके प्राण ही शिथिल पड़ गये हैं। जबसे वह ग़ायब हुई तब से अब तक बराबर वह एक बार

रोज़, गिड़गिड़ाकर अपनी रधिया के लिए मुझसे प्रार्थना करता है। मगर, उसका कहीं पता चले तब तो?"

"आपको भी पता नहीं चलता! आपके बारे में तो, सुना है, आप सब कुछ कर सकते हैं। फिर, बुधुआ की बेटी ही के खोजने में आप..."

बात काटकर अघोड़ी ने कहा—"गुरू की कृपा से अवश्य कुछ भी असम्भव नहीं। पर मैं यह भी तो जानता हूँ कि उसका अन्त बहुत निकट है और मुझे, मरने के पूर्व ही, उससे दलितों के हित के कई आवश्यक काम भी तो लेने हैं। इस समय राधा के खोजने से अधिक ज़रूरी कार्य है इन की हड़ताल सफल करना।"

"मगर," ज़रा गम्भीर स्वर से वृद्ध जानसन ने कहा—"राधा की तो इस वक़्त मुझे ज़रूरत है। मैं भी एक बार किसी-न-किसी तरह उससे मिलना चाहता हूँ।"

"क्यों? क्यों? क्या आपका प्रेम भी उस बच्ची के लिए व्याकुल हो रहा है?"

"प्रेम की कोई विशेष चिन्ता नहीं है," उत्तर मिला—"दुनिया में कितने प्रियों को छोड़ते-छोड़ते और भूलते-भूलते मैं परमात्मा के इन आकर्षक बच्चे-बच्चियों के छोड़ने-भूलने का आदी हो गया हूँ। पर, कोई दूसरा काम भी आ पड़ा है। यह देखिये।"

पादरी ने फ़ाइल से निकाल कर एक विलायती पत्र अघोड़ी के हाथ में दिया। वह पत्र लण्डन से आया था। अघोड़ीराज ध्यान से उसे पढ़ने लगे—

"प्यारे साधु जानसन महोदय!

एक युग बीत गया, मेरी कुछ अमूल्य सन्ध्याएँ आपके बँगले पर—काशी में बीती थीं। उन सन्ध्याओं में, एक सन्ध्या तो बहुत ही महत्वपूर्ण थी। वही जिस दिन वह भयानक साधु उस अनाथ

बच्ची को लेकर आपके बँगले में घुस आया था। ओह ! कैसा तेजस्वी था वह भारतीय महापुरुष। अभी तक उसका चित्र मेरी आँखों में ज्यों-का-त्यों नाच रहा है।

इसके बाद अपने प्रतिज्ञानुसार मैं बराबर, कई पौंड प्रतिमास, उस बच्ची के भरण-पोषण के लिए आपके पास भेजता और उसी व्याज से आप लोगों का कुशल संवाद पाता रहा। आपको स्मरण होगा पिछले दो-तीन वर्षों से आपने मुझसे उस बच्ची के लिए मदद लेना बन्द कर दिया है। और, यह कहकर बन्द कर दिया कि अब उसका बाप अपनी सज़ा भोग कर बाहर आ गया है और वह स्वयं अपनी बेटी का भार सँभालने को तैयार है। आपने यह भी लिखा था कि अब लड़की भी परिश्रम कर अपनी रोज़ी कमाने लायक हो गयी है और यह भी लिखा था कि बच्ची अद्वितीय रूपवती, गुणवती, और तेजस्विनी है। आज मैं उसी बच्ची के बारे में आप से कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।

इधर देहातों में प्रभु के सन्देशों का प्रचार कर पिछले सप्ताह जब मैं लण्डन लौटा तब एक दिन एक चर्च में एकाएक काशी के उन्हीं भूतपूर्व सेशन जज मिस्टर यङ्ग से भेट हुई। इतने दिनों बाद भेट होने पर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई और मिस्टर यङ्ग की पिछली कहानी सुनकर तो मुझे बड़ी ही खुशी हुई।

अपनी उन्मत्त पत्नी की परम स्वतन्त्रता से घबरा कर और अवकाश ग्रहण कर जब उस बार मिस्टर यङ्ग विलायत आये, तो फिर लौटकर अपने पद पर नहीं गये। स्त्री को तलाक़ देने के बाद उनका जी कुछ उचट-सा गया। इसी से उन्होंने वहीं से पद-त्याग कर दिया। बाद को, अपनी कमाई हुई सम्पत्ति से, उन्होंने लण्डन में कोई छोटा-मोटा व्यापार कर लिया। दैवकी गति, उस व्यापार से मिस्टर यङ्ग को छप्पर फाड़कर धन मिला। और आज, बारह-पन्द्रह बरस बाद, वह उसी व्यापार के प्रभाव से कई लाख के

आदमी कहे और माने जाते हैं।

मगर, न जाने क्या मन्त्र फूँक दिया था उस भयानक साधु ने मिस्टर यङ्ग पर कि अब दुनियावी कामों में उनका जी ही नहीं लगता। इतने रुपये पैदा करते हुए भी और यहाँ के नारकीय समाज में रहते हुए भी, वह पुनः किसी स्त्री के रूप या यौवन जाल में नहीं फँसे। उनका जीवन ऐसा सादा और तपस्वियों-सा है कि वह व्यापारी से अधिक धर्म-प्रचारक मालूम पड़ते हैं। कहा तो, उनमें वह परिवर्त्तन देखकर मैं दंग रह गया।

हाँ, उस दिन उन्होंने मुझे एक ऐसी बात सुनायी जिसे सुनकर मैं आश्चर्य से उनका मुँह ताकने लगा। उन्होंने कहा कि वह कुछ धन और एक छोटा-सा मकान लेकर फ्रान्स या इटली के किसी समुद्र-तट पर एकान्त वास करना चाहते हैं और अपनी वह कई लाख की सम्पत्ति किसी को दे देना। और वह भाग्यशाली व्यक्ति दूसरा नहीं—आपकी वह पालिता बालिका राधा ही है। मिस्टर यङ्ग ने मुझसे प्रार्थना की है कि मैं आपसे यह निवेदन करूँ कि यदि आप कृपा कर उस लड़की को उन्हें देने का प्रबन्ध करते तो बड़ा उपकार होता। उनका कथन है कि, न वह लड़की होती और न उन्हें उस मनस्वी भयानक के दर्शन मिलते। अस्तु, सन्तान के अभाव में वही उनकी उत्तराधिकारिणी क्यों न बने? अस्तु, यदि आप उसके बूढ़े बाप से उसे दिलवा सकें, तो यङ्ग को बड़ी ही खुशी होगी। आप ज़रूर-ज़रूर समझा-बुझाकर उसे यङ्ग की पुत्री बनवा दें। आवश्यकता होगी तो वह वीर हत्यारा बुधुआ भी उसके साथ यहाँ आ सकेगा।

हाँ, दो शब्द मिसेज यङ्ग—जो काशी में बदनाम थी—के बारे में भी लिख देने को जी चाहता है। मिस्टर यङ्ग से अलग होने के बाद—उन्हीं का कथन है—वह बहुत दिनों तक फ्रान्स में रहीं और खूब खुलकर खेलती रहीं। पाजीपने में वह बे-जोड़ थीं

एक ज़माने में; इसके बाद वह बर्लिन चली गयीं। वहाँ बहुत दिनों तक तो वह एक कपड़े धोने के कारखाने में, उसके पुरुष स्वामी को फाँसकर, साझे में काम करती रहीं, और अपने उद्धत सिद्धान्तों के प्रचार के लिये ज़मीन तैयार करती रहीं। अब, उनकी एक समिति हो गयी है। यद्यपि वह युवती नहीं, फिर भी, उनके उन्मादों का अन्त नहीं। उनकी उस समिति में जर्मनी और दूसरे युरोपीय देशों की अनेक बिगड़ी औरतें और रानियों-सी अनेक अमीर औरतें शामिल हो गयी हैं। शायद भारत में भी यह संवाद पहुँचा हो—ज़रूर ही पहुँचा होगा—उनकी वह समिति विचित्र है। उसके सभी सदस्य, चाहे पुरुष हों या स्त्री, उस समिति के विशेष स्थान में नंगे-नंगे घूमा करते हैं। वह पुरुषों को अपनी पशुवृत्ति की सन्तुष्टि के बाद कुछ भी महत्व नहीं देतीं। ऐसे-ऐसे सैकड़ों उच्छृङ्खल नियम हैं उस संस्था के जिसका मैं इस पत्र में वर्णन भी नहीं कर सकता। यह है उस स्वतन्त्रता की दुरुपयोगिनी स्त्री का इतिहास। पहले मिस्टर यङ्ग—वह स्वयं कहते थे—उसकी लीलाएँ सुनकर खीझा भी करते थे, यद्यपि उनका उससे कोई सम्बन्ध नहीं था। मगर, अब वह धीरे-धीरे रीझ-खीझ से परे हुए जा रहे हैं। रूप और रुपये और मान और अपमान से ऊपर उठ रहे हैं। सच्चे ईसाइयत के पथ को ढूँढ़ रहे हैं अथवा सत्य-मार्ग को खोज रहे हैं।

मरने के पहले एक बार मेरी भी इच्छा है कि संसार के पैग़म्बरों की जननी पूर्व-वसुन्धरा के एक बार फिर दर्शन करूँ। राधा के लिये मिस्टर यंग भी काशी आने को तैयार बैठे हैं। हम लोग दूसरे ही मेल जहाज से रवाना हो रहे हैं। सीटें रिज़र्व हो गयी हैं। अतः आप उत्तर न देकर हमारी प्रार्थना को पूरी करने की चेष्टा कीजिये—कृपया।

हमें अब अपने पास पहुँचा ही समझिये। विशेष मिलने पर—भूलियेगा नहीं।

आपका वही सेवक
(रेवरेण्ड) राइट।"

४१

अबला राधा!

उन सब उन्मत्त शराबियों और उस मर्दानी औरत के चले जाने पर भी व्यथिता राधा, बहुत देर तक तूफ़ानी विचारों में पड़ी जहाँ-की-तहाँ खड़ी रही। उस समय उसका माथा चक्कर खा रहा था, उसके कलेजे की धड़कन बन्द-सी हो गयी थी, उसे ऐसा मालूम पड़ता था मानो धीरे-धीरे बेहोशी उसे अपनी गोद की ओर खींच रही थी। सचमुच, वह क्षणभर बाद वहीं, कटे रूख की तरह, धम्मसे गिर पड़ी। बग़ीचे का नौकर अभी वहीं खड़ा था और माली उन दुष्टों को बाहर कर फाटक बन्द करने गया था। जब नौकर ने राधा को गिरते देखा तब घबरा उठा और जल्दी से पुकारा उसने माली को। उसके आ जाने पर दोनों ने सहारे से राधा को उठाकर कमरे में उसके पलंग पर लिटा दिया। माली समझदार था, उसने नौक को बतलाया कि थोड़ा गुलाब-जल माथे पर सींचने से उसकी संज्ञा शीघ्र ही लौट सकेगी। सुगन्ध और इत्रों की वहाँ कुछ कमी तो थी ही नहीं। फ़ौरन राधा के माथे पर गुलाब-जल डाला गया। माली पंखा झलने लगा।

इस बार आँखें खोलते ही, रुखाई-भरी शीघ्रता से, उसने नौकरों को वहाँ से भाग जाने को कहा। उसकी आज्ञा का पालन तुरन्त ही हुआ। एक-बार वह बँगला एकान्त हो गया। एक बार वह पुनः अपने और अपने प्रियतम के प्रेम-पुराण का उद्धरण

करने लगी। ऐसे हैं घनश्याम!—वह विचारने लगी—यह इस तरह सीधी-सादी मुझ-सी-स्त्रियों को ठगा करते हैं? इन्हें दो-रुखा नाटक खेलने का अभ्यास है! ऊपर से प्रेम करने का दम भरते थे, मानो दुनिया में मेरे सिवा उनका कोई था ही नहीं और भीतर यह मल छिपा था? वह इतनी रात तक उस—उस मुँह-जली के साथ शराब-कबाब करते रहे? तो इस दरमियान में जब-जब वह यहां नहीं आये तब-तब यही काम करते रहे? यही उनका वह व्यापार है जिसका नाम लेकर मुझे नीचा-ऊँचा समझाया करते थे? उफ! इन्होंने इस तरह मुझे ठगा?

इसी समय एकाएक उसे गुलाब और उसके घण्टेभर पूर्व के दुर्व्यवहार का ध्यान आया। ओह! कैसा पाजी था वह राक्षस। कितना अपमानित किया उसने मुझे। और किस तरह सस्ते—ऐसा अनर्थ करने पर भी वह छूट गया। उस समय यहाँ ऐसा एक भी आदमी नहीं था जिसने उस शैतान पर पिस्तौल का वार कर उसकी जिन्दगी का बेड़ा ग़र्क कर दिया होता। उसने मुझे बाज़ारू औरत समझा, उसने मुझे आवारा समझा, तभी तो उसकी ऐसी हिम्मत पड़ी! आह! आज मैं इस धोकेबाज पुरुष के प्रेम में पड़ने के कारण आवारा हो गयी—वेश्या हो गयी? मैं?—जिसके बाप ने अपनी औरत पर ज़रा आँच आते ही दो-दो खून कर डाले थे! हाय! न हुए आज मेरे फ़ादर। वह बूढ़े थे तो क्या, दुबले थे तो क्या और इन पापियों के मुक़ाबले में निर्धन थे तो क्या—यदि उनके सम्मुख मेरा ऐसा अपमान हुआ होता तो इस गयी-गुज़री अवस्था में भी वह क्या न कर गुज़रते। हायरे! मैंने ऐसे बाप को छोड़ और ऐसे पाप को अपनाकर कितनी बड़ी भूल की!

अब वह आँचल में मुँह छिपाकर फूट-फूट कर रोने लगी। जितना ही वह विचारती उस दिन की घटना पर और जितना

ही उसे घनश्याम की प्रतिज्ञाओं और कुछ दिन पूर्व के प्रेमोपचारों की याद आती, वह उतना ही अधिक व्यग्र और व्यथित होकर आँसू बहाती। देखते-देखते आँचल भींग गया, तकिया तर हो गया और हिचकियों का ताता बँध गया। उसे ऐसा मालूम पड़ने लगा मानो यही रोदन उसके लिये चिर रोदन होगा।

जिस समय राधा इस तरह बिलखने लगी उससे थोड़ा पूर्व ही घनश्याम जी के होश ठिकाने आ गये थे। शायद पिछली रात की काँपती हवा ने उसकी बेहोशी के पैर भी कँपा दिये। जो हो, होश में आते ही धूर्त घनश्याम की समझ में सारी परिस्थिति आ गयी। वह समझ गया कि आज की उसकी बेहोशी ने उसके सीधे शिकार के होश ठिकाने कर दिये होंगे। उसने एक बार ज़रा उचक कर उस प्रकाश पूर्ण कमरे में राधा के पलङ्ग की ओर देखा। देखा उसने कि वह पलंग पर इस तरह तड़प रही है जैसे फूल की थाली में पारा। उसकी समझ में सारा रहस्य आ गया। वह सोचने लगा कि, बस, अब गयी यह चिड़िया हाथ से। मगर, कितना सुख दिया इसने। यह जबतक यहाँ पड़ी रहती है मुझे ऐसा जान पड़ता है मानों कोई ज़र-ख़रीद बाँदी पड़ी है—जभी जी हुआ, दालमण्डी न जाकर, यहीं चला आता हूँ। अभी यदि कुछ दिन और यह इसी मृगमरीचिका में रहती—अभी एक बार और इसे फँसा रखने की कोशिश करूँ।

वह धीरे से उठा अपने पलंग से। उसे अनुभव हुआ कि अब भी उसके माथे में नशे की भागती सेना के कुछ लड़खड़ाते सैनिक थे। फिर भी, कोई चिन्ताजनक बात नहीं थी। अब उसे होश काफ़ी था।

बिलखती और तड़पती राधा ने एकाएक अनुभव किया मानो पीछे से किसी ने उसे अपनी छाती में चिपका लिया हो। वह एक

बार फिर उत्तेजित होने ही को थी—गुलाब का स्मरण कर—कि उसके कपोलों पर, कुछ परिचित अँगुलियाँ, उसके गर्म आँसुओं को चूमने लगीं। अब की वह, उस घोर व्यथा में भी, झन्न-से बज उठी! उसे रोमांच हो आया। पर, यह सब केवल एक ही क्षण के लिये हुआ। उस रोमांच के पीछे ही, उन प्यारी अँगुलियों के उस धूर्त संचालक के विरुद्ध—घृणा की सेना भी उमड़ आयी।

इसी के कारण तो आज मैं इस व्यथा में लपेटी गयी हूँ। इसी के कारण तो मेरा घर द्वार और प्यार भरा संसार मेरी पहुँच के उस पार हो गया है। इसी के कारण तो उस हरामज़ादे ने, ज़रा पहले, मेरा घोर अपमान किया था, इसी के कारण तो वह वेश्या मुझे अपनी सौत पुकार गयी है—आह!—यह पापी, यह छलिया!

वह चमक कर चम्म से उठ बैठी और धम्म से पलँग के नीचे आ रही—

"दूर रहो!" उसने क्रोध से कहा—"तुम्हारे मुँह से शराब की बू आती है।" तुम्हारे बदन से व्यभिचार की बू आती है।"

घनश्याम ने सोचा यह तो हमेशा ही की तेज़तर्रार है। इस तेज़ी को भी 'मान' ही की लाइन में रखना चाहिये। वह बनावटी चापलूसी कर चला—

"ऐसी नाराज़ी...बापरे! तुम तो काटने दौड़ रही हो। आख़िर इसका सबब?"

"सबब?" राधा ने रोते-रोते कहा—"तुम्हीं मुझसे सबब पूछते हो? इसका सबब अपनी धोकेबाज़ी से, दग़ाबाज़ी से, शराबबाज़ी और रण्डीबाज़ी से क्यों नहीं पूछते? मेरी माँ! ऐसे पापी तुम निकले घनश्याम! ऐसा तुमने मुझे लूटा घनश्याम! ऐसे मतलबी, ऐसे दुराचारी और ऐसे मीठे ठग हो तुम घन-

श्याम ! आह ! तुमने तो मेरी दुनिया ही में आग लगा दी !"

शराब के उतार के खीझे घनश्याम ने अनुभव किया कि राधा गम्भीरता से बातें कर रही है। क्यों ? इतना गम्भीर होने की क्या जरूरत है ? मैंने इसके प्रति दुर्व्यवहार किया ही क्या है ? भंगिन की लड़की को अपने बाप-दादों के बाग़ में—आधी दुनिया से झूठ बोलकर—लाकर टिकाये हूँ, रानियों-सी रखता हूँ और इसका पुरस्कार यह मिल रहा है कि मैं ठग हूँ। मुझे यह ठग कहती है। यह होती मेरी कौन है। मैं इसे समझता ही क्या हूँ।

"ज़्यादे टिर्र-टिर्र न करो !" उन्होंने पुरुष और ज़बरदस्त के स्वर में कहा—"क्या मैंने तुम्हें ठगा है ? कौन-सा बैंक अपने पर्स में रखकर तुम आयी थीं कि मैंने ठग लिया ? मैं शराब पीता हूँ—पीता हूँ। तुमसे मतलब ? मेरी और भी वेश्याएं हैं—हों—तुम कौन हो बोलने वाली ?"

"ठीक कहा तुमने," अब उसने रोना बन्द कर दिया—"ठीक कहा तुमने, मैं कौन हूँ बोलने वाली। ग़रीब को बोलने का क्या अधिकार है ? लुटों को बोलने का क्या अधिकार है—बापरे !—ये तुम्हारी वही मीठी और रसीली आँखें हैं जिन्होंने मेरी आँखों की किरनों को चूम-चूमकर वफ़ादार रहने की प्रतिज्ञाएँ की हैं ? ऐसी आँखें भी बना सकता है पाजी पुरुष। ऐसा तोतेचश्म भी होता है नीच पुरुष। बस, बस, मैं कौन हूँ—हायरी माँ!—मैं कौन हूँ !"

इसके बाद वह बिजली की तरह कमरे के बाहर निकल गयी। घनश्याम ने भी उसे रोकने या बुलाने की चेष्टा नहीं की। वह उठे ही नहीं उस पलंग से। सुबह हो गया, धूप निकल आयी, कमरे का वातावरण गर्म हो चला। फिर भी, न तो उस कमरे में वह ग़रीब औरत ही आयी और न वह अमीर पुरुष ही उस पलंग और कमरे के बाहर हुआ।

: ४२ :

घोषणा

दलितों के आन्दोलन के सिलसिले में लगातार आठ-दस महीने तक घोर परिश्रम करने के कारण और पूरे आठ महीने से अपनी रधिया के लिये दिन रात लंबी साँसें लेते रहने के कारण बुधुआ उसी समय बुरी तरह बीमार पड़ गया जिस समय, उस आन्दोलन के लिये, वह बुरी तरह आवश्यक था।

वह बनारस के भंगियों की हड़ताल का बीसवाँ दिन था। सन्ध्या होने में अभी दो घण्टे की देर थी। अछूताश्रम के भंगियों में भरपूर हलचल थी। अभी तक कोई सममौता नहीं हो सका था। एक जगह कुछ भंगी खड़े आपस में दूनकी ले रहे थे। मगर, इनसे परिचित होने के कारण ही कोई अब इन्हें भंगी कह सकता है। नहीं तो, इनके बाल साफ़ कटे हुए हैं, इनकी कमर में साफ़ धोती या पायजामा है और शरीर पर मोटे गाढ़े का कुरता। इनके चेहरों से ऐसा भी प्रकट होता है मानो यह रोज़ ही स्नान करते हैं। इधर-उधर आते-जाते बच्चों और माताओं की ग़रीबी भी पवित्र और स्वच्छ दिखाई पड़ती थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह सब मनस्वी मनुष्यानन्द और अछूताश्रम और सत्यवान स्वयंसेवकदल और उस अमीर दाता के रुपयों का प्रताप था। पर कैसी सुखद थी सदियों के उन अपवित्रों की वह पवित्रता।

"अब तो," एक भंगी ने दूसरे से कहा—"चाहे हमारी सारी शर्तें स्वीकार भी कर ली जायँ, पर, मैं तो झाड़ू और टोकरी के नज़दीक नहीं जाऊँगा। मुझे तो बस एक ही महीने में बेतकी कुर्सी बनाना आ जायगी। ख़ूब जल्द-जल्द सीख रहा हूँ। और जब हमें एक अच्छी कारीगरी आ जायगी तब भला मैला कौन 'झकुआ' फेकेगा।"

"मगर ऐसा नहीं भाई" एक दूसरे ने कहा—"यह सब जो हुआ या हो रहा है वह ऊँच जात वालों ही की कृपा से तो ! ऐसी हालत में हमें अत्याचार न करना चाहिये। अब लक्षण ऐसे दिखाई पड़ रहे हैं कि एक-दो को छोड़ हमारी शेष सभी शर्तें यहाँ के ऊँच और अफ़सर मान लेंगे और अगर हमारी शर्तें मान ली गईं तो ज़रूर हमारे बहुत से कष्ट दूर हो जायँगे।"

"क्यों नहीं दूर होंगे," तीसरे ने कहा—"अब तो आधे से ज्यादा शहर हमें तिगूनी मज़दूरी देने तथा म्युनिसिपैलिटी सात की जगह सोलह रुपये महीने देने को और हमारे बच्चों को स्कूल तथा हमारे लिये घर तक बनवा देने को तैयार है। कहाँ का कम है यह। अब हमें मान जाना चाहिये और शहर वालों का वातावरण पवित्र कर डालना चाहिये।"

"अभी नहीं," पहले ने कहा—"लोहा जब खूब गर्म हो तभी उसे भरपूर ठोंक-पीट कर सीधा कर लेना चाहिये। अभी हमारे लिये मन्दिरों के द्वार तो वे खोलना ही नहीं चाहते। और क्यों नहीं चाहते ? इसी लिये न, कि हम उनके पाख़ाने साफ़ करते हैं ? आग लगे इन पापियों के पाख़ानों में ! नष्ट हो जायँ इनकी विषमता-भरी गलियाँ और सड़क ! प्रलय हो जाय शंकर की इस काशी में, पर, हम कदापि पाख़ानों के पास न जायँगे। क्यों साफ़ करे आदमी का पाख़ाना आदमी ? जिसका मल हो वही उसको फेंकता भी क्यों नहीं ? अपने पापों की गठरी दूसरे के सिर पर लाद कर आदमी किस अधिकार से सुखी होना चाहता है ? हम अब मैला नहीं फेंकेंगे—छिः ! छिः !! बड़ा गन्दा काम है। इसी से हमारा लोक और परलोक दोनों बिगड़ता है। हम अघोड़ी बाबा के चेले हैं—उनके कथनानुसार हम अनजाने देशों में जाकर और कुली का काम कर रोजी पैदा करेंगे और साफ़ और ईमान-दार और 'पवित्र'—वही पवित्र जो हमें ईश्वर के निकट तक

नहीं जाने देते, मानो परमात्मा को उन्होंने अपने ही लिये रिजर्व कर लिया है—रहा करेंगे।"

इसी समय एक भंगिन ने आकर उन बातूनियों को सूचना दी कि—"ज़रा चौधरी की झोपड़ी की ओर तो चलो। उनकी हालत ख़राब है। उन्हें बाई चढ़ आयी है।"

जब तक वे भंगी बुधुआ की अछूताश्रम वाली झोपड़ी के पास पहुचे तब तक उसे दूसरे दलितों ने घेर लिया। वह झोपड़ी भीतर और बाहर से ठसाठस भर गयी। अपने अगुआ की वह हालत देख सभी व्यग्र भी हो उठे और रो भी पड़े। बुधुआ एक खाट पर पड़ा न जाने क्या-क्या—बेहोशी की हालत में—बक रहा था। फ़ौरन कई दलित अघोड़ी की झोपड़ी की ओर दौड़े जो आश्रम के दूसरे सिरे पर थी। जब औघड़राज वहाँ आये उस समय बुधुआ बेहोशी में रो रहा था और बक रहा था—

"मेरे पाप—मेरे पाप! कितने पाप और भोगने को हैं स्वामी! यह क्या है? रधिया की माँ का सतीत्व-हरण? उफ़ यह क्या उसका और उस पुरुष का ख़ून है—क्यों? क्यों? क्यों? ये शकलें क्यों इस तरह मेरी ओर गुरेर रही हैं?

"अरे! अरे!! यह तो नैनी जेल है। और यह कौन है? मैं ही तो—? बुधुआ ही न? कैदी नम्बर ३६५ ही न? अरे, मैं जेल में सोया भी हूँ और अपने को देख भी रहा हूँ—कैसा तमाशा है? रधिया! राधे! मैं पागल हो गया हूँ मेरी बेटी। तू कहाँ है? ज़रा मेरे गुरू अघोड़ी बाबा को तो बुला! मैं मर रहा हूँ मेरी रानी। अरे, तू तो सुनती ही नहीं, कहाँ भागी जाती है—कहाँ भाग गयी री? अरे भगवान, इस बूढ़े, इस अनवलम्ब और असहाय हृदय को उजाड़ कर तू कहाँ भाग गयी बेटी! क्या तेरे इस भागने के लिये ही मैं जेल से, एक पाप कर, छूट भागा था। तेरे लिये मैं पाप कर जेल से दौड़ा-दौड़ा प्यारी दुनिया में आया

और तू ठगिनी मेरी सारी दुनिया में आग लगाकर भाग गयी! हे भगवान! मैंने तेरे लिये पाप क्यों किया?

"मेरा पाप!...बैरक में सन्नाटा था, क़ैदी 'नाइट वाचमैन' ऊँघता-ऊँघता सो गया था, बाहर वार्डर भी निश्चिन्त भाव से 'अरगड़े' से टिककर नाक बजा रहा था। आह! उस समय सभी सो रहे थे, पर, मुझ पापी प्रेमवंचित प्राणी की आँखों में नींद नहीं थी। मैं तो परमात्मा को भूल उस लड़की को सोच रहा था जो बाहर की दुनिया से मुझे अपनी ओर खींच रही थी। उसी समय—उसी समय—उसी समय! किधर से खर्र-खर्र की आवाज़ आयी? मैंने क्यों देखा उठकर—कुछ सोच कर मैं क्यों काँप उठा एक बार?

"बापरे! मैंने क्यों हल्ला मचाया—क़ैदी भाग रहा है? मैंने क्यों वार्डर को दिखलाया कि देखो 'झिरी' कटी है—भागने के लिये सेंध लगी है। क्यों 'पगली' बजी, क्यों वार्डरों की पलटन टूट पड़ी सारे जेल पर, क्यों मेरी बैरक बन्दूकों से घेर ली गयी?

"आह! आह!! किस बेदर्दी से उस क़ैदी और उसके साथियों को—मुक्ति के उस प्रयत्न के लिये—दूसरे क़ैदी और जमादार पीट रहे हैं। डण्डे ऐसे बरस रहे हैं मानो वह प्राणी नहीं पत्थर है। वे गट्ठर की तरह इधर-से-उधर लुढ़का-लुढ़का कर पीटे जा रहे हैं! आह! मैंने यह क्या किया—मेरा कलेजा क्यों काँप रहा है?

"मैं छोड़ दिया गया—किस लिये?—इसलिये कि मैंने उन ग़रीबों को, इसी छोड़ दिये जाने के लिये, बुरी तरह फँसा दिया! और किस लिये वैसा किया मैंने—अपने कर्त्तव्य के लिये? नहीं, नहीं, नहीं। अपनी प्यारी रधिया को गोद में लेने के लिये, छाती से लगाने के लिये—अपने हृदय के सिंहासन पर रानी बनाकर बैठाने के लिये। इसी खूबसूरत—पर हाय व्यर्थ!—सुख के लिये

उन मुर्दों को और भी मरवा डाला। हाय! कहाँ गया मेरा वह सुख? कहाँ गयी मेरी वह रानी? भगवान! वह क्यों मुझे छोड़कर चली गयी? मैंने उसे कितने महँगे दामों में पाया था?"

बुधुआ फिर बिलखने और तड़पने लगा। उसके आसपास खड़ी औरतें और बच्चे भी अपने चौधरी के लिये कलप उठे। अघोड़ी का भी आसन हिला। वह करुणभाव से उसकी ओर बढ़ा। एकाएक उसकी आँखें ज्योतिर्मयी हो उठीं। उसने व्यथित बुधुआ पर अपना रूखा हाथ फेरा।

आश्चर्य! उसका तड़पना बन्द हो गया। अघोड़ी के इशारे पर किसी ने उसके मुँह में थोड़ा जल डाला। उसने आँखें खोल दीं--

"गुरू महाराज!"

"बुद्धू—बुधराम—बुधुआ?"

"जरा चरन दो स्वामी! अब मैं जाने वाला हूँ।"

"तेरी मुक्ति में और भी कोई इच्छा बाधक हो रही है? हो तो बोल वह क्या है?"

बुधुआ की आँखें फिर भर आयीं—"महाराज, रधिया को एक बार...!" वह अपनी बात पूरा न कर सका।

"अच्छा, आवेगी रधिया। और कुछ?"

"और एक बार विश्वनाथ बाबा के दर्शन करना चाहता हूँ स्वामी! कभी उन्हें भर आँख नहीं देख पाया हूँ--बड़ी इच्छा है, बड़ा लोभ है।"

दलितों का दल स्तब्ध होकर अघोड़ीराज का मुँह ताकने लगा। भला चौधरी की इस बात पर 'बाबा' क्या कहते हैं? विश्वनाथ मन्दिर में घुस जाना कोई बाबा के हाथ की बात तो है नहीं।

मगर, अघोड़ीराज का तेजस्वी और भयानक मुख बुधुआ

की इस इच्छा के पक्ष ही में खुला। उन्होंने जलद गम्भीर स्वर से कहा—

"एवमस्तु !"

: ४३ :

बाबा विश्वनाथ की जय !

"किधर जा रहे हो ? किधर जा रहे हो ?"

"मोगल सराय,"

"अरे ! तुम मोगल सराय जा रहे हो ? कौन-सा जरूरी काम है वहाँ, जो आज अछूतों का जुलूस छोड़कर भागे जा रहे हो ?"

"कैसा जुलूस ? मुझे तो कोई पता नहीं। इधर तीन दिनों से मुझे अछूतों की हड़ताल की कोई खबर नहीं। कोई फ़िक्र भी नहीं मुझे। पक्के मुहाल में रहता हूँ, पाखाने बहौवे हैं। रहा घर और दरवाजा और अपने सामने की गली, सो उन्हें हम अपने ही हाथ से साफ़ कर लेते हैं। कूड़ा कम-से-कम उत्पन्न होने देता हूँ और जो होता ही है उसे तीन दिन इकट्ठा करता हूँ और चौथे दिन स्वयं, बोरे में बन्द कर, माता गंगा की बीच धारा में प्रवाहित कर आता हूँ। शहर के बोलते मलहरों (भंगियों) ने हड़ताल की है। मगर, वह मूक भव-मल-हारिणी तो ऐसी अनोखी है जो रीझ खीझके फेरमें पड़ अपनी पवित्र गति कभी बदलती ही नहीं। मगर, ख़ैर, तुम जुलूस की बात कह रहे थे।"

"अरे हाँ—आश्चर्य की बात तो यही है कि शहरकी इस गर्म चर्चा का अभी तुमको पता तक नहीं। यही तो भंग भवानी के उपासकों की विशेषता या 'घर-के-जाने-मर-गये-और-आप-नशे-के-बीच'-ता है। ख़ैर सुनो। शहर में आज बड़ा तहलका है। कहा जाता है कि अछूतोद्धारकों और अघोड़ी मनुष्यानन्द के उद्योग से आज प्रातः १० बजे अछूतों का एक बड़ा भारी जुस गाजे-बाजे

से निकलेगा, क्योंकि, मरणोन्मुख भंगी सरदार बुधुआ, बाबा विश्वनाथके दर्शन करना चाहता है। और क्योंकि, अघोड़ीने, अपने बाहुबल पर, उसे दर्शन करा देने का वरदान दिया है। पुरोहित और पण्डे और सनातनी और ब्राह्मण दल इस विषय पर ऐसा क्षुब्ध है जैसा समुद्र तूफ़ान के वक्त होता है।

"मगर अघोड़ी से कौन लड़ेगा? चाहे लोग उसका समर्थन न करें; मगर, उसके प्रताप से तो हजारों का भला हुआ है इस काशी में। मैंने स्वयं देखा है, वह अग्नि की तरह तेजस्वी महात्मा है। उसकी इच्छा के विरुद्ध उसके सामने जाना कम-से-कम सब का काम नहीं हो सकता।"

"लोगों ने मैजिस्ट्रेट और पुलीस तक यह बात पहुँचा दी है, सुना है आज दल-बल सहित सुपेरेण्डेण्ट पुलीस और कोतवाल बाबा के मन्दिर और घाटों पर पहरा देंगे।"

"क्यों?"

"क्यों! इसलिये कि यदि अछूत-दल मन्दिर में घुसने की चेष्टा करे और मार-पीट की नौबत आवे, तो सरकारी सुधार-घाती सारी रामायण हो जाने के बाद, 'कथा विसर्जन...' का कार्य वीरता से सम्पादित कर सकें।"

"लक्षण कैसे हैं? बात तो तुमने अजीब ही सुनायी—अब मैं भी मुगल सराय न जाऊँगा। यही तमाशा देखूँगा। मगर, पहले स्नान लूँगा तब। हाँ, क्या लड़ाई-दंगे की सम्भावना भी है?"

"अरे है क्यों नहीं? कोई खेलवाड़ थोड़े ही है, यहाँ के 'तीर्थ रक्षकों' के रहते मन्दिरों को 'मनुष्यों' के लिये खोल देना। कई सौ आदमी, अछूतों और उनके उद्धारकों की खोपड़ी शुद्ध कर देने के लिये कल शाम ही से डंडे माँज रहे हैं।"

"अच्छा!"

सचमुच उस दिन, सुबह से ही, शहर में केवल इसी अछूतों

के जुलूस की चर्चा थी। कई हज़ार काशीय जनता घाटों पर, विश्वनाथ मन्दिर के आस-पास की गलियों के नुक्कड़ों पर, कोलाहल की कराही कड़कड़ा रही थी। शहर के नये और पुराने दोनों दलों के नेता अपनी एँड़ी का पसीना चोटी तक पहुँचा रहे थे, इस लिये, कि युद्ध न हो—या युद्ध जरूर हो। जुलूस के संयोजकों की ओर से विज्ञापन किया गया था कि दस बजे अछूताश्रम से चलकर अछूत दल दशाश्वमेघ घाट जायगा। वहाँ अघोड़ी के साथ बुधुआ और सारा जुलूस गङ्गा स्नान करेगा और तब मन्दिर की ओर प्रस्थान करेगा। डेढ़सी के पुल के पास पचासों पण्डों का दल, डण्डों से लैस, जुलूस की प्रतीक्षा में खड़ा था। जरा उनकी भी मानसिक परछाईं का निरीक्षण कीजिये—

"अरे, यह तो ग्यारह बज गये! अभी तो जुलूस का पता नहीं।"

"शोर न करो! सुनो! बाजा-सा सुनायी तो पड़ रहा है। वह अघोड़िया मानेगा नहीं। जरूर आवेगा।"

"अरे; तो आज लाशें भी उठ जायँगी। हम अपने जीते-जी बाबा के मन्दिर को अशुद्ध न होने देंगे। यह हमारी रोजी की समस्या है। इसी तरह समाज के सभी धुनिये-जुलाहे हमारे तीर्थों पर क़ब्ज़ा कर मनमानी करने लगेंगे, तो हमारी तो लुटिया ही डूब जायगी। ऐसे मौक़े पर अघोड़ी तो अघोड़ी हैं, परमात्मा भी आवें तो, बिना दो-चार डण्डे लगाये हम मानने वाले नहीं।"

एक ओर बाबू तमाशबीन गुरचों-गुरचों कर रहे थे—

"देखते हो! ये डंडे लेकर आये हैं।"

"इसलिये कि एक मरते हिन्दू को ईश्वर के मन्दिर में अपनी मुक्ति के लिये प्रार्थना करने न जाने दें। मानो भगवान ने अपने धर्म के क्रय-विक्रय का इन्हें 'सोल एजेंट' बना दिया है। इस तरह के हिंसावादी क्यों ऐसे पवित्र संस्थाओं की छाती पर कोदो दला

करते हैं ?"

"अरे भाई, उनका भी एक दल है और उनके भी समर्थक हैं। इस शहर में ऐसों ही की अधिकता है जो इन्हीं पंडों के स्वर-में-स्वर मिलावेंगे। और, यह बेचारे भी क्या करें ? इधर सदियों से, हमारे धर्म की परिभाषा ही अधार्मिक हो गयी है।"

"होगा इन का दल शहर में; मगर, मुझे तो ऐसा लक्षण दिखाई पड़ता है कि यदि इन पंडों और पुरोहितों और ब्राह्मणों के कारण भंगियों की हड़ताल जारी रहेगी, तो, शहर के अन्य लोग भी अछूतों के पक्ष में हो जायँगे। क्यों न उन्हें पवित्रता की शर्त पर मन्दिर में जाने दिया जाय ? यहाँ के अनेक घाटस्थ मंदिरों के महादेवों पर कुत्ते बिहार किया करते हैं। तो क्या मनुष्य कुत्ते से भी गया बीता है जो उसे देवता के दर्शनों से वंचित रखा जाता है ? नाश हो इस ढोंग का ! पर...अभी जुलूस नहीं आया। आठ ही बजे से भीड़ और पंडे और सनातनी और पुलिस वाले डटे हैं। मार डाला आज इस अघोड़ी ने भूखों, इन बेचारों को। ज़रा घड़ी तो दिखाओ—ओह ! तीन बज रहे हैं !"

इसी समय डेढ़सी के पुल वाली गली के भीतर से बाजे और जैकार और बम्, बम् की आवाज सुन पंडे सजग होकर खड़े हो गये। थोड़ी देर बाद उन सबने और उत्तेजित भीड़ ने देखा, अनेक स्वयं सेवकों के साथ, दल के आगे, भंगी बुधुआ को कन्धे पर चढ़ाये, रुद्र रूप से, औघड़ मनुष्यानन्द बम् ! बम् !! करते चले आ रहे थे। उनके और बुधुआ के और स्वयंसेवकों के माथे पर भस्म शोभा पा रहा था।

डंडे वाले सनातनी और तीर्थ-रक्षक दहल गये उस भयानक के उस वेश और भाव को देखकर ! उसकी आँखों से मानो तेज की चिनगारियाँ बरस रही थीं। मानो स्वयं भगवान शंकर, बुधुआ को कन्धे पर चढ़ाये, उस जुलूस के साथ भीड़ की ओर

आ रहे थे। देखने वाले उस नज्जारे को इस तरह स्तब्ध होकर देखते रह गये मानों काठ के पुतले हों। धीरे-धीरे जुलूस उस गली के बाहर आया और गोदौलिया से चौक और अलईपुर की ओर बढ़ा।

"मामला क्या है ?" जुलूस के निकल जाने पर एक डंडाधारी ने आँखें मिल-मिला कर पूछा—"नोटिस तो यह थी न कि वे पहले दशाश्वमेध नहाने जायँगे और फिर इधर ही से विश्वनाथ के दर्शन करने ? मगर, यह तो बाबा के मन्दिर ही की ओर से आये। तो क्या बहुतों को धोके में रखकर इन पापियों ने दर्शन कर लिये ? उफ ! कैसा भयानक था वह अघोड़ी ! उस की भुजाएँ ऐसी कसी थीं कि शायद उन पर लोहे के डण्डे भी पड़ते ही मुड़ जाते ! मैं तो, सच कहता हूँ, एक बार झाई खा कर रह गया।"

इसी समय मन्दिर की ओर से अनेक तीर्थ-पुरोहित घबराये-से आये। पूछने पर उन्होंने बताया कि—

"एकाएक सरस्वती फाटक की ओर से, लोगों को आश्चर्य में डालता हुआ, अछूतों का जुलूस मन्दिर में घुस गया और क्षण भर तक वहाँ के रक्षक और पण्डे ऐसे हतबुद्धि रहे कि उन्हें कुछ कर्त्तव्याकर्त्तव्य सूझा ही नहीं। वह होश में आये और सँभले तब, जब जुलूस वहाँ से ग़ायब हो गया। मन्दिर ज्यों-का-त्यों है। वहाँ पर एक भी चीज न घटी है और न बढ़ी है। फ़र्श जैसे का तैसा स्वच्छ है, मानो उस पर किसी के पैर पड़े ही नहीं। बड़ी हलचल मची है वहाँ पर पण्डों में, इसी बात को लेकर कि मन्दिर अपवित्र हो गया या नहीं। कुछ लोगों का कहना है कि अघोड़ी ने मन्दिर की बाहरी परिक्रमा के झरोखे से बुधुआ को दर्शन कराये थे।"

उसी दिन रात को ज्ञात हुआ कि यद्यपि यह निश्चय नहीं हो

सका कि अघोड़ी और अछूतों का दल मन्दिर में घुस गया था, फिर भी, तमाम मन्दिर गोबर से और गोमूत्र से और न जाने किस-किससे अनेक बार धुलवाया गया है। पूजा-पाठ और होम-जाप भी किये गये हैं और, अभी तक, सैकड़ों सनातनी, ईश्वर को पवित्र करने के लिये, एक स्वर से रुद्री का पाठ कर रहे हैं।

जो हो, सारे शहर को यही विश्वास हो गया कि ज़रूर ही अघोड़ी ने बुधुआ को बाबा के दर्शन कराये हैं। उसके तप और तेज के आगे किसी की भी न चल सकी। अब यह पवित्रता की पुकार और देवालय की शुद्धि केवल झेंप मिटाना है। अघोड़ी योगी है—योगी। वह कुछ न करे, यह और बात है, मगर, इच्छा करते ही कर सकता है सब कुछ। साधारण संसारी उसके पथ पर, रोड़ा तो दूर, तिनका भी नहीं डाल सकते!

: ४४ :

यह कौन है?

तेज़ी से कमरे के बाहर आकर वह बावलियों की तरह बाग़ के फाटक की ओर झपटी। मशीन की तरह फाटक की छोटी खिड़की को खोला और दूसरी साँस तब ली जब वह अपने उस हृदयहीन ठग के बाग़ के बाहर हो गयी। बाहर आकर भी वह रुकी नहीं, बिना सोचे-विचारे ही एक ओर बढ़ पड़ी। कोई एक घंटे तक उस समय उसके माथे में केवल एक बात नाचती रही और वह यह कि जहाँ तक हो सके वहाँ तक जल्द उस स्थान, उस वातावरण, उस शहर से वह दूर भाग जाय; जिसमें उसकी सुकुमार आकांक्षाओं का इस तरह निर्दय पददलन हुआ है। जहाँ पर उसका नन्हा-सा-हृदय इस तरह मींड़ा गया है। तेज़ी से चलने के कारण भारतीय ढंग से पहनी हुई उसकी साड़ी रह-रह

कर उसके नंगे पैरों में फसने लगी। एक बार तो वह उलझकर गिर भी पड़ी, जिससे जिसके घुटनों को कुछ पीड़ा भी हुई, पर, उसका उस ओर ध्यान नहीं। वह फिर उठी—वह फिर उसी तरह आगे बढ़ी।

बहुत देर तक चलती रहने के बाद उसे ऐसा मालूम पड़ा मानों सवेरा हो रहा है। अब तक चतुर्दिक का शान्त वातावरण अब चिड़ियों के कलरव से मुखरित हो उठा। नक्षत्रों की मण्डली एक-एक कर नीलनभ के अञ्चल से विलुप्त हो गयी। वह! अब तो, पूरब से, प्रकाश की धारा भी अन्धेरे विश्व की ओर फूट चली। अब तो सड़क पर यत्र-तत्र पथिक भी दिखाई पड़ने लगे जो उसके सामने आते ही एक बार सिर-से-पैर तक उसके विचित्र रूप और वेश को देखने लगते। आखिर, एक पेड़ की छाया में खड़ी हो, प्राण-पीड़क चिन्ताओं में वह डूबने-उतारने लगी। घनश्याम और उसकी बड़ी-बड़ी प्रतिज्ञाओं को स्मरण कर वह फूट-फूट कर रोने लगी। क्या सोचा था उसने उस शरीफ़ प्रेमी को और कैसा विकट रूप उसका दिखाई पड़ा। उसके सारे हवाई किले, गत रात्रि की घटनाओं के झंझावात में, इस तरह ढह गये जिस तरह बालू की भीत। कहाँ उसने सोचा था कि घन-श्याम अपनी सारी सम्पत्ति और सारा हृदय,राग उसके प्रेम मन्दिर के द्वार पर सजा देगा। जिन्दगी भर उसके कोमल और भावुक हृदय की, उसके वीर राजा की तरह, रखवाली करेगा। उसे लेकर कहीं दूर देश में शरीफ़ों की तरह जा बसेगा जहाँ उनके प्रेम में घृणा या वियोग की काली रेखा देखने और ढूंढ़ने वाला कोई होगा ही नहीं। मगर आह! उसे कैसा धोखा दिया गया।

उस पेड़ के नीचे खड़ी-खड़ी उसने घनश्याम के प्रेम की एक-एक बात का स्मरण कर अपनी आँखों के खज़ाने के जीवन मोती बहाये; फिर भी, उसका कलेजा हलका नहीं हुआ। अब वह बैठ गयी वहीं,

और आँचल में मुँह छिपा कर बिलखने लगी। इसी समय एकाएक उसके नंगे पैरों में किसी ठंडी चीज़ के स्पर्श का अनुभव हुआ। उसने आँसुओं से भींगी अपनी लाल-लाल आँखों को बाहर कर और चौंक कर जो सामने देखा तो उसका प्यारा स्पाई उसके चरणों पर, प्रेम-विह्वल भाव से कों-कों करता, लोटता और नाचता कूदता दिखाई पड़ा! उस विपत्तिकाल में स्पाई को और उसके उस मूक-प्रेम को देखकर उसका दिल भर आया। उसने उसे ज़बरदस्ती पकड़कर अपनी गोद में छिपा लिया और फिर रोने लगी।

"अरे तू कहाँ से आ गया रे!" उसने पूछा उससे—"तुझे मेरी विपत्ति का पता कैसे लगा? स्पाई, स्पाई! बोलता क्यों नहीं? तू कहाँ से भागा आ रहा है? फ़ादर कहाँ है?"

मगर, सिवा दुम हिलाने और राधा के अंगों को जीभ से चाटने और नाचने-कूदने के उस मूक-पशु के पास और कोई भी उत्तर नहीं। हाँ, यदि वह बोल सकता, ता ज़रूर अपनी सखी को विरह-व्यथित-स्वर से बताता, कि जबसे वह लापता हुई तभी से उसका हृदय पागल है। अब वह दुर्गाकुंड पर बुधुआ के साथ न रह कर इधर-उधर चारों ओर घूमा और मानो किसी भूली या खोयी वस्तु को सूँघ-सूँघ कर ढूँढा करता है।

धूप निकल आयी। राधा ने सोचा अब यहाँ बैठी रहना ठीक न होगा। फिर वह कहाँ जाय? पापा के यहां? ना, वहां वह कौन-सा मुँह लेकर जायगी? इतने दिनों तक ग़ायब रहने के लिये कौन-सा बहाना पेश करेगी? मगर, फ़ादर के यहां तो वह जा सकती है। वह उसे पाते ही इतना प्रसन्न हो उठेगा, कि कुछ पूछ-ताछ करने का विचार भी उसके मन में न उठेगा। पर नहीं, फ़ादर और पापा दो थोड़े ही हैं। अब उसका मुँह इस योग्य नहीं रहा कि वह उनमें से एक का भी सामना करे।

"तू जा रे !" उसने स्पाई को गोद से अलग कर, सड़क पर आकर आगे बढ़ते हुए कहा—"मैं तो अब मरने जा रही हूँ। सिवा आत्म-हत्या के मेरे लिये और कोई पथ भी नहीं। तू कहाँ तक चलेगा मेरे साथ।"

लेकिन स्पाई ने इस बार अपनी सखी का साथ छोड़ा नहीं। वह बराबर उसी तरह से नाचता-कूदता, दुम हिलता, कों-कों करता और दौड़ता रहा। बहुत देर बाद राधा को मालूम पड़ा मानो वह राजघाट स्टेशन के पास आ गयी। उसने देखा बहुत से राहगीर और एक्के वाले प्रश्नभरी विचित्र आँखों से उसकी ओर निहार रहे थे। मानो वह उन पुरुषों की उन आँखों से डर गयी। उसने अपनी गति तीव्र की, लाइन लाँघ कर वह स्टेशन के उस पार, उस पुराने किले के खंडहरों और भयानक जङ्गल में, आ रही। उसी जङ्गल की ऊबड़-खाबड़ पगडंडी पर वह तब तक आगे बढ़ती रही जब तक एक टूटे खंडहर के पास नहीं पहुँच गयी। वहाँ वह रुकी; क्योंकि, उसके भीतर से किसी के रोने और तड़पने की आवाज उसके कानों में आयी। उसने सोचा यह दूसरा कौन विपत्ति का मारा बिलख रहा है ? जरा देखना चाहिये। यद्यपि वह खँडहर भयानक था, यद्यपि राधा का हृदय सुकुमार था, फिर भी, उस करुण-रोदन के आगे वह एक भी भयानकता और दूसरे की सुकुमारता भूल गयी। बढ़ी उसकी ओर।

अरे ! उसने देखा कोई अन्धा, चिथड़ों के एक बिस्तर पर पड़ा, तड़प रहा था। वह बिस्तर उसी खंडहर की एक अर्ध-टूटी कोठरी में पड़ा था। उसमें अन्धे और बिस्तर के सिवा मिट्टी के कई बर्तन और उनमें कुछ खाद्य सामग्री—आटा, दाल, चावल आदि—भी थी। अन्धे के सिर और दाढ़ी के बाल धुएँ की तरह सुफ़ैद थे, उसकी देह में हड्डी-ही-हड्डी दिखाई पड़ती थी। और, अरे—यह क्या ! उसकी नाक भी कटी थी। वह केवल अन्धा ही नहीं,

नकटा भी था। वह तड़पते-तड़पते चिल्ला रहा था—

"अब खत्म करो ! ए मेरे खुदा ! इस दोजखी जिन्दगी का क़िस्सा अब खत्म करो। बेशक—बेशक, मेरे गुनाह बहुत बड़े-बड़े हैं। बेशक मुझे घुल-घुलकर और तड़प-तड़प कर मरना चाहिये। मैंने सैकड़ों भोले दिल वालों को, अपने मन के शैतान के लिये, ठगे हैं—मगर, मेरे मालिक ! अब तो बहुत सासतें हो चुकीं मेरी। उन गुनाहों के लिये मुझे चार बरसों तक जेल में रहना पड़ा—वही कहाँ का कम था। इसके बाद जब से बाहर आया हूँ तब से मुसीबत ही तो झेल रहा हूँ। मेरे भाई मर गये, उनकी दूकानें नष्ट हो गयीं, हमारा वह गुनाहों का अड्डा मकान भी नेस्तनाबूद हो गया ! अब मेरा कोई सुधलेवा नहीं। अब मैं इधर कई बरसों से भीख पर गुज़र कर रहा हूँ। इतने पर भी तुम पसीजे नहीं मेरे आक़ा ! तुमने मेरी आँखें भी छीन लीं और मुझे उस भिखारी लड़के का गुलाम बना दिया जो चार दिनों से मुझे बीमार छोड़कर न जाने कहाँ ग़ायब है। हाय ! अब मैं क्यों जी रहा हूँ ? आह ! कहाँ है मेरी मौत ?"

उस बूढ़े, अन्धे, कमज़ोर और नकटे के कष्टों को देखकर, उसका रोना सुनकर, राधा अपने दुखों को क्षण भर के लिये भूल गयी। उसे बड़ी दया आयी उस बेचारे पर। उसने पुकार कर कहा—

"बाबा ! रोओ मत ! एक दूसरी दुखिया और भिखारिन तुम्हारी खिदमत के लिये भगवान की इच्छा से आ गयी है। बोलो ! तुम क्या चाहते हो ? तुम्हें क्या कष्ट है ?"

राधा की मीठी बातें ज्योंही उस बेचारे के कानों में पड़ीं त्योंही उसने रोना और तड़पना बन्द कर दिया। उसकी जान-में-जान आयी। मानो उसके खुदा ने उसकी सहायता की। उसने काँपते कण्ठ से पूछा—

"तुम कौन हो बेटा ! मुझ नापाक, गुनाही पर अपनी मिहरबानियों की ऐसी ठण्ढी नदी बहाने वाले फ़रिश्ते ! जरा मेरे पास आकर बताओ तुम कौन हो ?"

: ४५ :

मिलन और प्रयाण

"कैसी ख़ुशी का दिन है आज !" एक अछूताश्रम वासी ने अपने मित्रों के आगे प्रसन्ना प्रगट की—"आज ही समझौता भी हो गया और आज ही बुधराम चौधरी की लड़की का पता भी चल गया !"

"अच्छा ! कब समझौता हुआ ?" दूसरे ने दरियाफ़्त किया—"मैं तो अभी-अभी तो स्टेशन से आ रहा हूँ। आज वहाँ सत्याग्रह करने के लिये जो दल गया था उसमें मैं भी भेजा गया था। आज तो पुलिस वालों ने हम लोगों पर ख़ूब ही ज़ुल्म तोड़े। अनेक स्वयं-सेवक और सत्याग्रही पीटे भी गये और पकड़े भी। इस पर भी हमने तो अपना काम किया ही। बाहर से जो भंगी बुलाये गये थे वह हमारी पुकार सुनते ही भड़क गये और फिर शहर में काम करने के लिये ही नहीं गये। इसी से अब ऊँचों के और सरकार के बिगड़े दिमाग़ दुरुस्त हुए हैं। हाँ—क्या समझौता हुआ ?"

"यह तय हो गया कि अब हम अपनी हड़ताल रोक देंगे। कल से सब लोग काम पर जायँगे और इसके बदले में हमारी तनख़ाह म्युनिसिपैलिटी सात रुपये से चौदह रुपये करेगी। हमें रहने योग्य और जाड़ा-बरसात काटने योग्य मकान दिये जायँगे। जब तक म्युनिसिपैलिटी के मकान तैयार नहीं होते, तब तक हम इसी अछूताश्रम में रहेंगे और इसके बाद अछूताश्रम का वर्त्तमान

रूप नष्ट कर दिया जायगा और यह दलित-विद्यालय बना दिया जायगा। जहाँ, ऊँच-नीच सब के बच्चे एक भाव से पढ़ेंगे। उन्हें विद्याभ्यास के साथ-ही-साथ हस्तकौशल भी सिखाया जायगा। हमारे लिये दशाश्वमेध घाट पर फिलहाल एक देव-मन्दिर शहर के सुधारकों द्वारा, बनवाया जायगा जिसमें हम बिना रोक-टोक के जा सकेंगे।"

"और दूसरे मन्दिरों में--?"

"उनमें भी, यथा सम्भव, हमारे लिये सुविधा कर दी जायगी। मगर, अभी मन्दिर के प्रश्न पर 'पुराने' ज्यों-के-त्यों दृढ़ हैं। अघोड़ी बाबा तो सभी मन्दिरों में अछूतों को जाने देने के लिये लड़ रहे थे। उन्होंने अन्त में यह भी कहा कि अगर ईश्वर के सभी बच्चों के लिये उनका दरबार न खोला जायगा, तो, एक दिन ईश्वर की सत्ता उठ जायगी, मन्दिरों की मर्यादा नष्ट हो जायगी। मगर, लोगों ने बहुत हाथ-पैर जोड़-जाड़ कर उन्हें अन्त में मना लिया।"

"बुधराम चौधरी की क्या राय थी?"

"वह तो बिलकुल बेहोश पड़े हैं। जब से विश्वनाथ बाबा के दर्शन करके आये तब से उनका बकना-झकना तो बन्द है, मगर, बेहोशी नहीं गयी। अब वह चलाचली के फेर में हैं। कैसे धर्मात्मा हैं बुधराम चौधरी। उन्हीं के कारण तो आज हमारा इतना उद्धार हुआ है। इसी से भगवान ने भी उनकी सुध ली। दो घंटे हुए उनकी खोयी लड़की राधा भी मिल गयी।"

"कहाँ मिली? कैसे मिली भाई?"

"आज सुबह की बात है। अघोड़ी बाबा चौधरी के पास खड़े उनकी तबीयत का हाल पूछ रहे थे। चौधरी धीरे-धीरे उनसे प्रार्थना कर रहे थे कि अब उनका अन्त निकट है, पर, एक बार वह अपनी राधा को देखना चाहते हैं।

"उसी समय तो, महीनों से कहीं खोया हुआ, चौधरी का कुत्ता वहाँ आया। वह उन लोगों के आगे कों-कों कर नाचने और फिर उसी झोंपड़ी के बाहर दौड़ने लगा। उसकी यह लीला देख कर न जाने क्या समाया अघोड़ी के मन में जो वह उसके पीछे लग गये और ग़ायब हो गये घंटों के लिये। कुत्ता उन्हें लेकर क़िले वाले खँडहरों में गया जहाँ राधा, एक भिखमंगे के साथ, कई महीने से रहती थी। ज़रा संयोग देखो; उस भिखमंगे को भी बाबा जी राधा के साथ आश्रम में ले आये हैं और वह बेचारा दूसरा कोई नहीं, मौलवी लियाक़तअली है, जिसने राधा की माँ को बरबाद किया था और जिसकी नाक चौधुरी ने काट ली थी!"

"ओहो! हे भगवान! वह अभी तक जीता है?"

"जीता क्या नरक भोगता है। ज़रा संयोग का तमाशा तो देखो। जिसकी स्त्री की हत्या का वह कारण बना उसी की बेटी, गाँव-गाँव में घूमकर, उस पापी के लिये भीख मांगा करती थी और उसकी सेवा किया करती थी।"

"इतने दिनों तक वह उसी मुसलमान ही के साथ रही? वह भाग कर गयी ही क्यों थी?"

"अभी तो वह आयी है। धीरे-धरे सब बातें मालूम होंगी पर, सुनो तो! उधर से रोने की आवाज़ कैसी आ रही है?"

"हाँ—क्या—क्या—चौधुरी की झोंपड़ी ही से तो आवाज़ आ रही है। ज़रा चलो देखा तो जाय। वह विदा तो नहीं हो गये?"

इसी समय एक घबराया हुआ युवक आकर कहने लगा—"ज़रा चलकर देखो तो! चौधुरी तो अपनी राधा को पाते ही डेरा कूच कर गये! उनकी झोपड़ी में भीड़ लगी है। अघोड़ी भी हैं, पादर भी है और पादरी के साथ विलायत से आये हुए दो साहब भी हैं। वह राधा अपने बाप की देह से लिपट-लिपट कर

रो रही है। आह! कैसे अच्छे थे चौधुरी बुधराम! हमारे उद्धार के लिये उन्होंने क्या क्या कष्ट नहीं उठाये!"

: ४६ :

होमवर्ड बाउण्ड

पिछली घटनाओं के महीने भर बाद की बात है बम्बई अलेक्जेड्रा डाक पर दो अंग्रेजी समाचार पत्रों के रिपोर्टर आपस में बातें कर रहे थे—

"क्या पता चला?" एक ने दूसरे से पूछा—"वह भयानक साधु उन पादरियों और उस अंग्रेज के साथ क्यों है? वह लड़की तो भारतीय मालूम पड़ती है। उसका नाम भी, जहाज-यात्रियों की लिस्ट में, उन अंग्रेजों के साथ क्यों है?"

"बड़ा विचित्र क़िस्सा मुझे बताया गया है उस लड़की, उस साधु और उस अंग्रेज का..." दूसरे ने उत्तर दिया—"तुमने पढ़ा होगा, महीनेभर पूर्व बनारस के भंगियों ने जबरदस्त हड़ताल की थी। उनकी वह हड़ताल ऐसी सफल रही, कि वहाँ के अधिकारियों और जनता को उनके आगे झुकना पड़ा। उनकी अधिकांश शर्तें माननी पड़ीं। यह लड़की उन्हीं भंगियों के सरदार बुधराम चौधरी की पुत्री है। यह भयानक साधु बुधराम का गुरू है और पादरी जानसन ने तो यहाँ तक कहा है कि वह महान् शक्तिशाली भारतीय योगी है। उनका कथन है कि पश्चिम में चाहे साइन्स का चरम विकास क्यों न हो गया हो, पर, इस तरह के साधु उधर हैं ही नहीं—शायद हो ही नहीं सकते उस तामसी वातावरण में। वह अंग्रेज एक पुराने भारतीय जज हैं जो उस भयानक साधु की शक्ति से परिचित और उसके क़ायल हैं। इस लड़की को पादरी जानसन ने अपने पास पालापोसा और पढ़ाया-लिखाया है। और अब—यह अंग्रेज सज्जन—मिस्टर यंग—इसे

अपनी पोष्य-पुत्री बनाकर, लाखों की सम्पत्ति की अधीश्वरी बनाने के लिये, स्वदेश लिये जा रहे हैं।"

"ऐसा क्यों करते हैं मिस्टर यंग?" पहले ने साश्चर्य पूछा—"क्या वह अविवाहित हैं? क्या स्वयं उनकी कोई सन्तति नहीं?"

"अविवाहित तो नहीं, पर वह रँडुए हैं। उस साधु से उनका दर्जनों वर्षों पूर्व का परिचय है। उसके उपदेशों का प्रभाव भी उन पर बहुत है। वह तो उसका मुँह इस तरह जोहा करते हैं जिस तरह हमारे मास्टर (क्राइस्ट) के शिष्य उनका मुख जोहा करते थे। उनके मन में भी विराग ने जगह कर लिया है और उन्होंने अब यही निश्चय किया है कि इस लड़की को अपनी उत्तराधिकारिणी बनाकर लण्डन के समाज को सौंप देंगे तथा स्वयं एकान्त सेवन करेंगे। ठहरो! जहाज का भोंपा बज रहा है। यात्री पुकारे जा रहे हैं। चलो ज़रा उसका प्रयाण तो देखा जाय और उस भयानक साधु का एक चित्र तो लिया जाय। देखा नहीं तुमने उसका चेहरा—दूर ही से दार्शनिकों की तरह मालूम पड़ता है।"

"उस लड़की का भी एक चित्र लेना होगा। वह भी लिली के पुष्प की तरह सुकुमार और सुन्दरी है।"

इसके बाद उन दोनों ने देखा वे पादरी, वह अंग्रेज, लड़की और भयानक साधु आपस में मिल-जुलकर विदा ले रहे थे। लड़की ने पैर पर गिर कर, उस भयानक साधु को प्रणाम किया और उसने जैसे आँसू भर कर उसे आशीर्वाद दिया। फिर एक पादरी, अंग्रेज और लड़की जिसके साथ एक सुन्दर कुत्ता भी था मोटर-बोट पर बैठकर जहाज की ओर बढ़े। थोड़ी देर और—और जहाज ने लंगर उठा दिया। जहाज वाले प्रेमी, डाक पर के प्रेमियों की ओर और डाक वाले जहाज वालों की ओर रूमाल हिला-हिला कर अपने सजल भाव प्रकट करने लगे।

: ४७ :

कटिङ्ग

क़िस्सा तो हमारा अब समाप्त हो गया, पर, लण्डन के 'डेली मिरर' अख़बार की एक ऐसी कटिंग हमारे पास है जो हमारे पाठकों को इस कहानी के सिलसिले में मनोरञ्जक मालूम होगी। उसमें एक अंग्रेज़ युवक की आत्महत्या का समाचार इस तरह प्रकाशित हुआ है।

"गत सप्ताह लण्डन-स्थित प्रसिद्ध फ्रेंच व्यापारी मोशिये विक्टर के पुत्र जान विक्टरने एक भारतीय ईसाई बालिका के प्रेम में पागल होकर आत्महत्या कर ली। उसने अपने गले में पिस्तौल मार कर अपनी जीवनी समाप्त कर दी। पुलीस के लिये वह एक पत्र छोड़ गया है, जिसमें उसने लिखा है कि, वह मिस राधा यंग के प्रेम में विफल होकर आत्महत्या कर रहा है। वह राधा ऐसी निष्ठुर है—वह पुरुषों के प्रेम से ऐसा भयानक खेल खेलती है—कि केवल मैं ही नहीं कितने युवक उसके लिये पागल हो रहे हैं। मर गये कितने, यह कौन बता सकता है।

"विशेष जाँच करने और मिस राधा यंग से मिलने पर पुलीस को उसकी प्रकृति का जो परिचय मिला उससे स्काटलैंड यार्ड के अधिकारी दाँतों अँगुली दबा कर रह गये। उस युवक के बारे में पूछ-ताछ करने पर उस अद्वितीय सुन्दरी ने उत्तर दिया कि—रहा होगा वह मेरे रूप का प्रेमी। पर, मैं तो किसी भी पुरुष से प्रेम नहीं करती। बल्कि, मैं पुरुषों को अपने झूठे प्रेम में फँसा-फँसा कर पागल बनाया और बर्बाद किया करती हूँ। इसी लायक़ होते हैं यह पाजी पुरुष। सभी स्त्रियों को चाहिए कि पुरुषों का हृदय अपने पैरों तले दबाकर कुचल दिया करें; जैसे उन्मत्त हाथिनी अपने प्रचंड पैरों के नीचे बताशे को कुचले। यह पुरुष जाति धोखेबाज़ों,

अत्याचारियों और कायरों की जाति है--जो सदा से हम स्त्रियों को फुसला-फुसला कर, नष्ट करती और हमारे प्राणों को घास-भूसे की तरह--पशुता से कुचलती आ रही है। आखिर हमारे भी हृदय है, हम में भी बदला लेने की शक्ति है। फिर, यदि मौक़ा पाकर, मैं इन पाजियों को परीशान करती हूँ, तो, क्या बुरा करती हूँ। क्यों कोई मेरे रूप-ज्वाला में भस्म होने आता है? मैं किसी को बुलाती हूँ? मैं तो नफ़रत करती हूँ पुरुष की इस राक्षसी जाति से।

"पुलिस का अनुमान यह भी है कि उस लड़की का पूर्व-जीवन रहस्यमय रहा होगा। उसकी सरस, भोली आँखें और उसका आकर्षक रूप वैसा भयानक नहीं मालूम पड़ता, जैसी भयानक बातें होती हैं उसकी। मालूम पड़ता है वह कभी किसी धोखेबाज पुरुष द्वारा छली गयी है और अब उसके उसी घाव की प्रतिक्रिया हो रही है। भगवान बचावें उस क्रुद्ध सिंहनी के आक्रमणों से पुरुष जाति के पागल युवकों को!"

❀ बस ❀